मूल्य
४॥) रुपये

प्रकाशक :
गर्ग बुक कम्पनी,
जयपुर

मुद्रक :
बा० ओंकारदयाल गर्ग,
गर्ग प्रिंटिंग प्रेस जयपुर

विषय-सूची

क्रान्ति का प्रथम चरण

'रङ्ग' की क्रान्ति : भारतेन्दु-काल

क्रान्ति का दूसरा चरण

'रूप' की क्रांति : द्विवेदी-काल

क्रांति का तीसरा चरण

'रेखा' की क्रांति : 'प्रसुमन' काल

वक्तव्य

हिन्दी कविता के इतिहास में जिसे 'आधुनिक काल' के नाम से अभिहित किया गया है, प्रस्तुत अध्ययन उसकी एक रूपरेखा है । आज की हिन्दी कविता का यह पूर्ण चित्र नहीं, रेखाचित्र नहीं, केवल 'रेखा' है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आज तक के युग की हिन्दी-कविता का जिस दृष्टिकोण से मैंने अध्ययन किया है अथवा करना चाहता हूँ—यह प्रयत्न उसका एक इंगित है।

'आधुनिक काल' को मैंने 'क्राति-युग' कहा है : क्यों ? 'क्रांति' और 'युग' दोनों शब्द ध्यान आकृष्ट करेंगे क्योंकि दोनों सहेतुक हैं। 'क्रांति' के विवेचन के पहले हम 'युग' की व्याख्या को लें। हिन्दी-संसार में शब्दों के प्रयोग में जितनी असावधानी दिखाई जाती है, वह प्रायः भ्रांति मूलक हो जाती है और कभी-कभी तो घोर आपत्तिजनक। यहाँ प्रत्येक सम्मेलन 'अखिल भारतीय' है और प्रत्येक आयोजन 'विराट्'! आये दिन विज्ञप्तियों, सम्वादों और लेखों में हम यही देखते हैं। हमारे लेखनीधरों की यह अनवधान नामकरण-वृत्ति उपहासास्पद हो उठती है! हमारी हिन्दी का हर कोई कवि युग-प्रवर्तक है। चाहे वह 'प्रसाद' हो, चाहे पन्त, चाहे 'निराला'! जैसे यह युग कोई छोटा-मोटा 'शकट' है जिसे ऐसे किसी महारथी ने अपने पौरुष और पराक्रम से ठेल दिया है!

अंग्रेजी में कालावधि-द्योतक कई शब्द हैं: Age, Period, Era, Epoch। हिन्दी में इनके लिए दो ही शब्द बहुधा-प्रयुक्त हैं : 'युग' और 'काल'। इस 'युग' और 'काल' में सापेक्षिक अन्तर क्या है ? इसे न समझ-बूझकर हम उनका प्रयोग करते चले आ रहे हैं। 'हिम-ग', 'प्रस्तर-युग', 'सतयुग', 'त्रेतायुग', द्वापर युग', 'कलियुग' किसी शेष प्रकृतिबोधक गुण के अर्थ में 'युग' हैं : 'काल' युगकी एक अवस्था

(stage) है। 'युग' पूर्णतावाचक, अंगीबोधक शब्द है, 'काल' खण्डतावाचक, अंगबोधक। 'मध्ययुग' को इसी दृष्टि से हम गुलामकाल, खिलजी काल, तुगलककाल, सन्तकाल, मुगलकाल आदि खण्डों में विभाजित करते हैं। हिन्दी-साहित्य के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अभिहित 'वीरगाथा काल', 'रीतिकाल' 'भक्तिकाल', और 'आधुनिक काल' वस्तुतः 'युग' हैं? और इन्हीं युगों के अन्तर्गत कई 'काल' अन्तर्भूत हैं। मैंने 'युग' और 'काल' का यही अर्थ माना है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से चलनेवाले हिन्दी कविता के इस आधुनिक युग में कविता में त्रिमुखी क्रांति हुई है—'रंग', 'रूप' और 'रेखा' की क्रांति। भारतेन्दु-काल में हिन्दी कविता ने 'रंग' (भाव) की क्रांति देखी। रति और ऐन्द्रिय विलास की कविता अपने निम्नतम बिन्दु पर पहुँच चुकी थी, तब उसमें नव प्राण, नव रंग का उद्धार किया भारतेन्दु ने। 'भारतेन्दु' और 'प्रेमघन' इस काल के दो प्रमुख कवियों ने निस्सन्देह राधा-कृष्ण के शृंगारिक प्रेम की कविताएँ भी विपुल परिमाण में लिखी, परन्तु उन्होंने अदृष्टपूर्व–अश्रुतपूर्व विषयों और भावनाओं का द्वार उन्मुक्त किया। यह क्रांतिकारी चरण था। भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने चिरदिन से चली आरही जड़ीभूत कल्पना को सामाजिकता और राष्ट्रीयता की स्वस्थ, जीवन्त भावभूमि दी। समाज और जाति का जीवन वर्ण्य और गेय बना। कोई कल्पना कर सकता था कि क्षुद्र समस्यापूर्त्तियों और शृंगारिक विलास-चेष्टाओं में लिप्त ब्रजभाषा का कवि 'भारतदुर्दशा' पर आँसू बहा सकेगा? जिसकी आँखों में सदैव राधा-कृष्ण की लीला–विलास नाचा करता था, जिसे ब्रज के कुञ्ज-निकुञ्जों में ही क्रीड़ा-कैलि करना आता था, उस हिन्दी कविता में 'हिन्दी–हिन्दू–हिन्दुस्तान', 'टिक्कस' और 'मँहगी', 'दुर्भिक्ष' और 'काल' भी वर्ण्य होंगे, 'बुढ़ापा' और 'दच्छिनादान', 'गैयामाता' और 'चूरन' के लटके भी गेय होंगे, फूट और रिश्वतवाले, नाटकवाले, लाला-महाजन, एडीटर, बाबू, पुलिस और कानून, काशी की गलियों और मन्दिरों की मलिनता भी चित्रित होगी,

गंगा-वर्णन और जमुना-वर्णन और 'काश्मीर सुखमा' द्वारा प्रकृति-चित्रण की नवीन दिशा भी खुलेगी, कहमुकरियों की पिचकारी से अंग्रेजी, ग्रेजुएट, रेल, चुंगे, पुलिस, अंग्रेज, अखबार, छापाखाना, कानून, खिताब, जहाज और शराब पर छींटों की बौछार भी होगी और होलियों, कजलियों और कबीरों में सभ्यता की अनेक विद्रूपताओं पर प्रहार भी किये जायँगे—यह कौन जानता था ? हिन्दी कविता का अन्तरंग—और विषय भारतेन्दु-काल में नितान्त परिवर्तित हो गया है।

'रंग' की क्रांति में द्विवेदी-काल भारतेन्दुकाल की चरम परिणति है। 'जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक, दार्शनिक और धार्मिक, सभी प्रश्नों पर कवि की दृष्टि गई है। वर्ण्य की गणना करें तो आचार्य द्विवेदी जी के शब्दों में निस्संकोच कह सकते हैं कि 'चींटी से लेकर हाथी-पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र-पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त, पृथ्वी, अनन्त पर्वत' द्विवेदी काल की कविता का वर्ण्य था; परन्तु द्विवेदी-काल में भारतेन्दु-काल की भूमि से जो क्रांति का दूसरा चरण उठा वह है 'रूप' का, बहिरंग का। भारतेन्दु काल तक कविता में प्रतिष्ठित भाषा 'ब्रजवाणी' रही। कवियों ने 'लोकभाषा' खड़ी बोली को अपनाना चाहा, परन्तु वे उसमें 'सफल' न हो सके। यह कार्य द्विवेदी वृत्त के महारथियों ने किया। कविता में खड़ी बोली और नये छन्दों का साम्राज्य द्विवेदी-काल में स्थापित हुआ। इस काल की कविता नई भाषा और नये छन्दों में ढाली गई है अथवा नई भाषा और नये छन्द कविता में सजाये गये हैं। यह 'रूप' की क्रांति है। यद्यपि एक ओर ब्रजभाषा भी 'पूर्ण' और 'रत्नाकर', सत्यनारायण और रामचन्द्र शुक्ल, 'प्रसाद' और 'वियोगीहरि' की शरण में अभय-दान पा रही थी, परन्तु आचार्य की प्रेरणा से जो कवि काव्यार्चन कर रहे थे वे खड़ी बोली के थे। जिस खड़ी बोली का आन्दोलन भारतेन्दु-काल उठा चुका था, उसको विजय मिली इस काल

में। खड़ी बोली कविता का शैशव, बाल्य और कैशोर इसी काल में बीता : इसीके अनुरूप कौतूहल, कल्पना और भावना का प्रसार इस काल की कविता में दिखाई दिया इस काल के अन्त तक खड़ी बोली की कविता में ऐसी कोमलता और छन्दों में ऐसा लालित्य आगया था कि कोमलतम पदावली में ललिततम भावों की सृष्टि से ब्रजभाषा भी हतप्रभ हो उठी। यही 'रूप' की, वहिरंग की क्रान्ति है।

हिन्दी कविता के अन्तरंग और वहिरंग में—'रंग' और 'रूप' की क्राति हो चुकने पर भी अभी एक क्रान्ति शेष थी। वह क्रान्ति थी अभिव्यञ्जना-पद्धति की। यह क्रान्ति कविता की भाव-प्रधानता, अन्तर्भाव-व्यञ्जकता और प्रगीतात्मकता में हुई। इसे मैंने 'रेखा' की क्रान्ति की संज्ञा दी है। 'प्रसाद' और 'निराला', पन्त और महादेवी ने इस काल में जो अक्षयनिधि हिन्दी कविता को दी है, वह इस युग की सर्वोच्च उपलब्धि है। उसपर हिन्दी की कविता अन्य उन्नत भाषाओं की कविता से स्पर्द्धा कर सकती है। इस युग में इस प्रकार नई हिन्दी कविता को भाव और भाषा, अभिव्यक्ति और अभिव्यञ्जना, अर्थ और कला, कल्पना और अनुभूति को पूर्णता मिली। इस युग की इन उपलब्धियों को देखकर अब हम उसका नामकरण कर सकते हैं। आधुनिक युग अब इतना अगम-अज्ञेय नहीं है कि उसे किसी नाम के अभाव में 'आधुनिक युग' ही कहते रहें। युग की प्रवृत्ति, प्रकृति, गुण, मूल्य और उपलब्धियों (Achievements) की इस त्रिमुखी क्रान्ति के कारण मैंने इसे 'क्रान्ति युग' कहा है और इस आशा के साथ कि अन्य आलोचकों को इस नाम की सार्थकता ग्राह्य होगी। अति-आधुनिक काल को—जिसे कतिपय आलोचकों ने 'प्रसाद' या 'छायावाद' या 'रवींद्र' के नाम के साथ जोड़ा है—मैंने 'प्रद्युम्न' काल की संज्ञा दी है—एक विशेष व्याख्या के साथ। ‡

'क्रान्ति-युग' में मैंने हिन्दी कविता की क्रान्ति के तीनों चरणों के

---

‡ दे० पृष्ठ २२३–२५

चिन्हों को अङ्कित किया है। उसमें व्यक्ति और समाज की अन्तर्शक्तियों और बाह्य परिस्थितियों का आकलन-आलेखन और वैज्ञानिक (बौद्धिक) विवेचन है। परन्तु, मेरा यह आग्रह कभी नहीं है कि अन्य अध्येता भी इससे सहमत हों। ऐसे अध्ययनों में वस्तुतः अध्येता का वैयक्तिक दृष्टि-बिन्दु ही प्रमुख हो उठता है।

प्रस्तुत अध्ययन 'आलोचना'-'समालोचना' न होकर एक अध्ययन-अनुशीलन है। कविता 'क्या है' इसी पर आलोक डाला गया है, 'क्या नहीं है' इसका विवेचन नहीं किया गया है। इसमें कविता की काव्य-कला की दृष्टि से समीक्षा इतनी प्रमुख नहीं है, जितनी उसकी प्रेरक शक्तियों की परख, जिन्होंने कविता को यह 'रंग-रूप-रेखा' दी।

पुस्तक में प्रथम चरण के साथ उतना न्याय नहीं हो सका जितना अन्य चरणों के साथ। इसका स्पष्टीकरण यह है कि मैं प्रस्तुत अध्ययन को संक्षिप्त बनाना चाहता था—परन्तु ज्यों ज्यों मैं इस युग की कविता में प्रवेश करता गया, नई-नई दिशाएँ और धाराएँ प्रत्यक्ष होती गईं और मैं उनसे तटस्थ न रह सका और फल हुआ पुस्तक की कलेवर-वृद्धि। 'भारतेन्दु काल' के साथ अगले संस्करण में मैं न्याय कर सकूँगा (यदि अध्ययन की सामग्री प्राप्त हो सकी) पुस्तक में केवल धाराओं का निर्देश है—दिग्दर्शन है, अतः कुछ विशिष्ट कृतियों के अंतरंग पर भी विशेष नहीं लिख सकता था जैसे 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'कामायनी' आदि। इनका केवल दिशा-निर्देश मात्र है। इन कृतियों पर मैं स्वतंत्र आलोचनाएँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। प्रस्तुत अध्ययन में कुछ कविगण एक से अधिक भाव-धाराओं से सम्बद्ध होने के कारण एकाधिक स्थलों पर विवेचित हुए हैं—जैसे 'प्रसाद' पन्त, निराला आदि। इस प्रकार कवि का सर्वांग रूप एक साथ तो प्रस्तुत नहीं होपाता, परन्तु अमुक धारा में उनका स्थान महत्त्व और योग कितना है?—यह स्पष्ट हो जाता है। पाठकगण चाहें तो, उन खण्ड-समीक्षाओं को जोड़कर उनका पूर्णरूप देख सकते हैं।

इस प्रकार का सर्वतन्त्र अध्ययन भी किसी स्वतन्त्र पुस्तक के बिना सम्भव नहीं होगा।

'क्रान्ति-युग' के पृष्ठों में आलोचकों और सजग पाठकों को अनेक नवीन स्थापनाएँ दिखाई देंगी जिन्हें गिनाना आत्मप्रदर्शन न हो इस से मैं उनका उल्लेख यहाँ नहीं करता। स्वनाम धन्य कविवरेण्य मैथिली-शरण गुप्त की पौराणिक-प्रबन्ध सृष्टि की प्रेरक शक्ति, मात्रवृत्त में गिरिधर शर्मा का 'अग्रगामित्व' और 'निराला' जी को रहस्यवादी न मानकर दार्शनिक कवि के रूप में स्वीकार करना तथा 'नवीन' जी और 'दिनकर'जी को तथाकथित 'प्रगतिवादी' के रूप में स्वीकार न करना आदि स्थापनाओं से सम्भव है कतिपय क्षेत्रों में हलचल हो। इसी प्रकार, प्रस्तुत अध्ययन में मैंने एक निष्पक्ष समीक्षक के नाते अपने कवि रूप की भी समीक्षा की है, जो, आशा है, किसी अहम्मन्यता का लक्षण नहीं मान लिया जायगा। ऐसा न करना अपने कवि के प्रति ही नहीं, अपने आलो-चक के प्रति भी अन्याय होता।

कविताओं के अध्ययन-अनुशीलन में प्रस्तुत आलोचक को एक कठि-नाई हुई है--कतिपय कविताओं की भाव भूमिका के परिचय में। 'एक भारतीय आत्मा', 'प्रसाद, पन्त, निराला, नवीन आदि कई कवियों की कई कविताओं के घटना-विशेष से सम्बद्ध होने के कारण उनके स्पष्टी-करण पर ही आलोचना की सच्चाई निर्भर है। मैं समझता हूँ साहित्या-लोचन की अनेक भ्रांतियों का निराकरण करने के लिए कवियों को अपनी कविता के साथ, यदि आवश्यक हो तो, एक टिप्पणी अवश्य जोड़ना चाहिए कि अमुक रचना के मूल में क्या प्रेरणा थी ? इस विषय में अभी इतना ही। प्रत्येक कविता की रचना-तिथि भी देना अनिवार्य होना चाहिए। 'एक भारतीय आत्मा', पन्त, सियारामशरण का आदर्श इस दिशा में अनुकरणीय है। प्रत्येक खण्ड के अन्त में दिये हुए काल-चक्रों को तैय्यार करने में लेखक ने पुस्तक में दी हुई प्रकाशन अथवा रचना तिथि को ही आधार माना है परन्तु कई कृतियों का प्रकाशन-काल ही

निर्विवाद रूप से रचना काल नहीं है, जैसे 'कुंकुम' 'साकेत', 'हिम किरीटिनी आदि का। अतः ऐसी कठिनाई में ऐसे चक्र का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इस कारण उसमें त्रुटियाँ होना सम्भव है। यदि कविगण ऐसी त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट करेंगे तो अगले संस्करण मे संशोधन हो सकेगा।

'क्रान्ति-युग' के मुद्रण में एक वर्ष लग जाने पर भी अनेक प्रकार की भूलें रह गई हैं इसके लिए लेखक, मुद्रक और प्रकाशक तीनों ही क्षमा-प्रार्थी हैं। अत्यन्त अनर्थकारी भूलों का निर्देश 'शुद्धि पत्र' में कर दिया गया है, विश्वास है कृपालु पाठक उन्हें सुधार कर बढ़ेंगे। बस दूसरे संस्करण तक के लिए विदा!

—लेखक।

क्रान्ति का प्रथम चरण

'रंग' की क्रान्ति

भारतेन्दु-काल

[१८७५–१९०० ई०]

: १ :

रीति-परम्परा

आचार्य्य केशवदास, प्रेममर्मी कवि देव, रसज्ञ मतिराम, भाव-शिल्पी बिहारीलाल और ललित-कलित पदावली के धनी पद्माकर द्वारा प्रतिष्ठित हिन्दी-कविता का 'रीति-युग' हिन्दी साहित्य का रजत-युग है, जिसमें काव्य के रंग-भवन में लीला-विलास के प्रचुर उपकरण संचित हैं।

'रीति-युग' : हिन्दी साहित्य का रजत-युग

भक्त सूरदास के व्रजराज श्रीकृष्ण ने जिस कोमल वाणी में बोलना सीखा था, उसी 'व्रज-भाषा' में रीति-युग ने भी अपनी कविता-कामिनी का गायन और नर्तन सुना। भक्ति-युग में व्रज, व्रजभाषा और व्रजराज का अविच्छिन्न सम्बन्ध था। रीति-युग में भी कवियों के उपास्य व्रजराज कृष्ण और व्रजरानी राधा रहे, परंतु उनकी विलास-लीलाओं में कवियों की भावना भक्ति न होकर प्रच्छन्न रति (शृंगारिक प्रेम) ही रही। धीरे-धीरे तो व्रजराज का नाम मिटता चला गया और उसके स्थान पर 'प्राकृत जन' आने लगे। कई कवियों ने अपनी कविता को राजाश्रय में बेच दिया और एक-एक स्वर्ण-रजत मुद्रा पर कल्पना, भावना और मधुरिमा की भावभंगिमाएँ निछावर होने लगीं। कवि की प्रतिभा विलासजीवी राजाओं के विलास का साधन बनकर उनके स्मित पर छुम-छनन करके नृत्य करने लगी। हिंदी का समस्त वीरगाथा-काव्य राजाश्रित था, प्रेम और शौर्य-गाथा उस काव्य का गेय थी। हिन्दी की रीति-परम्परा वीरगाथा-परम्परा का ही शृंगारिक, वैलासिक संस्करण है। वीरगाथाओं के केंद्रबिन्दु

राजा लोग थे, परंतु उनके चारण कवियों की कविता युद्ध में कृपाण लेकर ताण्डव करती थी—युद्ध उसका लीला-क्षेत्र था; रीति-कविता के केन्द्र-बिन्दु भी राजालोग ही रहे, परंतु उनके राजकवियों की कविता उनके विलास-मण्डप में नूपुर बाँधकर लास करने लगी। राजाओं के लीलागृह उसकी भावभूमि होगये। समस्त वीरगाथा-काव्य अभिजात-परक काव्य है। हिन्दी का भक्तिकाव्य ईश्वर-परक है अथवा आत्म-परक (subjective) है, इसलिए लोकस्पर्शी है। रीति-काव्य पुनः लौटकर अभिजात-परक बनगया है। लोक-स्पर्श उसमें नहीं है।

वीरगाथा-काव्य में फिर भी लोक-जीवन का स्पन्दन है। उसमें लोक-जीवन को आन्दोलित और अस्त-व्यस्त कर देनेवाले युद्धों की प्रतिध्वनि तो है। मुसलमानों के आक्रमण तत्कालीन हिन्दू भारत के जीवन को आमूलचूल हिला डालनेवाले थे, अतः उनसे लोहा लेनेवाले राजाओं के प्रति प्रशस्तियाँ लिखना देश-रक्षक के प्रति प्रशस्ति लिखना ही था। भक्तिकाव्य में भी तत्कालीन लोक-जीवन को आसावित करने वाली वैष्णव (राम और कृष्ण) भक्ति की धारा प्रवाहित है। वह भी अंशतः जीवन के स्पंदन के साथ है। जीवन के भौतिक पक्ष (अशन-वसन : रोटी-कपड़े आदि) की समस्या ने भक्त कवि को प्रभावित नहीं किया है। उसके लिए रोटी-कपड़े की समस्या थी भी नहीं; राजाश्रय की भी उसे अपेक्षा न थी : 'सन्तन को कहा सीकरी सों काम ?' उसके लिए जीवन का एक ही मंत्र था—'सिया राम मय सब जग जानी।' उसके लिए 'सबै भूमि गोपाल की' ही थी, इसलिए उसे समझा जा सकता है। परंतु रीति-कविता तो न तो जीवन का स्पन्दन थी, न जीवन की सृष्टि। रीति-कवियों का एक मात्र उपजीव्य कविता-

कला थी। उसके द्वारा उन्हें भौतिक सम्मान मिलता था। राजाओं के मानसिक विलास के लिए कवियों ने शृंगारिक कविता को नियोजित किया और उनसे पुरस्कृत होकर जीवन को सार्थक माना। लोक-जीवन में किस प्रकार का स्पन्दन हो रहा था, रीति-कविता इसका उत्तर नहीं देती। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के राजत्व-काल की इस कविता मे तत्कालीन लोक-जीवन की कोई धड़कन नहीं सुनाई देती। कविता का वर्ण्य अप्रत्यक्ष रूप से कभी राजाओं का रति-विलास रहा और कभी उनके युद्ध-क्षेत्र का कार्य-कलाप, किंतु उनका प्रत्यक्ष लक्ष्य था—अलंकार, रस, रीति, ध्वनि आदि विविध काव्योपकरणों का कुशलतापूर्ण प्रदर्शन। राजाओं ने रससिद्ध कलावन्तों की वाणी को अपने रजत-वैभव से क्रीत-दासी बना लिया था।

इस रीति-परम्परा का प्रभाव हिन्दी कविता में इतना बद्धमूल होगया था कि प्रसिद्ध युद्धवीर महाराज शिवाजी का बिरुद गानेवाले और वीर रस को ही अपना उपजीव्य माननेवाले कवि 'भूषण' भी इस रीति का मोह न छोड़ सके। वीर शिवाजी की चरित-कथा होते हुए भी भूषण की कविता अलंकार-शास्त्र के निर्माण के निमित्त लिखे गये मुक्तक छन्दों का संकलन ही है। 'क्रांतियुग' के पहले हिंदी कविता मे यही 'रीति' का युग चल रहा था। शताब्दियों के मुसलमानी शासन ने जीवन पर जो शिव या अशिव प्रभाव छोड़ा था—उसका कुछ भी आभास रीति-युगीन कविता नहीं देती। राज-सभा में साहित्यविलास अथवा मौखिक युद्ध-लीला अथवा वाणी का कला-कलाप इन शब्दों में ही रीति-युग का काव्य सीमित है।

जिस समय हिंदी की यह रीति-युगीन कविता अंतिम श्वास

लेरही थी भारतवर्ष में एक नई सभ्यता फैल रही थी। रीति-युगीन कविता के अंतिम चरण पर भी अभी तक उसका प्रभाव नहीं पड़ा था। अभी तक कविता कञ्ज और गुलाब जैसे कपोल और अलक के नाग-पाश से मुक्त नहीं हो पाई थी। कविता की मुरलिका में प्रेम और शृंगार, लीला और विलास, भगवद्भक्ति और राजभक्ति के पुराने स्वर ही भरे जारहे थे। परन्तु अब नई भावना और कल्पना कविता को स्पर्श करने जारही थी। भारत के लोक-जीवन में जो क्रांति अंग्रेज जाति के सम्पर्क से उत्पन्न हुई, कविता उससे कहाँ तक दूर रहती? भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनका मित्रमण्डल कविता की भावक्रांति का स्रष्टा होने जारहा था।

सर्वांगीण जागरण

विक्रम की बीसवीं शताब्दी से भारत में जागरण प्रारंभ हुआ है। अंग्रेज जाति के आगम के साथ पश्चिम के सर्वांगीण जागरण की लहर इस सोये हुए देश में आई। आर्थिक आघात से देश ने करवट ली और राजनैतिक आघात से चौंककर उसने आँखें मलीं और जागने का उपक्रम किया। रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के कारागार इस देश में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार ने देश के विभिन्न-विच्छिन्न अंगो में एकता का श्रीगणेश किया। शिक्षा के साथ जाग्रत देशों की भावना यहाँ आई; उस भावना से आई चेतना और जाग्रति और जीवन पाँवों पर खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा। प्रगति की दौड़ में अपने आपको पिछड़ा पाकर देश की चिन्ता और मेधा पहले खिन्न हुई किन्तु धीरे-धीरे वह आलोक की ओर बढ़ी।

पिछली शताब्दी में देश के जन-जीवन में महान् क्रांतियाँ हुई हैं। राजनीतिक मंच पर अठारहसौ सत्तावन ईसवी की

युगांतरकारी, घटना जिसे विदेशी सत्ता केवल 'सिपाही-विद्रोह' ही कहकर पुकार सकती है, सामाजिक मंच पर राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, धार्मिक मंच पर स्वामी दयानन्द

क्रान्ति-युग

और आध्यात्मिक क्षेत्र में रामकृष्ण और विवेकानन्द हमारे लोक-जीवन में आई हुई सर्वांगीण क्रान्ति की विविध शक्तियाँ हैं। लोक-जीवन का पूरा स्पर्श इस पिछली शताब्दी की हिन्दी कविता में भी आगया है। इस काल की कविता लोक-जीवन की क्रांति की चित्र-लेखा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आज तक की पूरी शताब्दि की कविता का युग इसी क्रांति का युग है।

: २ :

'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र: 'क्रान्तियुग' के अग्रदूत

हिंदी कविता में 'क्रांति-युग' के अग्रदूत श्री 'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र थे। शताब्दियों की रूढ़िवादी काव्य-परम्परा में उन्होंने सर्वप्रथम क्रान्ति का स्वर उठाया था :

रीति-कविता के अंतिम पोषकों में मुख्य हैं—

(१) श्री प्रतापसाहि जिनके काव्य-नायक महाराज की सेना के चलने से भूचाल आ जाता है—कोल कहरता है, दस दिगीश हहरते हैं, सिंधु लहरता है और शेषफन थहरते हैं :

भारतेन्दु की भाव-भूमिका

> महाराज रामराज रावरो सजत दल
> होत मुख अमल अनंदित महेस के।
> सेवत दरीन केते गव्वर गनीम रहैं
> पन्नग पताल, त्योंही डग्न खगेस के।
> कहैं परताप धरा धँसत त्रसत
> कसमसत कमठ पीठि कठिन कलेस के।
> कहरत कोल हहरत हैं दिगीस दस
> लहरत सिन्धु थहरत फन सेस के।

(२) असनी के 'ठाकुर' जिन्होंने नायिका के मुख के निर्माण के तत्त्वों की गणना की है :

कोमलता कंज ते गुलाब ते सुगंध लैके
चन्द ते प्रकास गहि उदित उँजेरो है।
रूप रति आनन ते चातुरी सुजानन ते
नीर लै निवानन तें कौतुक निवेरो है।
'ठाकुर' कहत यों सँवारयो विधि कारीगर
रचना निहारि जनचित होत चेरो है।
कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को-
वसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है।

(३) बुन्देलखंडी 'ठाकुर' जो अब भी बरसाने और नन्दगाँव के आँगनों में काली और गोरी घटा की वर्षा देख रहे थे :

अपने अपने सुठि गेहन में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री।
अँगनान में भीजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जाँव पै री।
कहै 'ठाकुर' दोउन की रुचि सों रंग ह्वै उमडे दोउ ठाँव पै री।
सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नँदगाँव पै री।

('ठाकुर-ठसक')

(४) रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह, जो रीति ग्रंथकार न होते हुए भी बिहारी की-सी भाव-व्यञ्जना में कुशल हैं :—

गुलुफ कुलुफ खोलनि हदै हो तौ उपमा तूल।
ज्यों इन्दीवर तट असित द्वै गुलाब के फूल।

× × ×

कल किसलय कोमल कमल पद-तल सरि नहिं पाय।
इक सोचत पियरात नित, इक सकुचत झरि जाय।

× × ×

सविता-दुहिता-स्यामता, सुरसरिता नख-जोति।
सुतल अरुनता भारती चरन त्रिवेनी होति।

और (५) थे स्वयं भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र ('गिरिधर दास', 'गिरिधर', 'गिरिधारन') जिनकी इस कविता की विरासत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को मिली थी —

जगह जड़ाऊ जामे जड़े हैं जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जग में जमति है ।
जामे जदुजानि जान प्यारी जातरूप ऐसी,
जगमुख ज्वाल ऐसी जोन्ह सी जगति है ।
'गिरिधरदास' जोर जबर जवानी को है,
जोहि जोहि जलजा हू जीव में जकति है ।
जगत के जीवन के जिय को चुराये जोय,
जोये जोषिता को जेठ—जरनि जरति है ।

ऐसी भाव-भूमिका में भारतेन्दु (१६०७–४२ वि०) की काव्य-भारती पोषित हुई थी; परन्तु इस महाकवि में ऐसी प्रतिभा थी कि उसमें न केवल अतीत की सब धाराओं का संगम हुआ, वरन् उसने भावी की दिशा भी दिखा दी । अपने ३५ वर्ष के स्वल्प जीवन में हिन्दी भारती के इस कवि ने क्या क्या नहीं लिखा ? वह एक ओर सूर और मीरा की प्रतिकृति है, दूसरी ओर देव और बिहारी का प्रतिरूप है, तीसरी ओर रसखान और घनानन्द की प्रतिच्छवि है, तो चौथी ओर भावी क्रांति के कवियों का नेता भी है । उसने हिन्दी कविता के सभी कुञ्ज-निकुंजों में विहार करके राजपथ की ओर जाने का सिंहद्वार भी खोला है ।

राजभक्ति की भावना

राजनीतिक दृष्टि से सोचनेवाले व्यक्ति विदेशी शासन को अत्याचारी समझने लग गये थे । सामाजिक क्षेत्र में कुरीतियों,

अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के परित्याग की आँधी चल पड़ी थी। धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्म समाज और आर्यसमाज सुधार की पताका लेकर बढ़ चले थे। कवियों ने भी सब से पहले इस आँधी को पहचाना था। कवि पेड़ की उस चोटी की तरह है जो वायु के क्षीणतम वेग में भी आंदोलित हो उठती है। कवि का हृदय अत्यन्त संवेदनशील (sensitive) होता है। वह दिन हिन्दी भारती के इतिहास में सचमुच स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है जिस दिन हिन्दी के जागरूक कवि भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के राजमंदिरमें शृंगार की वीणा बजाते हुए उसे छोड़कर भारत-दुर्दशा पर दो आँसू बहाये—

> रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई !
> हा हा भारत दुर्दसा न देखी जाई !

अंग्रेजी राज के विरुद्ध प्रथम भारतीय विद्रोह (१८५७ ई०) को उस समय के एक कवि (बाबू बिहारीसिंह) ने 'गुबार' कहकर महारानी विक्टोरिया को ही आशीर्वाद दिया था :

> गदर गनीम गुबार उठ्यो संतावन में सिगरे जग जानी।
> केते अनीति अनीत कियो सब हिन्द प्रजा हिय में भय मानी।
> त्यौं ही 'बिहारी' लियो कर सासन मेटि प्रजा दुख वेगि सयानी।
> जेहि ऐसो विचार असीसैं सबै चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी।

सुकवि पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'ब्रैडला-स्वागत' कविता में उसे 'सेना का बिगड़ना' कहा था :

> सन् सत्तावन माहिं जबहिं कछु सेना बिगरी।
> तब राजा दिसि रही सुदृढ़ ह्वै परजा सिगरी॥

और उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'हार्दिक हर्षादर्श' प्रकट करते हुए उसे 'देसी मूढ़ सिपाहि कछुक' का उत्पात बताया था :

देसी मूढ़ सिपाह कछुक लै कुटिल प्रजा संग।
कियो अमित उत्पात, रच्यो निज नासन को ढँग।
बढ्यो देस में दुख, बनि गई प्रजा अति कातर।
फेर्‌यो तब तुम दया दीठ भारत के ऊपर।

तत्कालीन अंग्रेजी राज के प्रति उस समय के कवियों की श्रद्धा उस काल की अनेक रचनाओं में प्रकट होती है। परन्तु मिस्र में अंग्रेजों की ओर से लड़नेवाली भारतीय सेना की विजय पर "विजयिनी विजय पताका या बैजयन्ती" लिखते हुए भी कवि भारतेन्दु ने अर्जुन, भीम, रघु, पुरु, परशुराम, पोरस, चंद्र, पृथ्वीराज, हम्मीर, विक्रम, रणजीतसिंह आदि भारतीय वीरों को स्मरण करने के साथ ही 'स्वामिभक्ति' के निमंत्रण की प्रेरणा दी है। देश के दुख ने उन्हें व्यथित कर दिया है :

हाय वहै भारत भुव भारी। सबही विधि तें भई दुखारी।
रोम ग्रीस पुनि निज बल पायो। सब विधि भारत दुखित बनायो।

प्राचीन भारतीय युद्ध-तीर्थों को भी कवि नहीं भूला है :

हाय पञ्चनद, हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत।
हाय चितौर निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहिं मँझारी।

एक उद्बोधन में आर्य-गौरव की ही प्रेरणा भारतेंदु दे रहे हैं :

अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोये।
लेहु करन करवाल काढ़ि रन-रंग समोये।
चलहु बीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सो खड्ग खीचि रन-रंग जमाओ।
परिकर कटि कसि उठौ बँदूकन भरि भरि साधौ।
सजौ जुद्ध-बानौ सब ही रन-कंकन बाँधौ।

× × ×

उठहु वीर तरवार खींचि माड़हु घन-संगर।
लोह-लेखनी लिखहु आर्य बल जवन-हृदय पर ॥

परन्तु यह भेरी ब्रिटिश सिंह के अटल तेज की महिमा दिखाने के लिए ही कवि ने फूँकी थी :

मथ्यौ समुद्रहि जिन ब्रिटानिया निज कटाच्छ-बल ।
जग महँ जिनको निरभय विचरत, कठिन प्रबल दल ।

× × ×

रूम रूस डर मूछ दियो ईरान दबायो।
बृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रकट दिखायो॥

ब्रिटिश राज्य के बजते हुए डंकों में ही कवि ने भी अपना स्वर मिलाया था :

बज्यौ बृटिश डंका गहकि धुनि छाई चहुँ ओर।
जयति राजराजेश्वरी किओ सबनि मिलि सोर।

परन्तु ब्रिटिश राजराजेश्वरी विक्टोरिया के इस जयनाद के साथ साथ भारतेंदु ही कह सके कि

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी;
ताहू पर महँगी काल रोग विस्तारी;
दिन दिन दूने दुख देत ईस हा हा री।

सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई; हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।

भारतेंदु की राष्ट्रीय भावना ब्रिटिश राजभक्ति और स्वदेशानुराग के हिंडोले में झूल रही थी। भारतेंदु के सभी मित्र कवि इस भावना में उनके साथ थे।

२

भारतेंदु वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव भक्त थे। रूढ़ अर्थ भक्ति की धारा में भक्त उन्हें चाहे हम न कहें परंतु भक्ति-भावनाओं से ओत-प्रोत उनकी कविताओं में 'अष्टछाप' के कवियों की सी तन्मयता है। किसी नित्य नवीन स्नेह-नीर से भरे अपूर्व घन को देखकर उनका मन-मोर नाच उठता था :

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मनमोर॥

भक्ति की समस्त कविताओं में राधा और कृष्ण उनके गेय रहे। भक्तिभाव की कविताओं में भारतेंदु इस नवयुग के सूर थे। 'भक्त सर्वस्व', 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' और 'विनय-प्रेम-पचासा' में भारतेंदु की भक्ति की कविताएँ हैं, परंतु भारतेंदु के लिए भक्ति और प्रेम एक ही भाव के दो नाम हैं। 'भक्त सर्वस्व' में भारतेंदु की जो कविता-धारा बही है वह निरन्तर अपनी मधुर मादक और शीतल लहरों से मन को आप्लावित करती हुई प्रेम और शृंगार, हास्य और विनोद, वीर और करुणा के छींटे देती हुई अन्त में देशानुराग में जाकर लीन होगई है।

'भक्त सर्वस्व' भारतेंदुजी ने "अपनी कविता प्रकट करने और कवियों को प्रसन्न करने के लिए नहीं लिखा है, केवल (अपनी) वाणी पवित्र करने और प्रेम रंग में रँगे हुए वैष्णवों के आनन्द के हेतु लिखा है।" विषय की दृष्टि से वह हिन्दी काव्य-परम्परा में अद्वितीय और अपूर्व ग्रन्थ है। 'भक्त सर्वस्व' के उपास्य हैं—

दच्छिन दिसि चन्द्रावली श्रीराधा दिसि वाम।
तिन के मधि नट रूप धर जै जै श्री घनश्याम॥

उन भगवान् कृष्ण के युगल चरणों में स्थित ३२ चिन्हों का वर्णन 'सर्वस्व' में है :

स्वस्तिक, स्यन्दन, सख, सक्ति, सिंहासन सुन्दर।
अंकुश, ऊरधरेख, अब्ज, अठकोन अमलतर॥
बाजी, बारन, वेनु, बारिचर, वज्र बिमल वर।
कुन्त, कुमुद, कलधौत, कुंभ, कोदण्ड, कलाधर॥
असि, गदा, छत्र, नवकोन, जव, तिल, त्रिकोन, तरु, तीर गृह।
'हरिश्चन्द' चिन्ह बत्तिस लखे अग्निकुण्ड, अहि, सैल सह॥

कवि की प्रस्तावना और विषय को देखकर ही इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कवि के हृदय में भक्ति की एक अपराजित प्रेरणा है जो प्रतिभा को नियोजित कर लेती है। 'सर्वस्व' को पढ़कर भारतेंदु के भीतर बैठे हुए भक्त को पहचाना जा सकता है:

नवों खण्ड पनि होत हैं सेवत जे पदकंजु।
चिन्ह धरत नवकोन को या हित हरिपदमंजु॥
(नव कोण चिन्ह को भाव वर्णन)

ब्रह्मा-हरि-हर तीनि सुर याही ते प्रगटन्त।
या हित चिन्ह त्रिकोण को धारत राधाकन्त॥
(त्रिकोण के चिन्ह को भाव बर्णन)

भक्ति-काव्यों मे नाभादास का 'भक्तमाल' (१६५० वि) प्रसिद्ध है। भारतेंदु ने इसी के लिए उत्तरार्द्ध की रचना की:

नाभाजी महराज ने भक्तमाल रस जाल।
आलबाल हरि प्रेम की बिरची होइ दयाल॥
तो पाछे अब लौ भये जे हरि-पद-रत सन्त।
तिनकै जस बरनन करत सोइ हरि कहँ अति कन्त॥

और भक्तमाल के पीछे के भक्तों के परिचय जोड़े।

अपने हृदय की सौ मणियों से भारतेंदु ने 'प्रेम-मालिका' (सं० १६२८) भी गूँथी है, जिसमें कवि के बनाये "कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन एकत्र किये गये हैं। इसमें कीर्तन तीन भाँति

के हैं—एक तो लीला-सम्बन्धी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम "प्रेममय अनुभव के हैं।" परम प्रीति से यह प्रेम पुष्प-ग्रथित मालिका उसी के श्रीकण्ठ में समर्पित है जो इसमें गाया गया है। 'कृष्ण चरित्र' 'प्रेम फुलवारी' और 'प्रेम मालिका' के कीर्तन पद पढ़कर बार बार प्रेमी भक्त सूर सामने आ जाते हैं :

सखी री देखहु बाल विनोद।
खेलत राम-कृष्ण दोउ आँगन किलकत हँसत प्रमोद।
कबहुं घुटरुअन दौरत दोउ मिलि धूर धूसरित गात॥
देखि देखि यह बाल चरित छबि जननी बलि बलि जात।
झगरत कबहुँ दोउ आनंद भरि कबहु चलत हैं धाय॥
कबहुँ गहत माता की चोटी माखन माँगत आय।
घर घर तें आवत ब्रजनारी देखन यह आनंद॥
बालरूप क्रीडत हरि आँगन छबि लखि बलि हरिचंद। (प्रेम मालिका)

हां, कभी मीरा का इकतारा भी उसमें बज उठता है :

म्हारी सेजाँ आवो जू लाल बिहारी।
रंग रंगीली सेज सँवारी लागी छे आशा थारी।
बिरह बिथा बाढी घणी ही मैं सो नहिं जात सँभारी॥
'हरिचन्द' सों जाय कहो कोउ तलफै छे थारे बिन प्यारी॥

प्रेमी होने से पहले हरिश्चन्द्र कृष्ण-भक्त हैं। राधा और नन्दकिशोर की लीलाओं पर वे तन-मन से निछावर हैं कभी प्रेम की धारा 'कार्तिक स्नान' से उनका अभिषेक करते हैं तो कभी 'प्रेमाश्रुवर्षण' से; कभी उन्हें 'प्रेम-सरोवर' में स्नान कराते हैं तो कभी उनकी 'प्रेम माधुरी' को छककर आनन्द-विभोर हो जाते हैं। कभी भक्त के हृदय-वारिधि में विरह-पवन की हिलोर पाकर 'प्रेम-तरङ्ग' उमड़ आती है :

भक्त हृदय वारिधि अगम झलकत स्यामहि रंग।
विरह पवन हिलोर लहि उमग्यो प्रेम-तरंग। (प्रेम तरंग)

सो सभी प्रेमी भक्त 'प्रेम-प्रलाप' कर उठता है, जिसमें प्रेमी के अनुनय-विनय, आग्रह-अनुग्रह, मान-मनौवल और व्यंग्य-उपालम्भ मुखरित हैं तो कभी प्रेमी के विहार के लिए 'प्रेम-फुलवारी' लगाकर उसके मार्ग में पलकें बिछाता है। 'कृष्ण-चरित्र' के छन्दों और गीतियों में अष्टछाप के कवि की सी कृष्ण-भक्ति छलकती है।

'प्रेम-माधुरी' में रीतियुगीन काव्य की पूरी छाप है और देव और मतिराम, रसखान और घनानंद, पदमाकर और तोष से उन्नीस वे नहीं जान पड़ते—

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेरि
रूप सुधा मधि कीनो नैनहू पयान है।
हँसनि, नटनि, चितवनि मुसुकानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति मय पान है।

मोहि मोहि मोहनमई री मन मेरो भयो
'हरीचँद' भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय
हिय में न जानी परै कान्ह है कि प्रान है।

२

भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकीसी थकी सी गोपी
दुखी सी रहत कछू नाहीं सुधि देह की।
मोही सी लुभाई कछु मोदक सो खाये सदा
बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की।
रिसभरी रहै कबौ फूलि न समाति अंग
हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की।
पूछे ते खिसानी होय उतर न आवै ताहि
जानी हम जानी है निसानो या सनेह की।

(३)

एक ही गाँव में बास सदा घर पास इहौ नहिं जानती हैं ।
पुनि पाँचएँ सातएँ आवत जात की आस न चित्त में आनती हैं ।
हम कौन उपाय करैं इनको 'हरिचन्द' महा हठ ठानती हैं ।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया दुखिया नहि मानती हैं ।
(प्रे. मा.)

शास्त्रानुसार रीति-ग्रन्थ न होते हुए भी प्रेम माधुरी में प्रेम (शृंगार) के समस्त संचारियों और अनुभावों का आलेखन मिल जायगा ।

भारतेन्दु से पहले, रीतियुग के राशि-राशि कवि अपनी शत-सहस्र कविताओं से हिन्दी-भारती के मंदिर में प्रशस्ति-पाठ कर रहे थे, फिर भी भारतेन्दु अपनी कविता में एक नवीनता ला सके यह देखकर भारतेन्दु की प्रतिभा पर विस्मित हो जाना पड़ता है। भारतेन्दु में भक्तियुग और रीतियुग की सभी धाराओं का संगम था । परन्तु वे भारती के मंदिर के द्वार पर खड़े सीढ़ियाँ उतर कर राजपथ पर आने का उपक्रम कर रहे थे। दिशा-विदिशा की स्वस्थ-वायु उनके न केवल उत्तरीय को उड़ा रही थी, किन्तु तन-मन-प्राणों में स्वस्थ रक्त का संचार कर रही थी ।भारतेन्दु प्रेमी थे, रईस थे, वैभव की गोद में पले थे, साहित्यकलाजीवी थे, अतः कविता उनके लिए जीवन-श्वास बनकर आई थी । उठते-बैठते चलते-फिरते, सोते-जागते वे कविता रचते थे—हाँ, सोते-सोते स्वप्न में उन्होंने (अंग्रेजी कवि कोलरिज की भाँति) एक लम्बी लावनी रची थी—

मोहि छाँडि प्रानप्रिय कहूँ अनत अनुरागे ।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे॥

रहे एक दिना वे जो हरि के संग जाते।
वृन्दावन कुञ्जन रमत फिरत मदमाते ॥
दिन रैन स्याम सुख मेरे ही संग पाते।
मुझे देखे बिन इक छन प्यारे अकुलाते ॥
सोई गोपीपति कुबरी के रस पागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे॥

इत्यादि

विविध भाषाओं के कवि

ये सब कविताएँ शताब्दियों से प्रचलित अपनी प्यारी ब्रज-भाषा में ही उन्होंने लिखी थीं, परन्तु उन्होंने किस भाषा में कविता नहीं लिखी? बंगला में? गुजराती मे? राजस्थानी में? पंजाबी में? उर्दू में? खड़ी हिन्दी म? संस्कृत में? सबका एक ही उत्तर है—नहीं। भारतेन्दु विविध भाषाओं के कवि थे। उनकी बँगला कविता पढ़कर चंडीदास याद आ जाते है-निभृत निशीथ में उसने बाँसुरी बजाई है, वन, गगन और घन उस वंशीरव से भर गये हैं। वह समीर में कंपन भरती हुई मधुर गर्जन करती है, कवि हरिश्चन्द्र उस वंशी को सुनता है—

निभृत निशीथे सेई ओ बाँशी बाजिल ॥
पूरित करिया बन भेदिया गगन घन,
जे काँपाइया समीरन मधुर रवे गाजिल।
स्तम्भित प्रवाह नीर! ताड़ित मयूर करि,
झङ्कारिया तरुगन एक तान साजिल।
'हरिश्चन्द्र' श्याम-बांशी, स्वर कामदेव फाँसी,
कुलवधु सुनियाई आर्य-पथ. त्याजिल। 'प्रेम-तरंग'

उनकी गुजराती कविता गुजरात के न्हानालाल दलपतराम

की स्मृति दिलाती है—

थारे पुख पर सुन्दर श्याम लटूरी लट लटके छे।
जेने जोईने म्हारो मन लाल जाइजाइ अटके छे।
थारा सुन्दर नैन विशाल प्यारा अति रूड़ा छे।
जेने जोई ने जग ना रूप लागे भूँडा छे।
थारा सुन्दर गोल कपोल गुलाब जेव्ह फूल्या छे।
जेने जोई ने मन भ्रमर जुवतिओ ना भूल्या छे।
तारो नख सिख रूप अनूप सोभा प्यारी छे।
जेनी सोभा लखी ने हरीचन्द बलिहारी छे।

तेरे मुखपर प्यारे श्याम सुन्दर! घुँघराली अलक लहरा रही है, जिसे देखकर प्यारे, मेरा मन अटक जाता है। अत्यन्त प्यारे और सुन्दर हैं तेरे विशाल नेत्र, जिन्हें देखकर संसार के सब रूप कुरूप लगते हैं, तेरे गोल कपोल गुलाब के पुष्प के समान विकसित हैं जिन पर युवतियों के मन-भ्रमर भ्रान्त हैं। नख से शिख तक तेरी अनुपम रूप-शोभा देखकर हरिश्चन्द्र तुझ पर बलिहार है!

पञ्जाबी भाषा की इस गीति में वे नानक के प्रतिरूप-से लगते हैं—

बेदरदी वे लड़वे लगी तैंड़े नाल ॥

वे परवाही वारी जी तू मेरा साहबा असी इत्थों बिरह-बिहाल
चाहनेवाले दी फिकर न तुझ नूँ गल्लाँ दा ज्वाब ना स्वाल।
'हरीचन्द' ततवोर ना सुझदी आशक बेतुल-माल।

ऐ निर्मोही! तेरे साथ लड़ने चली हूँ। मै तेरी बेपरवाही पर निछावर हूँ मेरे स्वामी! इधर मैं विरह से बेहाल हूँ-उधर तुझे चाहने

वाले की कोई फिकर नहीं। न कोई बात का सवाल-जवाब! कोई उपाय नहीं सूझता!

उर्दू की इस गजल में वे जौक और ग़ालिब से होड़ ले रहे हैं—

रहमत का तेरे उम्मीदवार आया हूँ।
मुँह ढाँपे कफ़न में शर्मसार आया हूँ।
आने न दिया बारे गुनह ने पैदल।
तावूत में कंधा पै सवार आया हूँ।

'फूलों का गुच्छा' पूरा 'रसा' (भारतेन्दु) साहब की उर्दू की कविताओं से ही बना है।

उनकी संस्कृत की रचनाएँ देखकर तो 'गीतगोविंद' के जयदेव की स्मृति आजाती है:—

हरिरिह विलसति सखि ऋतु राजे।
मदन महोत्सव वेषविभूषित पल्लव–रमणि समाजे।
मुकुलिताद्ध मुकुलित पाटलगण शोभितोपवन देशे।
शकुन पण्डुरी कृत सुविवाहार्थित सिद्धार्थक वेशे।
त्रिविध पवन पूरित पराग पटलान्धमधुप झंकारे।
आम्रमञ्जरी वेषविभूषित रति सहचरी–विहारे।
कूजित केकावलि कलकण्ठ प्रतिध्वनि पूरित तीरे।
प्रकटित हृदयगतानुराग कमलच्छल यमुना तीरे।

'मधु-मुकुल'

'गीतगोविंद' का पद्यानुवाद "गीतगोविन्दानन्द" कवि ने रस में डूबकर ही किया होगा।

सुकवि बिहारी के दोहों को तो उन्होंने इतना पी लिया था कि उन्हें 'सतसई-सिंगार' के रूप में द्विगुणित-चतुर्गुणित करके

कुण्डलित कर दिया।

अधर धरत हरि के परत ओठ दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रँग होति।
इन्द्र-धनुष रँग होति स्याम घन लहि छवि पावत।
याहीं ते हरि सुध-सार सम रस बरसावत।
मुक्तमाल बकपाँति साँझ फूली माला मघ।
बिजुरी सम 'हरिचन्द' पीतपट रह्यो अपटि अघ।

(सतसई-सिंगार)

'वर्षा-विनोद' लिखते लिखते बर्क (बिजली) की चमक से इस प्रेमी को अपने बर्कवश (विद्युतोपम) की याद आ गई और वह फूट पड़ा—

चमक से बर्क के उस बर्कवश की याद आई है।
घुटा है दम घटी है जाँ घटा जब से ये छाई है।
कौन सुने कासों कहौं सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत हैं ए बदरा बदराह।
बहुत इन जालिमों ने आह अब आफत उठाई है।
अहो पथिक कहियो इतो गिरधारी सों टेर।
दृगभर लाई राधिका अब बूड़त ब्रज फेर।
बचाओ जल्द इस सैलाब से प्यारे दुहाई है!

मारवाड़ी मराठी, पूर्वी—सभी बोलियों को उन्होंने कृतार्थ किया है। खड़ी बोली में भी कविता के कई प्रयोग उन्होंने किये, परन्तु उनमें वे ब्रजभाषा की स्वाभाविक मधुरिमा न भर सके।

भक्ति और प्रेम की कविताओं की इतनी विपुल सृष्टि भारतेन्दु की वीणा से हुई है कि उसे भक्ति अथवा रीति काव्य के वर्गों में

बाँटना दुष्कर कार्य्य है। वे भक्ति और रीति कविता के समन्वित रूप थे। उसके रंग में वे पूर्णतया डूबे हुए थे। परन्तु उन्होंने रीति-शास्त्र के निर्माण के लिए काव्य-प्रतिभा का व्यय नहीं किया; उनकी पुष्कल काव्य-राशि में से कितने ही रीति-शास्त्र बनालें यह शास्त्रियों का कार्य्य है।

देशानुराग की धारा .

राधा और कृष्ण के चरणों में प्रवाहित होने-वाली भारतेन्दु की यह अनुराग-धारा भक्ति और रीति की लक्ष्मण-रेखा में ही सीमित नहीं रही। वर्षा-विनोद में :

बिजुरी चमकि चमकि डरपावै मोहि अकेली पिय बिनु जानि।
बादर गरजि गरजि अति तरजै पचरंग धनुही तानि।
मोरवा बैरी कड़खा गावै मनमथ बिरद बखानि।
पिय 'हरिचन्द' गरें लगि मरियत अरज लेहु यह मानि।

की मनुहार करते-करते कवि एक दम स्वार्थी, कुलघाती, देशद्रोही राजा जयचंद को कोसने लगजाता है—

काहे तू चौका लगाय जयचँदवा।
अपने स्वारथ भूलि लुभाए काहे चोटी कटवा बुलाये जयचँदवा।
अपने हाथ से अपने कुल कै काहे तैं जडवा कटाए ज्यचँदवा।
फूट के फल सब भारत बोये बैरी के राह खुलाए जयचँदवा।
और नासितैं आपो बिलाने निज मुँह कजरी पुताय जयचँदवा।

'वर्षा-विनोद'

विक्रम, भोज, चन्द्रगुप्त और चाणक्य के महिमामय अतीत की ओर इंगित करते हुए कवि वर्तमान की ओर देखता है और चक्रधर को जगाता है—

जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदिर।
तहँ मस्जिद बनिगईं होत अब अल्ला अकबर॥
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर।
तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर॥
जहँ धन-विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सबही विधि बेबसी अब तो जागौ चक्रधर॥

कवि की यह 'प्रबोधिनी' (सं १९३१) हिन्दी-कविता में क्रान्ति की भैरवी सुनाने आई थी। कवि जीवन के प्रति, युग के प्रति कितना जागरूक था--'प्रबोधिनी' 'इसका उत्तर है। कवि की यह 'प्रबोधिनी' प्रथम राष्ट्रीय कविता के रूप में अमर रहेगी। क्योंकि उसमें भावी की एक उज्ज्वल रूपरेखा भी है :

सब देसन की कला सिमिटि कै इतही आवै।
कर राजा नहिं लेइ प्रजन पैं हेत बढ़ावै॥
गाय दूध बहु देहि तिनहि कोऊ न नसावै।
द्विजगन आस्तिक होइ मेघ सुभजल बरसावै॥
तजि छुद्र वासना नर सबै निज उछाह उन्नति करहिं।
कहि कृष्ण राधिकानाथ जय हमहूँ जिय आनन्द भरहिं॥

'यजुर्वेद' का आब्रह्मन सूक्त ही मानो इसमें अंशतः ढल आया है :

आब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथी जायताम्। दोग्ध्री धेनुः, वोढानड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरंधिर्योषाः, जिष्णू रथेष्ठा, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु।......

भारतेन्दु के पूर्वज अंग्रेज सरकार के फ़र्माबरदार और हिमायती थे। वे जिस राज-दरबारी सभ्यता में पले हुए थे।

अँग्रेजी राज उनके लिए "सुख साज" वाला था क्योंकि वह मुसलमानी बादशाही के अनाचारों के ऊपर अभयदान लेकर आया था। उनकी यह राजभक्ति उनकी स्फुट कविताओं में प्रस्फुटित हुई है. परन्तु एक बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि कवि चाहे सन् १८५० के भारतीय विद्रोह के चार वर्ष पीछे होने वाली प्रिंस एल्बर्ट (विक्टोरिया के पति) की मृत्यु पर शोक-प्रबन्ध लिखता रहा हो, ड्यूक ऑफ एडिनबरा के सन १८६६ में भारत-शुभागमन के अवसर पर "श्री राजकुमार-सुस्वागत-पत्र" और प्रिंस ऑफ वेल्स के १८७१ में रुग्ण होने पर उनके आरोग्य-लाभ की प्रार्थना द्वारा और भारतागमन (१८७५) पर स्वागत द्वारा अपनी राजभक्ति बतलाता रहा हो, राजराजेश्वरी भारताधीश्वरी विक्टोरिया को 'मनोमुकुल माला' पहनाता रहा हो, और १८८२ ई० में मिस्र में भारतीय फौज की विजय पर :

फरकि उठी सबकी भुजा, खरकि उठी तलवार।
क्यों आपुहिं ऊँचे भए, आर्य मोंछ के बार॥
जे आरज गन आज लौं, रहे नवाये नाथ।
तेहू सिर ऊँचो किए, क्यों दिखात इक साथ॥

के भावोल्लास में मग्न होकर आर्यगण की गौरव-गाथा गाता रहा हो, परन्तु अंग्रेजी शासक की शोषण-नीति पर व्यंग्य भी तो करता रहा है

भीतर भीतर सब रस चूसै; हंसि हँसि कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन ? नहिं अँगरेज।

राधा-रानी की आँखमिचौनी भलेही कवि भारतेन्दु की प्रेमी आँख ने देखी हो, परन्तु अब कवि की दृष्टि जीवन के कर्कश और कठोर, विरूप और कुरूप, मलिन और खिन्न, दीन और हीन पक्ष

पर भी पड़ने लगी थी। बंगाल की दुर्गापूजा के अवसर पर होने वाले अजमेध को देखकर 'बकरी-विलाप' उसकी लेखनी करने लगी थी:

मानुषजन सों कठिन कोउ जन्तु नाहिं जग वीच।
बिकल छाँड़ि मोहिं पुत्र लै हनत हाय सब नीच॥

रति-विलास को छोड़कर कवि जन-जीवन के अनेक कोने झाँकने का अवकाश पा सका था—

बोलैं तमचोर कहूँ ऊँचो करि माथ।
अल्ला अकबर करैं मुल्ला साथ साथ।

× ×

सड़क सफाई होत करि छिड़काव।
बग्गी बैठि हवा खाते आवैं उमगाव॥

शताब्दियों से हिन्दी-कविता भक्ति या शृंगार के रंग में रँगी चली आ रही थी। केवल चुम्बन और आलिंगन, रति और विलास, रोमाञ्च और स्वेद, स्वकीया और परकीया की कड़ियों में जकड़ी हुई हिन्दी कविता को भारतेन्दु ने सर्व प्रथम भाव (रंग) की विलासभवन और लीला-कुञ्जों से बाहर क्रांति लाकर लोक-जीवन के राजपथ पर खड़ा कर दिया। हिन्दी-कविता में भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज के वक्षःस्थल की धड़कन को सुनाया। आर्थिक जीवन में महँगी, अकाल, टैक्स और धन का विदेश-प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र में बहुदेवपूजा और मत-मतान्तर के झगड़े, सामाजिक क्षेत्र में जाति-पाँति के टण्टे, और खान-पान के पचड़े, और बाल-विवाह, नैतिक क्षेत्र में, पारस्परिक कलह और विरोध, उद्यमहीनता और आलस्य, भाषा भूषा-भेष की विस्मृति तथा राजनीतिक क्षेत्र में पराधीनता और दासता जीवन के ये भिन्न भिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रसूत होने लगे थे। अपनी कहमुकरनियों में, अपने "भारत-दुर्दशा" नाटक में आई

हुई कविताओं में, अपनी राज-प्रशस्तियों में, अपनी होलियों और लोक-गीतों में भी भारतेन्दु इन विषयों को नहीं भूले हैं। राजसी सभ्यता और राजभक्ति के संस्कार में पालित-पोषित होकर भी भारतेन्दु का स्वर जनता का स्वर है—यह हमें गर्व के साथ स्वीकार करना पड़ेगा। भारतेन्दु ने कविता को यह नई दिशा दिखाई। काव्य में यह रंग-परिवर्तन हिन्दी ने पहली बार देखा। व्रजभाषा में यह विषय-एक क्रांति थी। शताब्दियों से रुग्ण हिन्दी कविता-कामिनी को यह सञ्जीवनी मिली। कवि ने कामुक लीला-विलास में भूली हुई कविता को महानन्द और सिकन्दर, चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस, विक्रम और शक, पृथ्वीराज और गौरी के युद्धों, पञ्चनद और पानीपत, चित्तौड़ और थानेश्वर जैसे युद्धतीर्थों और विश्वेश्वर और सोमनाथ के मंदिरों वाले गौरवोज्ज्वल अतीत की स्मृति दिलादी। एक बार फिर हिमगिरि और गंगा का भारत-देश कवियों का गेय बना। उसके सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक क्षेत्र पर कवियों की काव्यधारा बही। जीवन और काव्य का युग-युग का टूटा सम्बन्ध पुनः स्थापित हुआ। काव्य का स्वर बदला, भाव बदला, रंग बदला। हिन्दी-कविता की इस भाव-क्रान्ति के विधायक थे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। ऐसे भारतेन्दु की अर्चना उन्हींके शब्दों में हो सकती है—

परम प्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुन खानि।
जगजन जन आशुकवि को हरिचन्द समान?
जग जिन तृन सम करि तज्यो अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन लीजत वाको नाँव॥
जिन श्री गिरिधरि दास कवि रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचन्द्र को को न नवावै सीस?

: ३ :

भारतेन्दु-मण्डल के अन्य नक्षत्र

भारतेन्दु हिन्दी कविता में जिस भाव-क्रान्ति के विधायक थे, उसकी पताका ऊंची उठानेवाले थे उनके सहयोगी और समान-शील साहित्यकार श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और मनमौजी जीव श्री प्रतापनारायण मिश्र। ये दोनों भारतेन्दु के दायें और बायें हाथ ही थे। इन्हीं तीन स्तम्भों पर भारतेन्दु-काल की हिन्दी-कविता का प्रासाद खड़ा है। हिन्दी-कविता मे भारतेन्दु ने जिस नवीन भाव-सरणि का सञ्चार किया था वह इन दोनों कवियों को आकण्ठ मग्न करती हुई बहने लगी। अम्बिकादत्त व्यास 'सुकवि,' राधाकृष्णदास, बाबू बालमुकुन्द गुप्त और राधाचरण गोस्वामी इसी मण्डल के नक्षत्र थे।

भारतेन्दु की कविताएँ रंग (भाव) की दृष्टि से दो प्रकार की थीं। पहिले वे जिनमें भक्ति अथवा रीतिकालीन रंग है। वह सब कविता व्रजराज, व्रजरानी और इनकी लीलाओं का चित्राधार है-व्रजवाणी में तो वह है ही। दूसरी वे जो भाव की दृष्टि से भावी दिशा की ओर संकेत करती हैं—जिनमें गेय भारत और उसका तात्कालिक जीवन हो गया है।

भारतेन्दु दो युगों के उस संधिस्थल पर खड़े थे, जिनके एक ओर शताब्दियों से शृंगारिक धारा बह रही है सूर और अष्टछाप" के सरे कवियों से लेकर गोपालचन्द्र गिरिधरदास तक भक्ति और

रीति के राशि-राशि कवियों की पंक्ति खड़ी है और भारतेन्दु उनकी ओर देखकर अपने आपको उनका अन्तिम अनुचर बता रहे हैं और दूसरी ओर भारतेन्दु जन्म दे रहे हैं आनेवाली कविता-धारा को, जो उनके पश्चात् अविराम गति और अदम्य वेग के साथ यथार्थ जीवन की कठोर भूमि पर बहने लगी है।

भारतेन्दुजी सहयोगी और उत्तराधिकारी 'प्रेमघन' के 'प्रेमघन' की कविताओं में हमें भारतेन्दु की देशभक्ति का स्वर अत्यन्त प्रखर और प्रबल सुनाई पड़ता है। देशभाषा हिन्दी के लिए उनके हृदय में जो प्रेम था,

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल।

उसकी 'प्रेमघन' जी ने अपनी लम्बी कविता "आनन्द बधाई में सबल वकालत और भविष्यवाणी की है—

निश्चय समझहु अवसि एक दिन ऐसो ऐहै।
भारत देस अनेक बीच एकै राह जैहै॥
यहै देवनागरी अलौकिक बरन मालिका।
यहै नागरीभाषा जो संस्कृत मालिका॥

× × ×

जब एकै मति गति सिच्छा दिच्छा रच्छा विधि।
एक हानि औ लाभ एक सासक सों है सिधि॥
एक चाल ब्योहार संग सब एक होत जब।
इक अच्छर इक भाषा बिन किमि काम चलै तब?

अपनी प्रारंभिक रचनाओं में तो उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' 'प्रेमघन' ही बने रहे और 'युगल मंगल-स्तोत्र' 'ब्रजचन्द-पञ्चक' आदि लिखकर' सीसमुकुट कर मैं लकुट, कटितट पट है पीत' ही गाते और 'रँगीलेलाल' से बिहारी की तरह अनुरोध करते रहे—

मुरली राजत अधर पर उर बिलसत बनमाल।
आप सोई मो मन बसौ सदा रँगीले लाल।

परन्तु सं० १६५० वि० में लिखो उनकी कविता-'कलिकालतर्पण'—का स्वर एकदम आधुनिक है। युगलमूर्ति राधा-कृष्ण के पश्चात् कविता में एकदम भारत-देवता की प्रतिष्ठा हो जाना भारतेन्दु का ही पुण्य प्रताप था। १६३० वि० में भारतेन्दु का कवि ब्रजराज को यह 'प्रबोधिनी' सुना चुका था—

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।
आलस-दव एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो।
महा मूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो।
कृपा दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो।

और अब "प्रेमघन" भी कलिकाल का तर्पण इसी स्वर में कर रहे हैं—

हरयो राज बल विद्या ज्ञान।
किया भले भारत अपमान।
मारि काटि कीजे वीरान।
दीन हीन अब हिन्दुस्तान।

भारतेन्दु आर्थिक दासता को अपनी भैरवी में गा चुके थे—

'परदेसी जुलहान के मानहुँ भये गुलाम'

और देशवासियों की जड़ता पर दुख प्रकट कर चुके थे—

धन विदेस चलि जात तऊ जिय होत न चञ्चल
जड़ समान ह्वै रहत अकिल हति, रचि न सकत कल।

तो "प्रेमघन" भी 'काल' (अकाल) की ओर इंगित कर रहे हैं—

भागो भागो अब काल पड़ा है भारी।
भारत पे घेरी घटा बिपत की कारी।

मब गये बनज व्यापार इतै सों भागी।
उद्यम पौरुष नसि दियो बनाय अभागी।
× × ×
अब बची खुची खेती हू खिसकन लागी।
चारहुँ दिसि लागी है महँगी की आगी॥
सुनिये विलाय सब परजा भई भिखारी।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी॥

आर्थिक जीवन के सभी रेखा-चित्र उनकी लेखनी ने खींचे हैं—

(१) आर्थिक हानि—हम बनज करैं पर उल्टो हानि उठावैं।
हम उद्यम करके लागत भी नहिं पावैं॥
(२) ऋण और लगान-हम खेती करके बेढ़ निमार गवावैं।
औ करजा कै सरकारी जमा चुकावैं॥
(३) अल्प वेतन,—हम करैं नौकरी बहुत तलब कम पाते।
थे किसी तरह से अब तक पेट जिलाते॥
(४) मँहगी और भूख इस मँहगी से नित एकादशी मनाते।
लड़के बाले सब घर में हैं चिल्लाते॥

प्रेमी और प्रेमिका, राधा और कृष्ण की 'आँखमिचौनी' को देखनेवाली आँखें आज देश की दुर्दशा देख रही हैं; कोमल और पपीहा की ही प्रकार सुननेवाले कान आज मँहगी और भूख का हाहाकार भी सुन रहे हैं। यही कविता में नया स्वर, नया भाव, नया रँग है।

भारतेन्दु की भाँति 'प्रेमघन' भी इक्ष्वाकु, हरिश्चन्द्र, रघु, अज, दिलीप, राम, बुद्ध, महावीर, अर्जुन और भीम, प्रतिष्ठानपुर, इन्द्रप्रस्थ, सोमनाथ, पाटलिपुत्र की स्मृति दिलाते हुए देश की

नैतिक और धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधोगति पर पर आँसू बहाते हैं-"सहृदय को अस जो भला सके सोक हिय रोकि"

वे भारतेन्दु की भाँति 'ग़ुलाम राधारानी के' तो नहीं थे, परन्तु चाहते तो रीतियुगीन रंग में रँग सकते थे—

दोउन के मुखचन्द चितै अँखियाँ दुनहून की होत चकोरी।
दोऊ दुहूँ के दया के उपासी दूहून की दोऊ करैं चित चोरी।
यों घनप्रेम दोउ घन प्रेम भरे बरसैं रस रीति अथोरी।
यो गन मंदिर में बिहरैं घनस्याम लिये वृषभान किशोरी।

"प्रेम पीयूष वर्षा"

वे देव, मतिराम और पद्माकर के प्रेम, रस और शब्द-लालित्य का संगम उपस्थित कर सकते थे—

सावन समान करि आयो री महान् मैन
मीत बलवान् साजे सैन बगुलान की।
धनु इन्द्रधनु बान बुन्द बानसान वन्दी
बिन्द समान कल कूक मुरवान की।

प्रेमघन प्रान प्रिय बिन अकुलान लाग्यो
लखत कृपान सी चलान चपलान की।
धीरज परान हहरान हिय लाग्यो सुन
धुन धुरवान घोर घुमड़ी घटान की।

परन्तु भारतेन्दु ने वीणा पर जो देशानुराग का राग और भारत दुर्दशा का स्वर छेड़ दिया था, वह अब वातावरण में अधिक गूँजता था। युगधर्म की माँग कविता को दिशा बता रही थी। भारतेन्दु ने अपने काव्य का चतुर्थांश समाज और देश के जीवन को अर्पण किया होगा, 'प्रेमघन' ने अपने काव्य का चतुर्थांश

'रानी राधिका सह माधव ब्रजचन्द' के चरणों में अर्पण किया, शेष सब समाज और देश को। इस अर्थ में 'प्रेमघन' भारतेन्दु के बिल्कुल विलोम थे।

भारतेन्दु और "प्रेमघन" दोनों भारतदेश के भक्त होते हुएभी राजभक्ति को नहीं भूलते। 'प्रेमघन' महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबिली पर' हार्दिक हर्षादर्श' लिखते हुए १८५७ ई० की ओर संकेत करते हैं—

देसी मूढ़ सिपाह कछुक लै कुटिल प्रजा सँग।
कियो अमित उत्पात रच्यो निज नासन को ढँग।

और कम्पनी का शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने पर महारानी की स्तुति करते हैं—

धन्य ईसवी सन् अट्ठारह सौ अट्ठावन।
प्रथम नवम्बर दिवस सिनामत भेद मिटावन।
अभय दान जब पाय प्रजा भारत हरषानी।
अरु लहि तुम सी दयावती माता महारानी॥

यह राजभक्ति आज हमारे लिए असह्य होसकती है, परन्तु 'प्रेमघन' जी के पास प्रशस्ति-पाठ का आधार है—

जह दिन दुपहर परत रहे डाके नगरन में।
तहँ रच्छक निरखियत पथिक जन के हित बन मे।
जहाँ काफिले लुटत रहे सौ यतन किये हूँ।
जिन दुरगम थल माहि गयो कोऊ नहिं अबहूँ।
रेल यान परभात अँधेरी रात हुँ निधरक।
अन्ध पगु, निस्सहाय जात अबला बाला तक।

रेल, डाक, तार, डाक्टर, विद्यालय और विश्वविद्यालय के कारण अंग्रेजी शासन को ईश्वरीय देन माननेवाले व्यक्ति इस 'भारत छोड़ो' के समय में भी मिल जायेंगे, फिर वह तो १६ वीं शताब्दी थी !

भारतीय राजनीति की कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना न होगी, जिसपर 'प्रेमघन' ने (भारतेन्दु की भाँति) छन्द न लिखे होंगे ? एडवर्ड के भारताभिषेक पर उन्होंने 'भारत-बधाई' लिखी, क्योंकि

> श्रीमति भई राजराजेसुरि जबै । हमारी
> गई सुतंत्र नाम मों हम सब प्रजा पुकारी ॥

प्रिंस आफ वेल्स एडवर्ड के भारतागमन पर उन्होंने उनका 'आर्य्याभिनन्दन' किया, पञ्चम जार्ज के दिल्ली-दरबार पर 'सौभाग्य समागम' उन्होंने लिखा, और भारतीय राजनीति के पिता दादाभाई नौरोजी के (१८६७ ई० में) पार्लमेंट के सदस्य निर्वाचित होने पर उन्होंने 'मंगलाशा' मनाकर उन्हें आशीर्वाद दिया था—

> महामंत्रि को वचन मेटि तुमहीं बिन कारन ।
> गोरन राजसभा में कारन के बैठारन ॥
> × × ×
> यहै असीस देत तुम कहँ मिलि हम सब कारे ।
> सफल होंहि मन के सब ही संकल्प तुमारे ॥

परन्तु यही राजभक्ति धीरे-धीरे अत्यन्त शुद्ध स्वदेशभक्ति के भी रूप विकसित हुई । कचहरियों में हिन्दी के प्रवेश पर उन्होंने 'आनन्द बधाई' गाई थी—

> होय प्रलग जो रही अबों लौं देवनागरी ;
> गुनि गुनगान गुनवान न्यायरत आप आदरी ॥

भारतेन्दु जी के समय हिन्दी और 'नागरी के पक्ष से एक विराट आन्दोलन चला था और उसकी प्रतिध्वनि भारतेन्दु, प्रेमघन और प्रतापनारायण तीनों की कविता में आई है।

अपने सगीत काव्य मे 'प्रेमघन' ने समाज की अनेक बुराइयों की खिल्ली उड़ाई है—

अच्छर चार पढ़े अग्रेजी बनि गय अफलातून।
मिलहि मेम तोहें पैसे जकर 'फियर फेस लाइक द मून'॥
बिस्कुट केक कहाँ तूँ पैब्यः चाभः चना भले भून।
डियर प्रेमघन हियर दया कर गान न गाओ लंमूपन॥

अपनी कजलियों, और होलियों में कुरीतियों पर उन्होंने तीखे व्यग्य किये हैं। कांग्रेस की विजय पर 'कबीर' भी गाया है—

कबीर भर रर र र र र हाँ।
विजय काग्रेस की भई अण्टी अण्टी खाय;
पकड गई पडि यह वह सुसकत है मुँह बाय।
भला—सब देश के बैरी रोवत हैं।

'जातीयगीत' प्रेमघन जी का

जय जय भारतभूमि भवानी।
जाकी सुयश पताका जग मे दसहूँ दिसि फहरानी।
× × ×
प्रनमत तस कोटि जन जाकहँ अजहुँ अरि जुग पानी॥

'चरखे' पर उनका गीत आज भी गाया जा सकता है—

चला चल चरखा तू दिनरात।
सन मन मंत्र जपाकर मन मे सुन न किसी को बात।
कात कात कर सूत मैनचिस्टर को कर दे मात॥

लंका से गंगाशायर का कर विलंब बिन घात।
शक्ति सुदर्शन चक्र की दिया हरि ने तुझे दिखात॥
ज्यों ज्यों तू चलता त्यों त्यों आता स्वराज नियरात।
हिन्दू-मुस्लिम जैन पारसी ईसाई सब जात।
सुखी होयँ हिय भरे प्रेमघन सकल भारती भ्रात॥

कविता में 'चरखा' 'स्वराज' और 'तीस कोटि की जनता' का गान सबसे पहले हिन्दी साहित्य ने इसी काल में दिया। ये कवि भारतीय जीवन के प्रत्येक स्पन्दन को अपने काव्य में मुखरित करते थे।

प्रतापनारायण मिश्र-जी कविताएँ भारतेन्दु और प्रेमघन की भाँति राधा-माधव को समर्पित न होकर, जनता-जनार्दन को समर्पित है। इनकी लेखनी छोटे-मोटे समस्त सामाजिक और धार्मिक विषयों पर चली है। जनता की अशन-वसन (रोटी-कपड़े की समस्या ने इन्हें व्यथित किया है।

प्रतापनारायण मिश्र

'ब्रेडला-स्वागत' उसका अपवाद है। इनकी रुचि विनोद की ओर थी और विनोदमय भाषा में ये सामाजिक दशा के सफल चित्रकार थे। 'तृप्यन्ताम' उनका ऐसा ही एक व्यंग्य चित्र है:

(१) महँगी और टिकस के मारे हमहिं क्षुधा पीड़ित तन छाम।
साग-पात लौ मिलै न जिय भरि लेवो वृथा दूध को नाम॥
तुमहि कहाँ ध्यावैं जब हमरो कटन रहत गोवंश तमाम।
केवल सुमुखि—अलक उपमा, लहि नागदेवता! तृप्यन्ताम॥

(२) लैसन, इनकम, चुंगी, चन्दा, पुलिस अदालत, बरसा, घाम।
सबके हाथन असन बसन जीवन संसयमय रहत मुदाम॥

जो इनहू ते प्रान बचै तो गोली बोलति आय धड़ाम।
मृत्यु देवता। नमस्कार तुम सब प्रकार बस तृप्यन्ताम ॥

'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के वे परम उपासक थे, इसलिए वे भी भारतेन्दु और प्रेमघन के स्वर में स्वर मिलाते हुए गाते हैं—

चहहु जो साँचो निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत-सन्तान।
जपहु निरन्तर एक जबान।
हिन्दी—हिन्दू—हिन्दुस्तान !

स्त्री-शिक्षा, बाल-विवाह, विधवा-विलाप, गोरक्षा, टैक्स, चुंगी, महंगी इनकी कविता के वर्ण्य हैं—

निज धर्म भली विधि जानैं।
निज गौरव को पहिचानैं ॥
स्त्रीगण को विद्या देवै।
करि पति व्रता यश लेवैं ॥

होली गाते हुए कवि पूछने लगता है—

महँगी और टिकस के मारे सगरी बस्तु अमोली है।
कौन भाँति त्योहार मनैये कैसे कहिये होली है ?
सब धन ढोयो जात बिलायत रह्यो दलिद्दर छाई।
अन्न वस्त्र कहँ सब जग तरसै होरी कहाँ सुहाई ?

और सच्ची लाली लाने के लिए प्रेरणा देता है:

झूठी यह गुलाब की लाली धोवत ही मिट जाय।
बाल व्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुँह छाय ॥

उनके ये सब सुधार 'ब्राह्मण'-रंग में रंगे हुए थे। उनके पत्र 'ब्राह्मण' नाम से ही संकेत मिलता है कि वे ब्राह्मणत्व के पोषक थे—

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब कहा बखानत ऋक, यजु, साम।
हम सपने हूँ में नहिं जानैं रहैं पेट के बने गुलाम ॥
तुमहिं लजावत जगत जनम ले दुहुँ लोकन में निपट निकाम।
कहैं कौन मुख लाइ हाइ फिर ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम ॥

गैया माता के प्रति उनके मन में एक किसान की सी श्रद्धा है:

गैया माता तुमका सुमिरो कीरति सबते बड़ी तुमारि।
करौ पालना तुम लरिकन कै पुरिखन बैतरना देउ तारि ॥
तुम्हरे दूध दही की महिमा जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका गोबर लगे पवित्तर होय ?

भारतेन्दु-काल के कवियों में से प्रतापनारायण में यह निरालापन था कि वे ठेठ लोक-भाषा के व्यवहार से भी सरलता और सरसता ला देते थे। बड़े विनोदी जीव थे वे। अपने 'बुढ़ापे' से उनके नाकोंदम आ गया है:

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तौ हम नकन्याय गयन।
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जान औ कैस करन ॥
दाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै बिन दाँतन मुँह अस पुपलान।
दाढ़िही पर बहि बहि आवत है कबौ तमाखू जौ फाँकन ॥
बार पाकिगे, रीरौ झुकिगै, मूँड़ौ सासुर हालन लाग।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन केहि के आगे दुख रवान ॥

भारतेन्दु-काल के सब कवि पत्रजीवी थे। भारतेन्दु 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' द्वारा, 'प्रेमघन' 'नागरीनीरद' और 'आनन्द कादम्बिनी' द्वारा, प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' द्वारा, अम्बिकादत्त व्यास 'पीयूष प्रवाह' द्वारा और राधाचरण गोस्वामी 'भारतेन्दु' द्वारा जनता के कवि बन रहे थे। जनता तक पहुँचने के लिए

उन्हींकी भाषा साधन हो सकती है। काव्यगुण की इन कवियों को इतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी अपने सामयिक और सुधारवादी विचारों को सीधी सरल और कभी खरी-खोटी भाषा में प्रकट कर देने की। वे 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' रचना करते थे। जिन आर्थिक, सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक, दैनन्दिन समस्याओं में इन सम्पादक कवियों को साँस लेना पड़ता था उन्हें वे अपनी 'कविता' द्वारा सुलझाते थे, अपना रोष और आक्रोश प्रकट करते थे, आदेश और उपदेश देते थे, भीख और सीख माँगते थे, रुदन और क्रन्दन करते थे, अनुनय-विनय करते थे, आग्रह-अनुग्रह दिखाते थे। कभी अतीत गौरव की स्मृति दिलाते थे, कभी वर्तमान के प्रति क्रोध और करुणा व्यक्त करते थे और कभी भावी का दिग्दर्शन करते थे। कभी गीतागायक का 'यदा यदा हि' वचन की सुधि दिलाते हुए पुकारते थे—

जब जब करी पुकार भूमि अवतरे तबो तब ॥
शिष्ट अनुग्रह कियो दुष्ट निग्रहन सबी सब।
रखी धर्म मर्याद याद करि कही कबी कब।
ऐसे क्यों निरदई भए हे दई अबी अब।

राधाचरण गोस्वामी

कभी अविद्या-राक्षस को शाप देते थे—

महा अविद्या–राच्छस ने या देसहि बहुत सतायो।
साहस पुरुषारथ उद्यम धन सबही बिधिन गँवायो।

(राधाकृष्णदास)

तो कभी स्वयं देशवासियों को उद्बोधन देते थे—

आओ एक प्रतिज्ञा करें । एक साथ सब जीवें मरें ।
अपनी चालें आप बनाओ । उनसे अपना अङ्ग सजाओ ।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

अम्बिकादत्त व्यास-जैसे अपरिवर्तनवादी या पुराणवादी इन अवाञ्छनीय सुधारों पर क्षुब्ध भी होते थे

जाति भेद का जगत विदित फुलवारी फूलो,
ये ताहू को तोरि करन चाहत निर्मूला ।

बालमुकुन्द गुप्त जैसे वर्णाश्रमधर्म के पोषक कवि "भला हम विधवा माँ का ब्याह करें ?" का व्यंग्य-बाण भी चलाते थे। परन्तु राजनीतिक जगत् मे सब एक-स्वर थे। सब 'हिन्दी हिन्दू हिन्द' के उपासक थे, सब भारतीय जातियों की एकता चाहते थे, समग्र भारत का उदय और उत्कर्ष चाहते थे, 'तीसकोटि' के साथ तादात्म्य अनुभव करते थे। उनकी देशभक्ति का स्वरूप 'प्रेमघन' के शब्दों में यह था—

आर्यजाति का हो अभ्युदय भूमि भारत पर ।
सत्य सनातन धर्म अटल हो उन्नत होकर ।
सुख समृद्धि धन अन्न शिल्प विज्ञान ज्ञान वर ।
बसें यहाँ सब विद्या कला कलरव निरंतर ।
एकता धीरता प्रेमघन देशभक्ति स्वाधीनता ।
हरि वैर फूट अन्याय सँग हरें दोष-दुख-दीनता ।

भारतेन्दु-काल की एक और विशेषता चिरस्मरणीय रहेगी। खड़ी बोली इस काल में कवि ने युग युग की प्रेयसी ब्रजभाषा का का कविता बाहुपाश छोड़कर खड़ी बोली को अपनाने का साहस मे प्रयोग किया था। यद्यपि खड़ी बोली कविता की परम्परा खुसरो की पहेलियों से प्रारम्भ होती है—

एक थाल मोती से भरा। सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।

कबीर ने भी इसी खड़ी होती हुई हिंदी में गाया था—

कद्दू काटि मृदङ्ग बनाया नीबू काटि मँजीरा।
सात तरोई मङ्गल गावे नाचे बालम खीरा।

'रहीम' की भाषा में भी उसी उदीयमती खड़ी बोली की कलित ललित आभा मिलती है:

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था।
कटितट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला।

'भूषण' की भेरी के स्वर में भी कभी-कभी यही भाषा बोल उठती है:

पंचहजारिन बीच खड़ा किया मै उसका कछु भेद न पाया।
'भूषन' यों कहि औरङ्गजेब उजीरन सों वहिसाब खिसाया।
कम्मर की न कटारी दई इसलाम ने गोसलखाना बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार ना आया।

परन्तु खड़ी बोली में सर्वाधिक कवितायें इसी काल से होने लगीं। भारतेन्दु खड़ी बोली का आदर्श रख चुके थे—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे
किधर तुम छोड़कर मुझको सिधारे।
बुढ़ापे में य दुख भी देखना था
इसीके देखने को मै बचा था।

परन्तु इसमें मधुरता का अभाव पाकर उसे छोड़ दिया था। अपनी असफलता को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

"मैंने कई वेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरी चिन्तानुसार नहीं बनी, इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है।" उनकी लेखनी से जो खड़ी बोली की कविताएँ प्रसूत हुईं उनमें उर्दू शैली का प्रभाव स्पष्ट है—छन्द और भाषा दोनों में। परंतु कौन जानता था कि इन्हीं के सहयोगी 'प्रेमघन' जी आगे जाकर खड़ी बोली का अत्यन्त सफल प्रयोग कर दिखायेंगे 'आनन्द अरुणोदय' में, जिसमें खड़ी बोली की ओजपूर्ण शक्ति और काव्य की सरसता साथ साथ दिखाई देंगे—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का।
समझ अन्त अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका॥
अरुणोदय एकता दिवाकर प्राची दिशा दिखाती।
देखा नव उत्साह परम पावन प्रकाश फैलाती॥
उद्यम रूप सुखद मलयानिल दक्षिण दिश से आता।
शिल्पकमल कलिका कलाप को बिना विलम्ब खिलाता॥
देशी बनी वस्तुओं का अनुराग पराग उड़ाता।
शुभ आशा सुगन्ध फैलाता मन मधुकर ललचाता॥

× × ×

उन्नतिपथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा दिखाई।
खग वन्देमातरम् मधुर ध्वनि पड़ने लगी सुनाई॥
तजि उपेक्षालस निद्रा उठ बैठा भारत ज्ञानी।
ध्याय परम करुणा वरुणालय बोला शुभप्रद बानी—

उठो आर्य सन्तान सकल मिलि बस न विलम्ब लगाओ।
बृटिशराज स्वातन्त्र्यमय समय व्यर्थ न बैठ बिताओ॥

पं० प्रतापनारायण मिश्र की खड़ी बोली की प्रार्थना प्रसिद्ध ही है—

पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो॥

यद्यपि खड़ी बोली की ऐसी कविताएँ इस काल में थोड़ी ही हैं परन्तु 'भारतेन्दु काल' ने ही 'द्विवेदी काल' मे पूर्ण प्रतिष्ठित खड़ी बोली की भूमिका प्रस्तुत की।

इसी काल के कवि श्री श्रीधर पाठक ने एक अंग्रेजी काव्य (Hermit) के हिन्दी अनुवाद 'एकांतवासी योगी' के रूप मे हिन्दी को एक ऐसा खड़ी बोली का काव्य दिया, जिससे खड़ी बोली की शक्तियों—लालित्य और माधुर्य—का परिचय पाकर हिन्दी की गतिविधि खड़ी बोली की ओर प्रवृत्त हुई। 'एकातवासी योगी' (१८८६ ई०) हिन्दी में खड़ी बोली का प्रथम सफल प्रयत्न है।

भारतेन्दुकालीन कवियों ने यद्यपि भाव (रंग) की क्रांति की थी, परन्तु छन्द उनके प्रायः रीतियुगीन ही थे। कवित्त और सवैया, छप्पय और कुंडलिया, रोला और दोहा छन्दों से राशि-राशि कविता इस काल में हुई। जहाँ कवियों को आधुनिक और नवीन विषयों का वर्णन करना पड़ा वहीं उन्हें पुराण-पथ से हटना पड़ा और 'लावनी' और 'कजली' को अपनाना पड़ा। इनके द्वारा गीति-धारा को नयी शैली मिली। उसमें पहली बार आत्मगत भावों की प्रतिष्ठा हुई। संस्कृत भाषा में ही प्रयुक्त होते रहे वर्णवृत्तों को केशवदास

नये छन्द

के पश्चात् फिर 'प्रेमघन' ने अपनाया। हरिगीति (का), बरवै, पद्धरी, सोरठा छंदों के अतिरिक्त द्रुतविलंबित, मालिनी, ताटंक, भुजंगप्रयात वृत्तों के प्रचलन का द्वार फिर से इसी काल के कवियों ने खोला। सब दृष्टिकोणों से यह काल हिन्दी-कविता के क्रांति-युग का प्रथम चरण था।
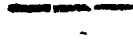
: ४ :

नई दिशाएँ

भारतेन्दु के अस्त होजाने के पश्चात् भी उनका आलोक तत्कालीन हिन्दी कवियों को मार्ग दिखाता रहा और कई कवि ऐसे प्रकट होगये थे जो हिन्दी कविता की भावधारा के विकास के लिए नये-नये मार्ग खोज रहे थे। ऐसे कवियों में 'प्रेमघन' जी का नाम लिया जा चुका है जिन्होंने नई-नई गीतियाँ हिन्दी को दी थीं। ऐसी ही एक शक्ति थे श्रीधर पाठक। इन्होंने छात्रावस्था में ही 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत चरितार्थ करना प्रारंभ कर दिया था। सन् १८८२ ई० (भारतेन्दु के जीवन-काल) में अपनी छात्रावस्था में ही, पाठकजी ने अपनी स्फुट कविताओं से जन-मन को मोहित करना प्रारंभ कर दिया था। संमोहन का कारण था कवि की एक नवीन दृष्टि और नवीन प्रतिभा। यद्यपि वह उनका 'मनोविनोद' (प्र. १८८२ ई.) ही था, परंतु इससे धीमानों का भी विनोद होता था। 'घनविनय' में (विक्रमी सम्वत्) छप्पन के अकाल का हृदयद्रावी वर्णन :

भारत ह्वै रह्यौ आरत धारत तुम्हरि हि आस,
पुनि पुनि पेखि पुकारत रोग 'मिटावहु त्रास,

कवि की प्रेमभरी पुकार—

पोखर, नदी, तड़ागन, बागन, बगियन बीच।
गैल, गली, घर, आँगन, भरहु मचावहु कीच॥
कजरी मधुर मलारन की धुनि पुनि सुनवाउ।
मंगल मोद मनावन की चरचा चलवाउ॥

झूलन फूल हिंडोलन काम किलोल कराउ।
पुनि पुनि पिय पिय बोलन, पपियन प्यास बुझाउ ॥

और कृषि-किसान और तृन-धान के प्रति समानुभूति—

करि कृतकृत्य किसानन सम्वत्सर सरसाउ।
सींचि सस्य तृन धानन तब निज धाम सिधाउ ॥

देखकर इस कवि की प्रतिभा को जनता ने पहचाना था। प्रकृति के प्रति कवि की यह दृष्टि नवीन थी। हिन्दी कविता में पहली बार ज्वार, बाजरा, खल्यान, रब्बी के लहलहे अंकुर, खरीफ के खेत, रहँट, परोहे, जल के बरहे, जौ, गेंहू, सरसों, सौंफ, सोआ, पालक की तरकारियों को स्थान मिलाः

प्रकृति

जहाँ तहाँ पर रहँट परोहे चल रहे।
बरहे जल के चारों ओर निकल रहे ॥
जौ गेहूँ के खेत सरस सरसों घनो।
दिन दिन बढ़ने लगी विपुल सोभा सनी।
सुघर सौंफ सुन्दर कुसुम की क्यारियाँ।
सोआ पालक आदि विविध तरकारियाँ।

प्रकृति के प्रति कवि का यह अनुराग उस काल के लिए एक नई दिशा थी।

गीति-धारा

कवि-हृदय का प्रकृति के प्रति यह अकृत्रिम प्रेम नये नये अरुण-करुण गीति-स्वरों में भी वह निकलता था :

सरस वसन्त नवल पुनि आयौ।
पुलक प्रफुल्ल भई तरु वल्ली नवअबला मनमोद बढ़ायौ।

सरसों पीत पीत केसर सोई संध्या सीस पीत ससि छायौ।
पीतम पीत वसन भूषन सजि निज प्यारिन संग रंग जमायौ।
प्रकृति रीति अपनी निबाहि जग, सबको प्रीति उछाह सिखायो।
हम हतभाग्य बाल विधवा तिय लखि वसंत हिय ज्वाल तपायौ।

प्रकृति की भूमिका में निरे श्रृंगारिक विलास के स्थान पर शुद्ध प्रेम के संयोग और वियोग पक्षों की व्यञ्जना हिन्दी कविता में नई बात थी। उन्होंने बालाओं के पिया मिलन की चाह और सुखी सुहागिन की काम-केलियों को ही नहीं, दुखी बाल-विधवाओं की अकथ गति को भी देखा है :

सुखी सुहागिन करे कंत सँग केलियाँ।
जीवन की सुख-सुधा पिये अलबेलियाँ।
दुखी बाल विधवाओं की जो है गती।
कौन सके बतला किसकी इतनी मती।

बाल-विधवाओं के प्रति उनके अन्तस् की करुणा पयस्विनी सदैव प्रवाहित रही। यह गीतिधारा देश के चरणों में भी अर्घ्य के सदृश प्रवाहित होती रहती थी। जिस समय कांग्रेस स्थापित भी नहीं हुई थी, हमारा हिंदी का यह कवि हिन्द-वन्दना" में स्वाधीन हिन्द की भावी कीर्त्ति गाने लगा था :

जय देश हिन्द, देशेश हिन्द।
जय सुखमा सुख निःशेष हिन्द।

× ×

जय जयति सदा स्वाधीन हिन्द!
जय जयति जयति प्राचीन हिन्द!

और कभी जीवन के बहिरंग से हटकर मानस के अन्तरंग में जाकर जगत की सचाई का सार भी खोजने लगा था। संभवतः यह प्रेरणा कवि को लाँगफेलो के 'जीवन-साम' (Psalm of Life) से मिली हो :

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा—'झूठा है यह सब संसार'
'थोथा झगड़ा जी का रगड़ा' केवल दुख का हेतु अपार

या कबीर ने कान में कहा हो :

मिट्टी उढ़ौना, मिट्टी बिछौना ! मिट्टी दाना पानी है।
मिट्टी ही तन बदन हमारा, सो सब ठीक कहानी है।

परन्तु उसमें कवि ने अपने मन का रत्न भी पा लिया है :

समझ के सारे जगत को मिट्टी मिट्टी जो कि रमाता है।
मिट्टी करके सर्वस अपना, मिट्टी में मिल जाता है॥
कभी नही ऐसा मूरख नर सार सृष्टि का पाता है।
जैसा ही आया था जग में वैसा ही वह जाता है॥
इस शरीर से तो मनुष्य नहिं कुछ भी लाभ उठाता है।
उससे तो वह पशू भला जो काम सैकड़ों आता है॥
उसका काम व्यर्थ है जो नर पौरुष कुछ न दिखाता है।
न इस लोक ना उसी लोक में हाथ उसे कुछ आता है॥
ऐसा कायर तो पृथ्वी को वृथा भार पहुँचाता है।
अपना जीना ही जिसको एक बड़ा बोझ हो जाता है॥

(जगत सचाई सार)

पाठक जी कभी ब्रजवाणी में अपनी रस-धारा बहाते थे, तो कभी खड़ी बोली में अपना सन्देश देते थे। उनकी कविता ब्रज और खड़ी बोली के हिण्डोले में झूल रही थी। ब्रजभाषा का यह

कृती कवि ही खड़ी बोली का प्रथम कवि हुआ। भारतेन्दु जिस प्रकार रीति और क्रांतियुग की संधि पर थे उसी प्रकार यह कवि भारतेन्दु और द्विवेदीकाल की संधि पर। जिस समय भारतेन्दु और द्विवेदीकाल का यह संधिदेशीय कवि खड़ी बोली में संस्कृतोपम रचना कर रहा था—

जय जय भारत भुवि नव बसन्त।
जय नन्दन रुचि दीपितदिगन्त॥
कल रव नव शिक्षित मधुपमाल।
मञ्जरित मृदुल नवदल रसाल॥
पिक शुक निनाद नन्दित निकुञ्ज।
द्विगुणित वियोगि जन दहन पुञ्ज॥
कुस सशर शरासन पञ्चबाण।
किसलय दल परिकम्पित कृपाण॥
('नवबसंत')

उस—समय एक दूसरे सन्धिदेशीय कवि 'हरिऔध' सरल बोलचाल में उर्दू की शैली अपना रहे थे :

चार डग हमने भरे तो क्या किया।
है पड़ा मैदान कोसों का अभी।
काम जो है आज के दिन तक हुए।
हैं न होने के बराबर वे सभी।
('प्रेमपुष्पोपहार')

ये दोनों आगे जाकर खड़ी बोली हिन्दी कविता के पुरस्कर्त्ता हुए।

भारतेन्दु-काल-चक्र

वि०सं०	ब्रजभाषा-काव्य	मुख्य घटनाएँ	खड़ी बोली-काव्य	ई०स०
१८६६		विक्टोरिया का भारत-आगमन		
'२७	'भक्तसर्वस्व' (भारतेन्दु)			'७०
'२८	'प्रेममालिका' (भा०)			'७१
'२९	'कार्तिकस्नान' (भा०) वैशाखमाहात्म्य (भा०)			'७२
'३०	'प्रेम सरोवर' 'जैनकुतूहल', (भा०)			'७३
'३१	'युगल मंगलस्तोत्र' (प्रेमघन)			'७४
'३२	'प्रेममाधुरी' (भा०)	एडवर्ड, प्रिंस ऑफ वेल्स का भारतागमन		'७५
'३३				'७६
'३४	'प्रेमतरंग' (भा०) 'उत्तरार्द्ध-भक्तमाल' (भा०) 'प्रेमप्रलाप' (भा०)	भीषण अकाल: दिल्ली दर्बार (४) 'भारतमित्र' तथा 'हिन्दी-प्रदीप' के प्रकाशन		'७७

'३५ 'गीत गोविन्दानंद (भा०) 'सतसई-सिंगार (भा.)	'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट'	'७८
'३६ 'होली' (भा०)		'७९
'३७ 'मधुमुकुल' (भा०) राग संग्रह (भा०) 'वर्षाविनोद' (भा०)		'८०
'३८ 'विनय प्रेमपचासा' (भा०)	'आनंद कादंबिनी' का जन्म	'८१
'३९ 'फूलों का गुच्छा (उर्दू शैली) (भा०) 'मनोविनोद' (प्र० 'पाठक')		'८२
'४० 'प्रेमफुलवारी' (भा०)। 'कृष्णचरित्र' (भा०)	स्वामीदयानद का निर्वाण "ब्राह्मण" पत्र का जन्म (सं० प्रतापकारायण मिश्र)	'८३
'४१	'भारतेंदु' 'पीयूष प्रवाह' भारत जीवन	'८४
'४२ 'पितर प्रलाप' (प्रे०), 'शोकाश्रुप्रलाप' (प्रे०)	भारतेन्दु' का स्वर्गारोहण काग्रेस की स्थापना	'८५
'४३	'एकांतवासीयोगी' (पाठक)	'८६

'४४	विक्टोरियकी जुबली (जयंती)	'८७
'४५		'८८
'४६ 'ऊजड़ गाम' (पाठक)		'८९
'४७ 'प्रेमपीयूषवर्षा' (प्रेमघन)		'९०
'४८		'९१
'४९		'९२
'५०	"नागरीप्रचारिणी सभा" स्थापित	'९३
'५१		'९४
'५२		'९५
'५३	'प्लेग'	'९६
'५४		'९७
'५५		'९८
'५६	लार्ड कर्जन वायसराय, अकाल	'९९
'५७ 'मनोविनोद' (द्वि. पाठक) "हार्दिक हर्षादर्श" (प्रेमघन)	'सरस्वती' पत्रिका का जन्म (सं० श्यामसुन्दरदास)	'मनोविनोद' (द्वि० पाठक) १९००

क्रान्ति का दूसरा चरण

'रूप' की क्रांति

द्विवेदी-काल

[१९००—२० ई०]

: १ :

'रूप' की क्रान्ति

हिन्दी कविता की क्रांति अपना प्रथम चरणनिक्षेप भारतेन्दु-काल में कर चुकी थी। भाव की क्रांति भारतेन्दु-काल की हिन्दी कविता को सबसे बड़ी देन थी। लोक-जीवन के सभी क्षेत्रों और अंगों से सम्बद्ध विषयों पर इस काल में कविताएँ लिखी गईं। राधा-कृष्ण और उनकी केलि-क्रीडाएँ धीरे-धीरे कविता के मंच पर से विदा होती जा रही थी और नये मानवीय विषय मंच पर आने लगे थे। बदलते और विकास की ओर अग्रसर होते हुए जीवन के आग्रह ने कवि को यथातथ्यवादी (Realist) बना दिया था; वे स्वप्नलोक अथवा कल्पना के विमान से उतरकर मिट्टी की धरती पर आगये थे—जहाँ टैक्स लगते हैं, चुंगी लीजाती है, अकाल पडता है, महँगी के कारण भर-पेट भोजन नहीं मिलता, जहाँ वर्तमान को देखकर चन्द्रगुप्त और अशोक, विक्रम और भोज के वैभवशाली अतीत की स्मृति आजाती है जहाँ रेल, बिजली, नहर, पुल, और विश्वविद्यालयों को पाकर कवियों के अन्तरतल से आशीर्वाद उठ रहे हैं, जहाँ राजराजेश्वरी विक्टोरिया के निधन पर शोकोद्गार और सम्राट् एडवर्ड के राज्याभिषेक पर हर्षोद्गार प्रस्फुटित हो रहे हैं, जहाँ उन्नति का पथ सामने दिखाई पड़ने लगा है, वंदेमातरम् की महा ध्वनि सुनाई पडने लगी है, जहाँ वंगभंग और स्वदेशी पर कवि की लेखनी गतिशील हुई है, और जहाँ दादाभाई नौरोजी की देशभक्ति पर स्तुति की जारही है। जीवन और कविता

का जो सम्बन्ध भारतेन्दु-द्वारा स्थापित हुआ था, वह अब प्रगाढ़ होता जारहा था। भारतेन्दु और उनके मण्डल के नक्षत्र जिस समय बुझने जारहे थे, उस समय हिन्दी-साहित्य के क्षितिज पर एक सूर्य का अरुणोदय होरहा था, जिसकी उज्ज्वल आभा से जीवन का कोना-कोना उद्भासित हो उठा था।

भारतेन्दु भारत के आकाश से १८८५ ई० में अस्त हो गया। इसी वर्ष भारतीय अधिकारों के लिए लड़नेवाली राष्ट्रीय महा-सभा—कांग्रेस—का जन्म हुआ था। देश के राजनीतिक जीवन में यह युगान्तरकारी घटना थी। कांग्रेस का रूप उस समय इतना उग्र न था। उसके सौम्य रूप का ही प्रभाव कवि की भावधारा पर पड़ सकता था। 'वंगभंग' और 'स्वदेशी आन्दोलन' के पश्चात् हिन्दी के कवि में राजनीतिक चेतना अधिक आई है। वह भारत को प्रजा नहीं, पीड़ित समझने लगा है, अंगरेजराज को 'सुखसाज' नहीं 'पराधीनता' मानने लगा है। ईसा की २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ऐसी भावना का उन्मेष कविता में हुआ है। भारतेन्दु के पश्चात् एक दूसरे विचक्षण साहित्यद्रष्टा ने हिन्दी-साहित्य की गतिविधि का दर्शन-प्रदर्शन, सञ्चालन, और परिचालन किया।

कविता का नवीन रूप

भारतेन्दु-कुल ने यद्यपि हिन्दी कविता का रंग बदल दिया था। रूप वह नहीं बदल सका था। रूप (भाषा) बदलने का प्रयत्न तो अवश्य भारतेन्दु ने भी किया था, प्रतापनारायण ने भी किया था, परन्तु इनके इन विफल प्रयत्नों में ही भावी सफलता के बीज थे। भारतेन्दु जी ने स्वीकार किया है कि उनकी खड़ी बोली की कविताओं मे उर्दू शैली का पुट आगया है। लोकभाषा (खड़ी-बोली) में उस काल का गद्य युगान्तरकारी है। परन्तु कविता में

भारतेन्दुकालीन कवि ब्रजभाषा का मोह न छोड़ सके। खड़ी बोली की कविता करने में वे फारसी गज़लों की ओर झुक जाते थे, इस लिए फारसी ढंग की कविता (शेर-गजल आदि) लिखने के लिए ही खड़ी बोली को सुरक्षित रखते थे। नये रंग की कविता का पुराना रूप इस काल में बदला।

भारतेन्दुजी के जीवनकाल में ही देवनागरी और खड़ी बोली का आन्दोलन चल पड़ा था। वे किसी की भी सफलता देखने के लिए जीवित नहीं रह सके। लोकभाषा में गद्य की भाँति पद्य भी लिखा जाना चाहिए—यह आन्दोलन का विषय था।

भाषा की क्रान्ति

भारतेन्दु हृदय से चाहते थे कि लोकभाषा में कविता हो, परन्तु उनकी प्रतिभा भी उसमें मधुरिमा नहीं भर सकी थी, जो ब्रजभाषा में स्वभावतः आजाती थी। उन्हींके शब्दों को लें तो—"पश्चिमोत्तर देश की जनता की भाषा ब्रजभाषा है यह निश्चित हो चुका है। मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरी चिन्तानुसार नहीं बनी—इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है।"

काल के प्रमुख कवि ने अपना निर्णय दे दिया था, अतः उनके सहयोगी श्री प्रतापनारायण मिश्र ने भी समर्थन किया—

"कवियों की निरकुशता भी आकर खड़ी बोली में नहीं रह सकती। जो भाषा-कवियों की मानी हुई संस्कृत के समान ब्रजभाषा के नियमों में हो ही नहीं सकती वह कवियों के आदर की अधिकारी कैसे हो सकती है?" उन्हें, अपितु, इस बात पर गर्व था कि दूसरे देशों वाले केवल एक ही भाषा से गद्य-पद्य दोनों का काम चलाते हैं। हमारे यहाँ एक गद्य की भाषा है, एक पद्य की। गद्य

और पद्य की दो भिन्न भाषाएँ होना प्रतापनारायणजी के लिए अहंकार (गर्व) का विषय था, परन्तु श्रीधर पाठकजी के लिए लज्जा का—"गद्य और पद्य की भिन्न भिन्न भाषा होना हमारे लिए उतना अहङ्कार का विषय नहीं है, जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा में हम गद्य लिखते हैं उसमें पद्य नहीं लिख सकते।"

रीतियुग ने जो भाव-सरणि, शब्दराशि और अभिव्यञ्जना-शैली शताब्दियों में निर्धारित कर दी थी इन व्रजभाषा के कवियों को सुलभ थी। वह उनके पास अपने आप अनिमन्त्रित चली आती थी, परन्तु भारतेन्दु-काल में कविता का वर्ण्य बदलने से पुराना वर्णन निरर्थक हो गया। उसकी टकसाली भाषा अलभ्य होगई। चिरकाल से कातते हुए कवियों ने रेशमी तार कोमलतम बना लिया था। अब चरखे पर नई खुरदुरी कपास काती जारही थी, इसीलिए तार मोटा था। हाथ न सधा होने से उसमें समता नहीं थी, गाँठें अधिक थीं।

नयी शताब्दी के कवि एक नये जगत में जी रहे थे। हिन्दी—हिन्दू—हिन्द का जयघोष अब बदलकर जातीयता और 'जय भारत' के जयघोषों में मिल रहा था। शिक्षित जनता राजभक्ति से लोकभक्ति, राजसेवा से लोकसेवा की ओर आगई थी। इस काल के सब उद्योग इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। 'लोकमान्य' तिलक, 'कर्मवीर' गांधी, और 'महामना' मालवीय जैसी विभूतियाँ देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए कर्मक्षेत्र में उतरी हुई थीं। जाति ने राष्ट्र का रूप ग्रहण कर लिया था। राष्ट्र की एक इकाई की कल्पना साकार हुई थी। राष्ट्र-देवता की अर्चना इसी काल में हुई। 'सुजला सुफला शस्यश्यामला' भारतमाता के तीस कोटि

नर-नारियों में एकसूत्रता की भावना उद्‌बुद्ध हो उठी थी। देश सजग होकर दूसरे देशों की संस्कृति (भाषा, कला, साहित्य) से कुछ अर्जन करने के लिए व्यग्र हो उठा । इन सबका प्रभाव हिन्दी कविता के 'रूप' पर पड़ा।

भारतेन्दु-काल में 'कवि-वचन-सुधा', 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका', 'ब्राह्मण', 'हिन्दी-प्रदीप', 'आनन्द-कादम्बिनी', 'नागरी-नीरद', 'भारतमित्र', 'भारतेन्दु' आदि-आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य में नव-नवीन रूपों की सृष्टि की थी। नाटक, उपन्यास गद्यकाव्य, आलोचना, निबन्ध—काव्य के सभी अंगों ने जन्म पाया था । गद्य-साहित्य के विकास का वह उषः काल था। इसका प्रभाव पद्य-साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था।

लोकभाषा का आन्दोलन

देश में देवनागरी और हिन्दी की विजय का डङ्का बज रहा था। इन्हीं दिनों काशी में क्वीन्स कालेज के एक विद्यार्थी और भविष्य के साहित्य-निर्माता श्री श्यामसुन्दरदास के मङ्गल प्रयत्न से 'नागरी प्रचारिणी सभा' का जन्म हुआ था। जन्म के साथ ही उसने नागरी-प्रचार और हिन्दी-सेवा का व्रत लिया था और आज तक वह इसी तपस्या में लगी हुई है। इसी 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने प्रयाग में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का बीजारोपण किया। एक बीज, जो आज से ३५ वर्ष पूर्व प्रयाग के पुण्यक्षेत्र में बोया गया था, विशाल वट बनकर समस्त भारत पर छत्र-छाया कर रहा है! अपने इस पुत्र के कारण माता (ना० प्र० सभा) का मुख उज्ज्वल हुआ है। सभा की एक पोष्य पुत्री 'सरस्वती' पत्रिका ने हिन्दी-साहित्य की सेवा की है वह

स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उसी पत्रिका की साधना का फल आज का समग्र हिन्दी-साहित्य है—इसमें कोई अतिरञ्जन नहीं है। इसी 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक थे साहित्य-गुरु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार अपना आलोक अपने चारों ओर विकीर्ण किया था और नक्षत्रों को प्रकाशमान किया था, उसी प्रकार आचार्य द्विवेदीजी ने केन्द्र में रहकर अपने वृत्त को पोषण और प्रकाश दिया; अनेक साहित्यकार—कवि, कहानी-लेखक, निबन्ध-लेखक, उपन्यास-कार—उनके पथ-प्रदर्शन में साहित्य के विविध अंग आलोकित करने लगे।

द्विवेदी-वृत्त

हिन्दी कविता पर तो उनका विशेष ऋण है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त 'महावीर' के 'प्रसाद' से जीवन भर उऋण नहीं हो सकते। पं० रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाडेय, ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि तो उन्हीं के वरदान से बढ़े, परन्तु अन्य कृती कवि—श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर शर्मा, 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—'त्रिशूल' और लाला भगवानदीन भी उनसे प्रभावित हुए हैं। द्विवेदी-वृत्त के इस काल को हिन्दी-साहित्य में 'द्विवेदीकाल' के नाम से स्मरण किया जाता है।

इस 'द्विवेदी-वृत्त' ने 'भारतेन्दु-मण्डल' द्वारा हुई हिन्दी कविता की प्रगति को और बल दिया। उसमें पूर्ण जागरण आ गया, भारतेन्दु-मण्डल की कविता तो जागने के लिए आँखें मल रही थी।

भाव और भावना की दृष्टि से 'द्विवेदी काल' 'भारतेन्दु काल' का उग्र और जागरूक रूप कहा जाना चाहिए। 'भारतेन्दु-

काल' के कवियों की दृष्टि अपने तत्कालीन जीवन की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक भूमि पर पड़ती थी, परन्तु उसे उन्होंने स्पर्श मात्र किया था, द्विवेदी वृत्त के कवि इन सब भूमियों पर चलते थे, उसमें जीते थे। भारतेन्दु-मण्डल के कवि सबकेसब राज भक्ति (loyalty) को अपने लिए गौरवास्पद मानते थे, 'राजराजेश्वरी विक्टोरिया रानी' के 'उदय अस्त लौं राज' को देख कर उनको आत्मग्लानि न होकर हर्ष और उल्लास होता था और उनकी प्रजा कहलाना वे अपना सौभाग्य समझते थे, किन्तु आगे आनेवाले कवियों की यह भ्रांति भोले बालक के अज्ञान की भाँति दूर होती जा रही थी। अब वस्तु-स्थिति से उनकी और आँखें खुलती जारही थीं और वे देश की दयनीय दशा को करुण मुद्रा से देखते और आँसू बहाते थे। अब वे विदेशी सत्ता से अपनी रक्षा और सुशासन की प्रार्थना न कर के देश-वासियों को उनके प्रमाद और जड़ता से जगाते थे। भारतेन्दु-मण्डल के के कवि अतीत के चारण और वन्दी जन थे, द्विवेदी वृत्त के कवि वर्तमान के वैतालिक और उद्बोधक। सच तो यह है, 'भारतेन्दु मण्डल' के कवि की दृष्टि अतीत की ओर थी; द्विवेदी-वृत्त के कवि की वर्तमान की ओर। वर्तमान के सब कृष्ण पक्षों पर उनकी लेखनी चली थी। समाज की सब दुर्बलताओं-रूढ़ियों और कुरीतियों से प्रेम, अशिक्षा, बालविवाह, बालवैधव्य, छुआछूत, साम्प्रदायिक द्वेषभाव, जातीय भावना का अभाव, स्वाभिमान का विनाश, पश्चिमी सभ्यता में सांस्कृतिक गतिरोध, नैतिक अनाचार, धार्मिक अन्धविश्वास, आदि आदि—की उन्होंने आलोचना, विगर्हणा और भर्त्सना की, राज-कारण में आई हुई सभी

द्विवेदीकाल भारतेन्दुकाल का उग्ररूप

शक्तियों का उन्होंने प्रतिनिधित्व किया, देश की जागरूकता और जागृति के स्पन्दन को कविता में प्रतिध्वनित किया और साहित्य में देश-विदेश के साहित्य की धाराओं का स्वागत किया। द्विवेदी काल ने हिन्दी के साहित्य को देश की अन्य भाषाओं के सामने शिर ऊँचा करने के योग्य बना दिया।

: २ :

द्विवेदी-काल की रूपरेखा

हिन्दी-कविता में 'द्विवेदी-काल' ने रूप की क्रान्ति की है। भारतेन्दु-काल की क्रान्ति केवल 'रंग' की क्रान्ति थी। कविता का रूप—बाह्यदर्शन—'ब्रजभाषा' का रहते हुए भी उसके रक्त में नवीन स्वास्थ्य का रंग आगया था। यह स्वास्थ्य का रंग हिन्दी कविता में नये नये जीवन-स्पर्शी विषयों के रूप में आया था। आचार्य द्विवेदी जी का हिन्दी कविता में नये छन्द, नयी भाषा और नया ढंग लाने का स्वप्न उन्हीं के काल में प्रत्यक्ष होगया और उस काल के लिए 'द्विवेदी-काल' से अधिक उपयुक्त और कोई नाम नहीं हो सकता। द्विवेदी जी उन सब साहित्यकारों की प्रेरक शक्ति थे जिनके हाथ में उस समय का कर्तृत्व था; कवियों के तो वे गुरु और निर्देशक ही थे। साहित्य-जगत् में द्विवेदी जी का यह आविर्भाव ई॰ की बीसवीं शती के प्रारम्भ से हुआ। दो दशाब्दी तक द्विवेदी जी की साधना सजग रही।

द्विवेदी-काल का उदय

'भारतेन्दु काल' का अंतिम स्वर हिन्दी कविता में ईसा की १९ वीं शताब्दी के अंत तक मानना चाहिए। १९ वीं शताब्दी के अन्त की ओर हिन्दी जगत में ऐसी प्रक्रियाएँ कर्मण्य होगई थीं जिनसे द्विवेदीकाल की नींव पड़ रही थी। श्री अयोध्याप्रसाद खत्री का लोक भाषा (खड़ीबोली) का आन्दोलन बड़े वेग के साथ इसी काल में हुआ था। किसी एक काल के पश्चात् दूसरे काल का किस

समय उदय और आविर्भाव हो जाता है, यह कहना सदैव दुश्कर होता है। नवीन काल आने से पहले अपनी छिपी शक्तियों को संचालित करने लगता है तथा प्राचीन काल अपनी शक्तियों को समाप्त करते हुए नवीन की बाहुओं में पर्यवसित हो जाता है। दो कालों के बीच में सीमा-रेखा उसी प्रकार नहीं खींची जा सकती जिस प्रकार दिन के रात्रि में और रात्रि के दिन में होनेवाले पर्यवसान को रेखा द्वारा नहीं बताया जा सकता। १९०० ई. के जनवरी मास में नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से 'सरस्वती' प्रतिष्ठित हुई और तभी से आचार्य द्विवेदी अपनी कृतियों द्वारा कवि-मन को प्रभावित करने लगे थे। १९०३ में तो 'सरस्वती' का संचालन-सूत्र उन्ही के हाथ में आ गया था और हिन्दी के साहित्य-जगत के वे भाग्य-विधाता हो गये थे।

द्विवेदी जी का स्वप्न

'सरस्वती' के १९०१ ई० के जून के अंक में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'हे कविते !' के रूप में हिन्दी कविता की दयनीय दशा की ओर संकेत किया था—

सुरम्यरूपे ! रसराशि—रंजिते !
विचित्र वर्णाभरणे ! कहाँ गई ?
अलौकिकानंदविधायिनी महा—
कवीन्द्रकान्ते ! कविते ! अहो कहाँ ?

उनकी दृष्टि संस्कृत के उन कृती कवियों (कालिदास, दण्डी, भवभूति, माघ और भारवि) के काव्य की ओर थी, जिसके सम्बन्ध में काव्य-मर्मज्ञों ने निर्णय दिया था—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे संति त्रयो गुणाः ।"

केवल तुकांत, केवल यमकच्छटा, सानुप्रास पदावली, समस्यापूर्ति आदि आदि के प्रति उनके अच्छे विचार नहीं थे

सदा समस्या उनको नई नई
सुनाय कोई कवि पाय पूर्तियाँ।
तुझे उन्हीं में, अनुरक्त मान वे
विरक्त होते नहि, हा रसज्ञता!

कविता का स्वरूप उनकी दृष्टि में यह था—

सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है
अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे!
शरीर तेरा सब शब्द मात्र है—
नितांत निष्कर्ष यही, यही, यही।

उस समय ब्रजभाषा ही हिन्दी कविता की चोली थी। देवी-कविता को, द्विवेदीजी को विश्वास था, ब्रजभाषा की यह चोली रुचिकर न होगी, इसलिए वे उसे अभी न आने के लिए निवेदन कर रहे थे:

अभी मिलेगा ब्रजमण्डलात का
सुभुक्त भाषामय वस्त्र एक ही।
शरीर-संगी करके उसे सदा
विराग होगा तुझको अवश्य ही।
इसीलिए ही भवभूति-भाविते!
अभी यहाँ हे कविते! न आ, न आ।

सम्पादक होने से पूर्व ही इस प्रकार आचार्य द्विवेदीजी भावी हिन्दी कविता के भाग्यविधाता बनने का स्वप्न देख रहे थे और उनका स्वप्न एक दिन सत्य होकर रहा!

आचार्य का निर्देशन

हिन्दी के कवियों को उनका कर्तव्य दिखाते हुए उन्होंने उस समय 'सरस्वती' में 'कविकर्त्तव्य' लिखा था और छन्द, भाषा, अर्थ और विषय पर आचार्योचित निर्देश दिया था।

छन्द

छन्द के सम्बन्ध में उन्होंने निर्देश किया था कि

(१) 'विषय के अनुकूल छन्दोयोजना करनी चाहिए।'

(२) "दोहा-चौपाई-सोरठ, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और और छन्द भी वे लिखा करें। X-X-X इनके साथ साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किये गये वृत्तों का भी हिन्दी में प्रचार किया जाय। इन वृत्तों में से द्रुतविलंबित, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं, जिनका प्रचार भाषा में होने से भाषा-काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी। X X आजकल के बोलचाल की हिन्दी (खड़ी बोली) की कविता उर्दू के से एक विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है; अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिएँ।"

(३) किसी एक छन्द में ही विशेष कौशल लाना चाहिए—जैसे तुलसी ने चौपाई और बिहारीलाल ने दोहा लिखकर ही इतनी कीर्ति सम्पादन की है।

(४) 'पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी भाषा में लिखे जाने चाहिएँ। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अँग्रेजी और

बंगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा मे वे न लिखे जावें।''बिना तुकवाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगेगी. इसमें कोई सन्देह नहीं।'

आचार्य द्विवेदी जी जानते थे कि 'किसी भी प्रचलित परिपाटी का क्रमभंग होते देख प्राचीनों के पक्षपाती बिगड़ खड़े होते हैं और नवीन संशोधन के विषय में नाना प्रकार की कुचेष्टा और दोषोद्भावना करने लगते हैं।' इसलिए इसका विरोध भी होगा, 'परन्तु कुछ दिनों में हमारे पक्षपातियों को इस नवीन सूचना की उपयोगिता स्वीकार करके अपने मन को उन्हें अवश्यमेव भ्रांति-मूलक मानना पड़ेगा। इसका हमको दृढ़ विश्वास है।' आचार्य का यह विश्वास कुछ ही दिनों में अक्षरशः सत्य हुआ।

अभी तक द्विवेदी जी के सामनें शताब्दियों से चली आरही ब्रजभाषा की काव्य-राशि थी। उन्हें यह कलेवर भी बदलना था।

भाषा कविता की भाषा के सम्बन्ध में भी उनका निर्देश क्रांतिकारी था—

(१)'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझकर अर्थ को हृदयंगम कर सकें।'

(२ भाषा व्याकरण-सम्मत अर्थात् शुद्ध होनी चाहिए। शब्दों के रूप बिगाड़ने की 'निरंकुशता' न होनी चाहिए।

(३)'गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक न होनी चाहिए।'XX 'सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्यपद्यात्मक साहित्य होना चाहिए।'

यहाँ भी आचार्य ने भविष्यवाणी की थी कि 'किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी।' 'इसलिए कवियों को चाहिए कि क्रम क्रम से वे गद्य की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें।' द्विवेदी-काल में द्विवेदी जी की यह आकांक्षा प्रतिफलित हुई।

अर्थ के सम्बन्ध में उन्होंने निष्कर्ष निकाला था कि "अर्थ-सौरस्य ही कविता का जीवन है" और आचार्य विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" जगन्नाथ पण्डितराज के "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्", कुन्तक के "वक्रोक्ति काव्यजीवितम्" और "काव्यस्य आत्मा ध्वनि." के आगे की एक कड़ी और जोड़ी थी। विषय के साथ कवि का भाव-तादात्म्य और सहज-स्फुरित अभिव्यञ्जना, ये दो कुञ्जियाँ 'अर्थ-सौरस्य' लाने की उन्होंने दी थीं।

अर्थ

विषय के लिए भी उन्होंने नई दिशा की ओर इंगित किया था- "कविता का विषय मनोरञ्जक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका! न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी-पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा-पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र-पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, सभी पर कविता हो सकती है। यदि 'मेघनाद वध' अथवा 'यशवन्तराव महाकाव्य' वे नहीं लिख सकते तो उनको ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में से छोटे से छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर

विषय

छोटी छोटी कविता करनी चाहिए। इस द्रष्टा-गुरु ने जो मंत्र अपने भावी अन्तेवासियों को दिये उन्हें उन्होंने चरितार्थ करके दिखा दिया। ईसा की बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण (१९००-१९२०), द्विवेदीकाल, की हिन्दी कविता द्विवेदीजी के इसी 'कवि-कर्त्तव्य'-स्वप्न की पूर्ति है।

इस स्वप्न की पूर्ति करनेवाले कवियों की एक लम्बी माला है। छन्द, भाषा और विषय के उनके आदेश-निर्देश अक्षरशः चरितार्थ हुए—इसीकी कहानी द्विवेदी-काल की कविता है।

: ३ :

नवीन छन्द-विधान

हिन्दी में नये छन्द-विधान की कहानी कहने के लिए भारतेन्दु, काल को भुलाया नहीं जा सकता। प्रत्येक युग में युग-व्यापी भाव-धारा को अभिव्यक्ति देने के लिए कवि विशेष छन्दों को ही प्रधानता देते रहे हैं। वीरगाथा-युग में भुजंगी, पद्धरी, रोला, छप्पय की, भक्ति-युग में गेय पदों को, रीति-युग में सवैया, कवित्त, दोहा की प्रधानता रही। कविता के इस 'क्रान्तियुग' में भी नये छन्दों की प्रतिष्ठा हुई। भारतेन्दु एक जीवन्त और प्रगतिशील शक्तिकेन्द्र थे। ब्रजभाषा में कवित्त, सवैया, दोहा, कुण्डलियाँ में राशि-राशि पुस्तकें लिखते हुए भी वे नवीन छन्दों के आविष्कार के लिए प्रयत्नशील थे। बंगला के 'पयार' छन्द को उन्होंने ग्रहण किया था। फ़ारसी की अनेक बह्रों और ग़जलों के ढंग पर उन्होंने खड़ी बोली में छन्द लिखे थे। गीतिकाव्य के कोश में चित्र-विचित्र राग-रागिनियोंवाले लोकगीतों (ठुमरी खिमटा, पञ्जाबी प्यार, ख्याल, लावनी, होली, कबीर, कजली) का दान भारतेन्दु और 'प्रेमघन' ने दिया था। अपने 'जीर्ण जनपद' और 'अलौकिक लीला' (१९७२वि) प्रबन्ध काव्यों में प्रेमघनजी ने नये विविध मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया था तथा अपनी 'भारत बधाई' कविता में द्रुत-विलम्बित, तोटक, भुजंगप्रयात, नाराच आदि संस्कृत वृत्तों को भी अपनाया था। परन्तु उनमें 'तुकान्त' का बन्धन था। वीरगाथाओं तथा

रीति-काव्यों में भी संस्कृत वृत्तों का प्रयोग हो चुका था परन्तु हिन्दी के कवि का अन्त्यानुप्रास से सदैव प्रेम और कभी कभी तो मोह रहा है। वह मोह सबसे पहले द्विवेदी-काल के कवि ने ही छोड़ा है। द्विवेदी-काल की कविता ने पहली बार खड़ी बोली में इन वर्ण वृत्तों को पाया और आगे जाकर तो तुकांत का बन्धन भी टूट गया।

१६०० ई. की काशी की एक घटना छन्द और भाषा के विकास पर प्रकाश डालती है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के 'भवन प्रवेशोत्सव' में उस काल के व्रजभाषा के कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔधजी' ने सरल हिन्दी में उर्दू का पुट लिये हुए उर्दू छन्द के ढंग पर कविता सुनाई थी :

चार डग हमने भरे तो क्या किया।
है पड़ा मैदान कोसों का अभी।

काम जो हैं आज के दिन तक हुए।
हैं न होने के बराबर वे सभी।

इस ढंग की कविताएँ हिन्दी में भारतेन्दु और प्रेमघनजी ने भी लिखी थीं, परन्तु तुकान्त का बंधन वे न छोड़ पाये थे। इस दिशा में हरिऔधजी सदैव स्मरणीय रहेंगे। कविवर हरिऔधजी का यह प्रयास आगे विकास पाता गया और उन्होंने सरल, बोलचाल की, भाषा में 'चुभते चौपदे' और 'बोलचाल' ग्रन्थ लिखे—इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन यद्यपि उस काल में हुआ जब द्विवेदीकाल पर्यवसित हो चुका था।

मात्रिक छन्द में तुकान्त का बन्धन तोड़ने का एक प्रयत्न श्री जयशंकर 'प्रसाद' की ओर से भी हुआ। १६१३ ई. में उन्होंने

'प्रेमपथिक' नामक एक लघु प्रबन्ध लिखा—जो इस दिशा में एक प्रगति का पद था। इसमें हरिऔधजी की भाषा का उर्दूपुट न होकर शुद्ध हिन्दी की सुषमा थी—

खेल रही थी सुख-सरवर में नरी पवन अनुकूल लिये
सम्मोहन वंशी बजती थी नव तमाल के कुंजों में
हम दोनों थे भिन्न देह से तो भी मिल कर बजते थे
ज्यों उँगली के छू जाने से सन्वर तार सितारी के।

श्रीधर पाठक ने भी मात्रिक छन्द में अन्त्यानुप्रास (तुक) की शृंखला तोड़ फेंकने का साहस किया था—

विजन वन प्रान्त था, प्रकृति-मुख शान्त था,
अटन का समय, था रजनि का उदय था।
प्रसव के काल की लालिमा में लसा
बाल शशि व्योम का ओर था आ रहा। (सान्ध्यअटन)

पण्डित श्रीधर पाठक ने संस्कृत के कई वृत्तों को ही नहीं, फ़ारसी छन्दों का भी प्रयोग खड़ी बोली हिन्दी में किया था और नई दिशा बनाई थी। अपनी प्रतिभा से उन्होंने कई नये छन्दों का आविष्कार भी किया और तत्कालीन पिंगलशास्त्र को छोटा कर दिया कविगुरु द्विवेदी जी ने उनके काव्य के ऐसे नये प्रयोग एक बार 'सरस्वती' द्वारा प्रस्तुत किये थे। इसमें कई वृत्त हिन्दी खड़ी बोली के लिए नितान्त नवीन थे।

हे मित्र! आज प्रिय पत्र मिला तुम्हारा
पढ़के प्रसन्न अति चित्त हुआ हमारा
अब लों परन्तु प्रिय मित्र रहे कहाँ थे?
उनके यहाँ थे, अथवा अपने यहाँ थे?

(वसन्ततिलका)

नये छन्दों की रचना में पाठकजी बड़े दक्ष थे,

(१) अर्जुन साल कदम्ब केतकी के कानन कम्पायमान कर
उनके कुसुमों के सौरभ से होवे, गर्भित !
ऐसा सुखद समीर मेघजल सीकर से होकर शीतलतट ।
किस्के मन को करे नहीं उत्सुक औ चिंतित ? ❀ .

(२) जिनके उपल नील उत्पल निभ जलभर विनत नवल घन चुम्बित ।
जिन परत्यों सब ओर विकल रव निर्झर विमल बहै छबिमंडित ।
विलसैं मुदित मयूर नृत्यरत अगनित वृन्द अमित आनन्दित ।
सो मम प्राण प्रिये पर्वत पर कहैं चाह युत चित्त उमंगित ।‡

उस काल के कुशल कवि वागीश्वर मिश्र भी नये-नये छन्दों की सृष्टि कर रहे थे । कई पुराने छन्दों को मिलाकर उन्होंने तीसरे संयुक्त छन्द की रचना कर डाली थी—

इस संसार दुःखसागर में मग्न रहूँ दिन रैन ।
इसीलिए लौकिक आँखों से तुझको देखा है न;
तुही है विश्व में आनन्ददातृ ।
अकेली बच रही है पुण्यमातृ ;
अगर तुझको भी अब ही देख लूँगा ।
तो फिर किस आश से जीता रहूँगा ?

द्विवेदीजी के प्रभाव से संस्कृत के काव्यों के पठनपाठन और अनुशीलन का प्रचार उन दिनों बढ़ रहा था । कन्हैयालाल पोद्दार, सीताराम, सीताराम 'भूप' देवीप्रसाद पूर्ण', गिरिधरशर्मा, तथा वे स्वयम् कालिदास, भारवि आदि कृती कवियों के काव्यों को हिन्दी कविता में रूपांतरित कर रहे थे; अतः

❀ 'सरस्वती' भाग ३ : संख्या ६ : सितम्बर १६०२ पृष्ठसंख्या २६०
‡ " " "

कभी कभी मूल का वृत्त ही अनुवाद में भी होता था। वर्ण वृत्तों की मधुरिमा अपनी मोहिनी हिन्दी के कवि पर डाल रही थी और चींटी से लेकर परमेश्वर तक के विषयों पर वर्ण वृत्तों वाले पद्य निछावर होने लगे थे। द्रुतविलम्बित, मालिनी, वंशस्थ, मन्दाक्रान्ता, शिखिरिणी', वसंत-तिलका, इन्द्रवज्रा की वैजयन्तियाँ उड़ने लगीं; जिनके आगे दोहे, चौपाई, कवित्त, सवैया, और लावनियों का सारा शृंगार हतप्रभ होगया। भाषा को खड़ी करने का बड़ा भारी कार्य इन वर्णिक छन्दों ने किया। द्विवेदी-काल के कैशोर की सारी कविताएँ वर्ण वृत्तों में हैं।

प्रियप्रवासः एक दीपस्तम्भ

इस प्रकार वर्णिक छन्द जो हिन्दी कविता में भारतेन्दु-काल में पुनः प्रचलित हुए थे, द्विवेदी-काल में प्रतिष्ठित होगये। मैथिली-शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, लोचन प्रसाद पाण्डेय, गिरिधर शर्मा, नाथूराम शंकर शर्मा सब के सब स्फुट विषयों पर वर्णिक वृत्तों मे राशि राशि रचनाएँ करते थे। 'तुक' का मोह, परन्तु, अबभी उन्हें छोड़ते न बना था। कविवर 'शंकर' ने तो मात्रिक छंदोंमें भी वर्ण संख्या समान रखी। इस दिशा में संस्कृत प्रणाली का पूर्ण पालन कविवर 'हरिऔध' जीने ही किया और अतुकांत वर्णिक वृत्तों में ही अपना 'प्रिय-'प्रवास,' महाकाव्य प्रस्तुत किया। 'प्रियप्रवास' हरिऔध जी का कीर्तिस्तम्भ और अतुकांत हिन्दी कविता का दीपस्तम्भ है! वर्ण वृत्तों के इस महाकाव्य को हिन्दी जगत ने अपनी सिर आँखों पर उठाया और कवि को 'महाकवि' की उपाधि से विभूषित किया "प्रियप्रवास" के ढंग पर और भी अतुकान्त महाकाव्य लिखने का प्रयत्न हुआ, परन्तु 'प्रियप्रवास' की सफलता कोई न पा सका।

'रामचरित चिन्तामणि' (रामचरित उपाध्याय) और 'सिद्धार्थ' इसी माला मे गुंथे हुए सुमन हैं।

"किसी एक छंद में ही विशेष कौशल लाना चाहिए--" द्विवेदी जी की इच्छा इस इच्छा की पूर्ति भी इस काल के अनेक काव्यों में हुई। 'हरिऔध' जी वर्ण वृत्त और 'चौपदे' लिखने में सिद्धहस्त हुए, श्री मैथिलीशरण के प्रिय छन्द 'हरिगीतिका' और 'ताटङ्क' रहे, कविवर शंकर जी के 'कवित्त' और 'सवैया' 'दीन' जी ने उर्दू बह्रों में, रामनरेश त्रिपाठी जी ने 'सरसी' और 'सार' में, रामचरित उपाध्याय द्रुतविलम्बित, में, सियारामशरण गुप्त ने मुक्त छन्द में और सनेही ने 'सवैयों' मे अपनी कीर्ति अर्जित की।

: ४ :

नवीन भाषा-विधान

श्री अयोध्याप्रसाद खत्री का सन् १८८८ ई. का आन्दोलन—लोक भाषा (खड़ी बोली) हिन्दी को गद्य की भाँति पद्य का भी माध्यम बनाना चाहिए—पूर्ण रूप से 'द्विवेदीकाल' की कविता में ही सफल हुआ। उसकी सफलता के अंकुर उसी समय फूट आये थे जब भारतेन्दु ने गाया था—

वह नाथ अपनी दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो,
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो।

और जब प्रतापनारायण मिश्र ने 'प्रार्थना' की थी:

त्रसो मूर्त्ते देवि, आर्यों के जो मैं
तुम्हारे लिये हैं मर्का कैसे कैसे ?
अनुद्योग आलस्य सन्तोष सेवा
हमारे भी हैं मिहरबाँ कैसे कैसे ?

और जब अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने १६०० ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के भवन प्रवेशोत्सव' पर चेतावनी दी थी—

हो दशा जिस जाति की ऐसी बुरी
बन गयी हो जो यहाँ तक बेखबर।
फिर भले हो जाय गरदन पर छुरी
पर जो उफ करने से करती है कसर।

इन सब में उर्दू शैली का पुट है। वह (छन्द-लय) और शब्दावली उर्दू की ही है। इसीलिए राधाचरण गोस्वामी ने कहा था—"प्रथम तो भाषा के कवित्त, सवैया आदि छन्दों में ऐसी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता, तब भाषा के प्रसिद्ध छंद छोड़ छोड़ कर उर्दू के बेतशैर गजल आदि का अनुकरण करना पड़ता है पर फारसी शब्दों के होने से उस मे भी साहित्य नहीं आता। × × यदि खड़ी बोली की कविता को चेष्टा की जाय तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाय।' (१८८८ ई०) इस पर श्रीधर पाठक ने चुनौती देते हुए कहा था—'खड़ी हिन्दी की कविता में उर्दू नहीं घुसने पावेगी। जब हम हिन्दी की प्रतिष्ठा के परिरक्षण में सदा सचेत रहेंगे तो उर्दू की ताब क्या जो चौखट के भीतर पाँव रखसके।' पाठकजी का निश्चित मत था कि 'ब्रजभाषा की कविता को अब यदि अवसान नहीं तो विश्राम लेने का समय अवश्य आ पहुँचा है। उसको अधिक श्रम देना आवश्यक नहीं, उसका बहुत सा काम खड़ी हिन्दी में आजकल बहुत अच्छी तरह निकल सकता है।" वे ऐसा गर्वपूर्वक कह सकते थे क्योंकि वे १८८६ ई० में ही खड़ी बोली में 'एकांतवासी योगी" नामक एक अनूदित काव्य की रचना कर चुके थे। इस दृष्टि से खड़ी बोलो में प्रथम काव्य (अनूदित ही सही) पं० श्रीधर पाठक का था।

इसी समय बाबू अयोध्याप्रसद खत्री ने अपना 'खड़ी बोली आन्दोलन' का झंडा उठाया था। 'एकान्तवासी योगी' का उस झंडे में वही स्थान था जो आज राष्ट्रीय झंडे में चरखे का है! इन्हीं बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने 'हरिऔध' जी के नागरी सभा के भवन प्रवेशोत्सव (१६०० ई०) वाले चौपदों की भूरि भूरि

प्रशंसा की थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने (जुलाई १९०१ की) श्री बाबू श्यामसुंदरदास-सम्पादित 'सरस्वती' में ये शब्द लिखे थे—"गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होनी चाहिए। यह एक हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए।" ※ इसके पश्चात् जो द्विवेदी जी ने शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया और अपने स्वप्न की पूर्ति की। इस प्रकार अयोध्याप्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक के प्रयत्न और प्रयास आचार्य द्विवेदी जी में समन्वित हो गये।

श्रीधर पाठक जी ने इस भ्रांति को तो 'एकान्तवासी योगी' की कविता द्वारा मिटा दिया था कि "यदि खड़ी बोली की कविता की चेष्टा की जाय तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाय।" एक कमी पाठकजी की कविता में अभी तक विद्यमान थी—ब्रजभाषा का पुट। शताब्दियों से हिन्दी कविता की वाणी बनी हुई यह भाषा क्यों न खड़ी बोली में छलक आती ?

(१) सुनिये झाड़खण्ड बनवासी, दयाशील हे वैरागी !
करके कृपा बतादो मुझको कहाँ जले है वह आगी ?

(२) वलिहारौ त्रिभुवन-धन उसपर वारौ काम करोर।
(एकांतवासी योगी)

(३) देखूँ हू मैं इन्हें मनुज कुल—नायकता का अधिकारी।

(४) नृपति शूर विद्वान् आदि कोई भी मान नहि पावेगा।
(श्रान्त पथिक)

※ 'कवि कर्तव्य' : ले० महावीर प्रसाद द्विवेदी।

(५) ध्यान लगाकर जो तुम देखो सृष्टी की सुघराई को।
(६) ये पर्वत की रम्यशिला औ शोभासहित चढ़ाव उतार।
(जगत सचाई सार)

परन्तु चन्द्रमा में कलंक की भाँति इनका भी हमें अभिनन्दन ही करना होगा।

भाषा के संस्कार का यह मंगल-कार्य आचार्य द्विवेदी को 'सरस्वती' के सम्पादक के सिंहासन पर सुशोभित होकर करना था। इस चतुर शिल्पी के हाथों ने खड़ी बोली हिन्दी की कविता का यह शृंगार-संस्कार किया।

परन्तु ब्रजभाषा के पुट से छन्द में जो सहज कोमलता आजाती थी वह उनके इस प्रयत्न से धीरे धीरे तिरोहित होने लगी और कविता में 'पौरुष' आगया। वर्णिक छन्दों के प्रचार ने इस पौरुष-संस्कार को द्रुत कर दिया। कुछ वर्षों तक दोनों प्रकार की ध्वनि सुनाई दी—

चाँद वो सूरज गगन में घूमते हैं रात-दिन।
तेज वो तम से दिशा होती है उजली वो मलिन।
वायु बहती है घटा उठती है जलती है अगिन।
फूल होता है अचानक वज्र से बढ़कर कठिन।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

पृथ्वी समुद्र सरिता नग नाग सृष्टि।
मांगल्य मूल मय वारिद वारि वृष्टि।

(महावीर प्रसाद द्विवेदी)

भी। पौरुष का जो मापदण्ड आचार्यश्री ने स्थापित किया, मानों उससे होड़ लगाने के लिए उनके शिष्य श्री मैथिलि शरण ने

सद्य काटा लिया है सिर निज कर में, कण्ठ में मुण्डमाला।
जिह्वा लम्बायमाना अतिशय मुख से, हैं जटा जूट काला।

दिग्वस्त्रा, खड्गहस्ता, अरुणिततिलका, चौभुजी मूर्तिवाली।
भीमा भीतार्तिहारी सुविमल वरदा जै शवारूढ काली।

और अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध) ने

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु—बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणिसी लावण्य-लीलामयी।
श्री राधा मृदुभासिणी मृगदृगी माधुर्य-स-मूर्ति थीं।

जैसी क्लिष्ट पंक्तियाँ लिखीं। इस कर्कश ध्वनि-प्रतिध्वनि से हिन्दी के कवि और पाठक की श्रुतियाँ धीरे धीरे इतनी अभ्यस्थ हो गई कि व्रजभाषा की कविता की कोमलता वे भूल चलीं और नव प्रतिक्रिया हुई तो नवनीत से भी कोमल चरणों में नई कविता प्रकट हुई—ऐसी कविता जो कोमलकान्त पदावली में सूर और तुलसी, देव और बिहारी, पदमाकर और भारतेन्दु की व्रजवाणी से होड़ लगाने लगी—ऐसी कविता जिसमें शब्द-जाल ही नहीं बुना गया था, जिसमें अनूठी भावव्यञ्जना और चित्रात्मकाता थी:

(१) तुम कनक-किरण के अन्तराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों?
अधरों के मधुर कगारों में
कलकलध्वनि की गुंजारों में
मुभ्र सरिता सी यह हँसी तरल अपनी पीते रहते हो क्यों?
('प्रसाद')

(२) मेंहदीयुत मृदु करतल-छवि से कुसुमित सुभग 'सिंगार,'
गौर देह-द्युति हिमशिखरों पर बरस रही साभार,
पद-लालिमा उषा, पुलकित पर शशि-स्मित घन सोभार;
उडु कम्पन, मृदुमृदु उर-स्पन्दन, चपल वीचि पद-चार।
(सुमित्रानन्दन पंत

(३) मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण-प्रतिपल,
प्रियतम का पंथ आलोकित कर!
(महादेवी वर्मा)

परन्तु यह तो प्रसाद-पन्त, निराला और महादेवी के नवीन काल की

(४) तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजिनी भाषा,
तुम नन्दन-वन-घन-विटप,
और मैं सुख-शीतल-तल,शाखा;
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')

: ५ :

नवीन विषय-विधान

पृथ्वी से लेकर आकाश तक के, 'ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में छोटे से छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों' पर, नये और पुराने, सूक्ष्म और स्थूल सब विषयों पर ये कविगण 'कविता' लिखते थे। स्वयम् द्विवेदीजी ने सम्पादन-भार हाथ में लेते ही 'सरस्वती' के आर्थिक कष्ट को देखकर कविता लिखी थी—

अहो देव ! अतएव विनय मम मन में लावौ।
जन समूह उर बीच प्रीति मेरी प्रकटावौ।
जिसमें कुछ तो प्रेम मातृभाषा पर जागै;
अबला-वध-उत्पन्न पाप भी इन्हें न लागै।

परन्तु जीवन के गम्भीर क्षणों में वे मानस में डुबकी लगाकर अनमोल रत्न भी लाते थे—

मैं कौन हूँ ? किसलिए यह जन्म पाया ?
क्या क्या विचार मन में किस ने पठाया ?
माया किसे, मन किसे, किसको शरीर ?
आत्मा किसे कह रहे सब धर्म-धीर ?

× ×

पृथ्वी-समुद्र-सरिता-नग नाग-सृष्टि,
मांगल्य-मूल-मय वारिद-वारि-वृष्टि।
कर्तार कौन इसका ? किस हेतु नाना
व्यापारभार सहता रहता महाना ?

(विचार करने योग्य बातें)

जागरूक और भावुक कवि के लिए भाव-स्फुरण के आलम्बनों की कभी कमी नहीं रहती। प्रारम्भ में कवि ऐसे विषय पर इतिवृत्तात्मक-वर्णनात्मक उक्तियाँ ही दे सकता है, वक्र-व्यञ्जना की क्षमता पीछे आती है। व्रजभाषा का मोह न छोड़ते हुए भी व्रजकोकिल सत्यनारायण ने 'हेमन्त' कविता में नये 'फैशन' पर व्यंग्य किया था—

> जावै युवक पाठशाला जब पहन कोट पतलून;
> मोजे डाट, बूट खटकावत, शीत लगै तऊ दून।
> पैड़ू अथवा और 'सेगरट' "सैफ मैच" से बाल,
> अञ्जिन का सा धुवाँ उड़ावैं तौ भी बुरा हवाल।'†

व्रजबाणी के दूसरे कवि पं० रामचन्द्र शुक्ल 'वसन्त' के उपलक्ष्य से मथुरा, दिल्ली कन्नौज के खण्डहरों मे पहुँच कर अश्रुपात करने लगते हैं—

> कुसुमित लतिका ललित तरुन बसि क्यों छवि छावत?
> हे रसालगन! बौरि व्यर्थ क्यों सोग बढ़ावत?
> हे कोकिल! तजि भूमि नाहिं क्यों अनत सिधारी?
> कोमल कूक सुनाव बैठि अजहूँ तरु डारी?
> मथुरा, दिल्ली अरु कनौज के विस्तृत खँडहर
> करत प्रतिध्वनि आज दिवस हू निज कम्पित स्वर।
> जहँ गोरी, महमूद केर पद-चिन्ह धूरि पर
> दिखरावत, भरि नैन नीर, इतिहास-विज्ञ नर!*

---

† सरस्वती, वर्ष ५, अंक १ जनवरी १६०४

* 'सरस्वती : भाग ५, संख्या ३ः मार्च १६०४

संस्कृत और अंग्रेजी काव्य का प्रभाव

खड़ी-बोली में नये भावों की प्रतिष्ठा का श्रेय संस्कृत और अँग्रेजी साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन को मिलना चाहिए। मूर्द्धाभिषिक्त हुई इस खड़ी बोली में नवीन भावों की प्रतिष्ठा तो द्विवेदी काल के कवियों ने की, परन्तु वे अपने विषयों की प्रेरणा या तो संस्कृत की सूक्तियों से लिया करते थे या अंग्रेजी की कविताओं से। पाठकजी ने तीन अंग्रेजी काव्यों का अनुवाद कर डाला था। अंग्रेजी के जेम्स टेलर की 'माई मदर' (मेरी मैया) बायरन की "ऐंड दाउ आर्ट डेड ऐज़ यंग एण्ड फेयर" (तरुणी, तू चल बसी अभी), लॉगफैलो के 'साम ऑफ़ लाइफ" (जीवनगीत), स्कॉट के "लव ऑफ कंट्री" (स्वदेश-प्रीति); सदे की 'स्लीप' (निद्रा) आदि सर्वप्रिय रचनाएँ हिन्दी कविता में आईं और खड़ी बोली का सरल-सरस रूप भी सामने आया——

(१) किसने अपने स्तन से मुझको सुमधुर दूध पिलाया था ?
लेकर गोद, प्रेम ते थपकी दे दे मुझे सुलाया था ?
चूम चूम कर किसने मेरे गालों को गरमाया था ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !

(अनुवादकः-जैनेन्द्र किशोर)

(२) तरुणी, तू चल बसी अभी से स्वर्गलोक को सुकुमारी।
अति विकराल काल की गति है इस जग मे सबसे न्यारी।
तुम सम अति सुन्दर मैशीलवर, रूपवती शोभा की खान।
नहीं और जग में देखूं, देखा मैंने करके ध्यान।

(अनुवादकः गौरीदत्त बाजपेयी)

परन्तु धीरे-धीरे 'पितृवियोग' जैसी मौलिक कविताओं की भी सृष्टि होने लगी—

मातृ कलत्र बन्धु-भगिनी औ नातेदारों का सब भार।
मेरे अति असमर्थ शीसपर गिरा, सकूँ कैसे सभार।
पौरुष-हीन सहाय न कोई भ्रष्ट भवन हो जावेगा;
प्राणाधार पिता। विघ्नों से मुझको कौन बचावेगा? §
(अनन्तराम पाण्डेय)

'बुलबुल' पर (संभवतः अंग्रेजीकी TO THE CUCKOO की प्रेरणा से) कवि का भाव स्रोत-उमड़ने लगा :

पी पी प्रसूनासव मत्त हो के
तुरन्त हीं तू नित नाचती है।
महासुरीले सुर से पुनः पुनः
बता किसे नित्य पुकारती है * (सत्यशरण रतूड़ी)

'जन्मभूमि' में द्विवेदी जी ने एक परिवार की कल्पना प्रतिष्ठित की :

यह जो भारतभूमि हमारी।
जन्मभूमि हम सब की प्यारी।
एक गेह सम विस्तृत भारी,
प्रजा कुटुम्ब तुल्य है सारी।

'हेमन्त' पर बाबू मैथिलीशरण गुप्त की पहली कविता 'सरस्वती' में सन् १९०५ में छपी और तबसे उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध 'सरस्वती' से रहा।‡ उनकी इस प्रथम कविता में भी भविष्य की आशा-किरण है:

§ 'सरस्वती', भाग ५ : संख्या ६-जून, १९०४ ई०
‡ „ भाग ५ : संख्या ३-जुलाई १९०४ ई०
* „ „ „

हुए हिमाच्छादित सूर्यमण्डल;
समार सीरी बहती अखण्डल।
प्रियंगु के पेड़ प्रफुल्ल होचले;
हरे हरे अंकुर खेत में भले। ‖

'ग्रीष्म (सनातन शर्मा सकलानी), 'पावसराज' (सनातन शर्मा) 'शरत् स्वागत' (सत्यशरण रतूड़ी,) शिशिर-पथिक (पं. रामचन्द्र शुक्ल), 'हेमन्त' (मैथिलीशरण गुप्त), 'वसन्तराज' (सनातन-शर्मा सकलानी)—छओं ऋतुओं पर हिन्दी-कवियों ने स्वतंत्र कविताएँ लिखीं।

आचार्य द्विवेदी ने कहा था—'ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में से छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी छोटी कविता करनी चाहिए।' इसका अक्षरशः पालन खड़ी बोली कविता के उस प्रारंभकाल में हुआ। कभी मैथिली बाबू 'ग्रन्थगुणगान' कर रहे हैं,—

सद्धर्म का मार्ग तुम्ही बताते;
तुम्हीं अघों से जग में बचाते।
हे ग्रन्थ, विद्वान् तुम्हीं बनाते,
तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते।

तो 'हरिऔध'जी 'प्रभात' पर अपनी उर्वर कल्पना की प्रसूति कर रहे हैं:

पहने कञ्चन कलित कीट मुक्तावलि-माला।
विकच कुसुम का हार विभाकर-कर का पाला।

‖. सरस्वती; भाग ६; संख्या १: जनवरी १६०५
‖ " भाग ८, संख्या: ११: नवंबर १६०७.

प्राची के कमनीय अंक में लसित दिखाया।
लिये करों में कमल प्रभात विहँसता आया।

पंडित लोचन प्रसाद पाण्डेय 'कृषक' के स्तवन में मानस-भावना के अनूठे रत्न भेंट चढ़ा रहे हैं—

भोले भाले कृषक देश के अद्‌भुत बल हैं।
राजमुकुट के रत्न कृषक के श्रम के फल हैं।

कृषक देशके प्राण कृषक खेती के की कल हैं।
राजदण्ड से अधिक मान के भोजन हल हैं।

लक्ष्मीधर वाजपेयी कर्त्तव्य की 'चारुमाला' गूंथते गूंथते एक सुमन युग-भावना का भी सजा देते हैं—

देशी चीजों का अनुराग,
वस्तु विदेशी का कर त्याग।
करो सभी इसका उद्धार।
विनती यही पुकार पुकार।

पं० गिरिधरशर्मा अपने 'पुस्तक-प्रेम' का उद्‌घोष करते हैं:

"ब्रह्मन्, तजो पुस्तक-प्रेम आप
देता अभी हूँ यह राज्य सारा।"
कहे मुझे यों यदि चक्रवर्ती
"ऐसा न राजन् कहिए" कहूँ मैं।

'सरस्वती' में प्रकाशित होनेवाले अनेक चित्रों पर उस काल के स्वनामधन्य कवि काव्य-प्रबन्ध लिखा करते थे। कई उद्योग स्वतंत्र रूप से भी हुए और गुरुदेव के वरदहस्त की उन कवियों को भी छत्रछाया मिली। द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में सरस्वती

द्वारा राजा रविवर्मा के चित्रों पर अनेक सुन्दर काव्योद्भावनाएँ जनता को मिलीं। 'रम्भा' 'महाश्वेता' 'कुमुदसुन्दरी' 'इंदिरा', द्विवेदी जी द्वारा, 'कादम्बरी', श्री 'पूर्ण' द्वारा. 'मालती','प्रार्थना पञ्चदशी', श्रीमैथिलीशरणगुप्त द्वारा और 'वसन्त सेना विलास' श्रीशंकर कविद्वारा, चित्रों पर लिखी हुई कविताएँ ही थीं।

इस प्रकार के लघु काव्य-प्रबंधों का विकास कथा-प्रबन्धों में हुआ और 'रामलीला' (शंकर') 'सोऽहम (बी. ए.), वीरांगना-काव्य' (श्रीकमलानंद सिंह) 'शिवाजी' (कामता प्रसादगुरु) 'वनविहंगम' (रूपनारायण पाण्डेय), 'मृगीदुखमोचन' (लोचन-प्रसाद पाण्डेय), 'कृष्णावतार' (रामदास गौड़) आदि राशि-राशि रचनाएँ लिखी गईं।

इन छोटे-छोटे उद्योगों की सफलता ने कवियों को बड़े प्रबन्ध-काव्य लिखने की दिशा में प्रेरित किया और 'भारत-भारती', 'रंग में भंग','त्रिपथगा','जयद्रथ-वध', 'मौर्य-विजय', 'किसान', 'वैदेही वनवास', 'प्रियप्रवास'. 'वीरपञ्चरत्न,' 'पथिक', 'मिलन', 'स्वप्न', 'उपेक्षिता', 'उर्मिला', 'अपूर्ण' जैसे कथा-काव्यों की सृष्टि हुई। अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल कथावस्तु पुराणों, इतिहास अथवा

प्रबन्ध-काव्य

कल्पना से ली गई और युग के अनुरूप भावनाओं की प्रतिष्ठा उनमें की गई। मैथिलीशरण, और 'हरिऔध' पौराणिक कथाकार हैं, सियारामशरण 'ऐतिहासिक और भगवानदीन में पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं का संगम हुआ है। श्री रामनरेश त्रिपाठी की प्रतिभा ने कल्पना में से प्रबन्धों की सृष्टि की और हिन्दी में विविध शैलियों के प्रबन्धकाव्यों का कोष समृद्ध हुआ।

: ६ :

नवीन अर्थ विधान

आचार्य द्विवेदीजी ने कविता का जीव बताया था 'अर्थ-सौरस्य' (अर्थ की सरसता)। भरतमुनि, धनञ्जय और विश्वनाथ के अनुसार 'रस' काव्य की आत्मा है—वाक्यं रसात्मकं काव्यं; भामह, दण्डी, और रुद्रट के मत में 'अलंकार' और वामन के मत में 'रीति' काव्य की आत्मा हुई: कुन्तक ने 'वक्रोक्ति' को 'काव्य-जीवित' बताया था और आनन्द वर्द्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा (काव्यस्य आत्मा) की संज्ञा दी थी। आचार्य द्विवेदी ने भी परम्परा में एक कड़ी अपनी जोड़ी थी।

'अर्थ सौरस्य' की प्रक्रिया का निरूपण करते हुए उन्होंने लिखा था :

"कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए; ऐसा न होने से अर्थ-सौरस्य नहीं आ सकता। विलाप-वर्णन करने में कवि के मन में यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयम् विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयम् अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तःकरण में
'अर्थ सौरस्य की यह दृढ़ संस्कार होना चाहिए कि वर्ण्यमान नदी,
प्रक्रिया पर्वत अथवा वन के सम्मुख वह स्वयम् उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। कवि के आत्मा का वर्ण्य विषयों से जब, इस प्रकार, निकट सम्बन्ध हो जाता है तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता को पढ़कर पढ़ने वालों के हृदय पर तद्वत् भावनायें उत्पन्न होती हैं;

कविता करने में अलङ्कारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए। विषयों का तादात्म्य करते हुए धारा-प्रवाह से जो कुछ टेढ़ा या सीधा उस समय मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिए। बलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृत भाव से जो कुछ आजावे उसे ही पद्यबद्ध करदेना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है।"

द्विवेदीजी की यह व्याख्या दो शब्दों में केन्द्रित हो जाती है: (१) कवि का वर्ण्य विषय (Theme) से तादात्म्य; और (२) सहज भाव स्फुरण (Spontaneous overflow of powerful feelings),

वर्ण्य विषय का चुनाव करने में जिस प्रकार द्विवेदीजी का आदर्श अंग्रेजी के कवि वर्ड्सवर्थ के समान था, उसी प्रकार कविता की व्याख्या करने में वे वर्ड्सवर्थ से सहमत थे। वर्ड्सवर्थ ने अपनी 'लिरिकल बैलड्स' के विषय 'सामान्य जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों में से चुने थे और उन्हें जनता की भाषा (में से निर्वाचित पदावली) द्वारा प्रस्तुत किया था। आचार्य द्विवेदी का भी आग्रह जनता की भाषा अथवा गद्य की भाषा—खड़ी बोली—को कविता का माध्यम बनाने पर था।

साधना का पथ

गद्य की भाषा को पद्य की भाषा बना देना एक महती साधना थी। इस साधना का यह पथ आरम्भ, मध्य और अन्त तीनों स्थितियों में परीक्षाओं से पूर्ण रहा। द्विवेदी-काल के हिन्दी कवि के आगे हिमालयाकार कठिनाइयाँ थीं। भाषा उसके पास नवीन थी, भाव नवीन थे, परन्तु अभिव्यक्ति की शैली नहीं थी। शताब्दियों

से ब्रजभाषा में लिखी गई हिंदी कविता ने 'अर्थ-सौरस्य' की साधना के सब उपकरण सचित कर लिये थे। युग ने नये विषय नये कवि को दिये थे और आचार्य ने नई भाषा-खड़ी बोली। कर्कश होने के कारण वह कोमल ब्रजवाणी के आगे 'खड़ी' थी। साध्य इन कवियों का था—'अर्थ-सौरस्य'! इसकी साधना दुष्कर थी और कवि-प्रतिभा की परीक्षा इसी में होती है। नई भाषा को कविता का माध्यम बनाने में कितनी कठिनाई होती है यह अनुभवगम्य है। बरसों के प्रचलन और व्यवहार से कहीं भाषा में काव्योचित अभिव्यञ्जनाशक्ति और कोमलता आती है।

फिर, गद्य और पद्य की भाषा में कुछ-न-कुछ अन्तर सदैव रहता है। एक ही भाषा को गद्य और पद्य का माध्यम मानने वाले वर्ड्सवर्थ ने लिखा था : "यह निर्विरोध कहा जा सकता है कि गद्य और पद्य की भाषा में कोई 'मौलिक' अन्तर न तो है और न हो सकता है!" उसकी धारणा थी कि "प्रत्येक अच्छी कविता के अधिकांश की भाषा चाहे वह कितना ही उच्च कोटि का क्यों न हो—छन्द विधान को छोड़ कर किसी भी रूप में सुन्दर गद्य से भिन्न नहीं हो सकता इतना ही नहीं; श्रेष्ठतम कविताओं के मधुरतम अंशों की भाषा तो सुललित गद्य की भाषा के अनुरूप ही होगी।"

यह अंशतः सत्य हो सकता है और वर्ड्सवर्थ की प्रारम्भिक कविताओं में, जिसके वर्ण्य सामान्य जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों में से चुने गये थे, उसकी भाषा गद्य के निकट रही थी। कारण यह था कि भाषा उन वर्णनात्मक विषयों के अनुकूल थी। वे कविताएं अधिक ऊँची भी नहीं उठ सकीं। जीवन की गहराई की कविताओं में वह अपनी इस स्थापना को चरितार्थ न कर पाया था। गद्य में तर्क-वितर्क, विश्लेषण-विवेचन की क्षमता

लाने के लिए भाषा एक दिशा में चलती है और भावना और संवेदन को जगाने के लिए पद्य की भाषा दूसरी दिशा में। एक प्रज्ञात्मक और सरल होती है, दूसरी रागात्मक और बंकिम—एक बुद्धिगम्य होती है, दूसरी हृदयगम्य।

द्विवेदी-काल के कवि को जो भाषा दी गई थी वह गद्य की भाषा थी और जो विषय मिले थे वे थे—'चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु; भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य; बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल; अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत!' और कविता ऐसी चाही गई थी जिसका विषय 'मनोरञ्जक और उपदेशजनक' हो। ऐसी परिस्थितियों में कविता छन्द-बन्ध की कोटि से अकस्मात् ही ऊँची नहीं उठ सकती थी। जिन कवियों के पास ऐसी प्रतिभा नहीं थी, उन्हें निर्देश दिया गया था कि "उनको ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में से छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविता करनी चाहिए। अभ्यास करते करते शायद कभी किसी समय वे उससे अधिक योग्यता दिखलाने में समर्थ होवें और दण्डी कवि के कथनानुसार शायद कभी—वाग्देवी उनपर सचमुच प्रसन्न हो जावे।" परिणाम यह हुआ कि वाग्देवी जिन इने-गिने कवियों पर प्रसन्न हुई, उनको छोड़कर सबकी कविता वर्णनात्मक अधिक हुई। वर्ण्य विषयों की एक लम्बी सूची कवि की दृष्टि के आगे थी। ये सब विषय जीवन-ग्रन्थ के पढ़े जारहे पृष्ठों में से लिये गये थे। कोई 'ऋतु' ऐसी नहीं थी, जिसपर किसी कवि की 'कविता' न हुई हो, कोई दैनन्दिन घटना, समस्या, समारोह और आन्दोलन ऐसा नहीं बचा जिसपर कवि की वाणी मुखर न हुई हो। एक ओर कालिदास के 'ऋतुसंहार' की शैली पर हिन्दी के कवि 'ग्रीष्म'

'वर्षा', 'शरद', शिशिर', 'हेमन्त' और 'वसन्त' का वर्णन कर रहे हैं, तो दूसरी ओर अंग्रेजी के शैली, 'वर्ड्सवर्थ' 'कीट्स' की भाँति 'कोकिल' और 'बुलबुल' से बात कर रहे हैं; एक ओर 'दिल्ली-दरबार' का वर्णन हो रहा है तो दूसरी ओर 'प्रयाग की प्रदर्शिनी' का, एक ओर 'होनेली पचक' लिखा जा रहा है तो दूसरी ओर 'शिक्षा-शतक'; एक ओर 'वसन्त-सेनाविलास' चित्रित हो रहा है तो दूसरी ओर 'मालती-महिमा' वर्णित हो रहा है; एक ओर 'नागरी' और 'हिन्दी' के समर्थन में कविता लिखी जा रही है तो दूसरी ओर 'विद्यार्थियों के कर्त्तव्य' गिनाये जा रहे हैं। इन विविधताओं में भी एक समानता थी। कवि की वृत्ति इन सब कविताओं में प्रायः इतिवृत्त का वर्णन करना ही होती थी, हो सकती थी। वह वस्तुतः अपनी भाषा को, अपनी भावाभिव्यक्ति को माँज रहा था।

हाँ, कुछ कवियों के आगे यह कठिनाई इतनी विषम न थी। जो कवि संस्कृत, अंग्रेजी या बंगला भाषा के अभिज्ञ थे, उन्हें काव्यकोष में से अर्जन करने के लिए प्रचुर सुविधा थी। श्री कन्हैयालाल पोद्दार, राय देवीप्रसाद पूर्ण, मैथिलीशरण गुप्त, प० रामचरित उपाध्याय, गिरिधर शर्मा, सीताराम 'भूप' जैसे संस्कृतज्ञ अन्य भाषाओं से [illegible] कवियों ने कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ [illegible] अर्जन [illegible] और दण्डी के काव्यों को पा डाला था। आचार्य द्विवेदीजी ने स्वयं कालिदास के 'कुमारसम्भव' का सार-अनुवाद करके एक नये आयोजन का पदार्थ पाठ दिया था। अनुवाद की दिशा में हिन्दी के कवि कुछ पहिले से ही चल पड़े थे। भारतेन्दु [illegible] संस्कृत [illegible] हरिश्चन्द्र, 'भूप' आदि पिछली शताब्दी में संस्कृत भाषा के नाटकों को हिन्दी रूपान्तर कर चुके थे। द्विवेदीजी

: ७ :

द्विवेदी-कालीन कविता का विकास-क्रम

द्विवेदी-काल में हिन्दी कविता ने जिस नवीन अर्थ-विधान का विकास पाया, उसके क्रम को चार अवस्थाओं में देखा जा सकता है—(१) चमत्कारात्मक, (२) वर्णनात्मक, (३) उपदेशात्मक और (४) भावात्मक।

(१) चमत्कारात्मक अवस्था : 'सूक्तिकाव्य'

पहली स्थिति कविता में चमत्कार के आयोजन की थी, जिसका सूत्रपात संस्कृत सूक्तियों के हिन्दी अनुवाद से हुआ और पर्यवसान हिन्दी की मौलिक सूक्तियों और अन्योक्तियों में हुआ। इन सब कविताओं में चींटी से लेकर हाथी और तृण से लेकर हिमालय तक के समस्त दृश्य-विषय (phenomena) वर्ण्य हुए हैं। उनमें कवि की चमत्कारपूर्ण उक्तियों (सूक्तियों) अथवा अन्योक्तियों की छटा है। भाषा शुद्ध 'खड़ी बोली' न होकर संस्कृतबहुल और क्लिष्ट भी है और ब्रजभाषा के प्रयोगों से प्रभावित था।

'द्विवेदीजी' 'सरस्वती' में 'विनोद और आख्यायिका' तथा 'मनोरंजक श्लोक' को प्रदर्शित किया करते थे। उनसे पाठकों का मनोरंजन और कवियों का मार्गदर्शन होता था। 'भोज-प्रबन्ध' की—

निजानपि गजान् भोजं ददानं प्रेक्ष्य पार्वती।
गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुनः पुनः ॥

सूक्ति और साथ में रघुनाथराव पेशवा की स्तुति में लिखा हुआ 'पद्माकर' का

"सम्पति सुमेर की कुवेर की जो पावै कहूँ तुरत लुटावन विलम्ब उर धारै ना।
कहै 'पदमाकर' सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के वितर बिचारै ना।
गञ्ज गज बक्स महीप रघुनाथराव याही गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
यातैं गिरिगिरिजा गजानन को गोइ रही, गिरितैं, गरेतैं, निज गोदतैं उतारै ना।"

कवित्त उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा था "भाषा के अनेक कवियों ने संस्कृत के उत्तमोत्तम श्लोकों का आश्रय लेकर भाषा में कविता की है। पद्माकर ऐसे प्रसिद्ध कवि ने ऐसा करने में जब कोई दोष नहीं समझा तब यदि आजकल के कवि प्राचीन संस्कृत पद्यों की छाया अथवा उनका भाव लेकर हिन्दी में कविता करें तो वे क्षमापात्र हैं।" वे सूक्तियों के स्वयं प्रेमी थे और हिन्दी में सूक्ति की निधि स्थापित होते देखना चाहते थे। वे संस्कृत की सूक्ति 'काव्यालङ्कारज्ञमेव कविता कान्ता वृणीते स्वयं'—'कविता-कान्ता काव्यालङ्कार के ज्ञाता को ही वरण करती है' के समर्थक थे। माघ और मंखक, भोज और भारवि, कालिदास और शूद्रक जैसे रससिद्ध कवियों की सूक्ति-मणियाँ संस्कृत काव्यकोष में से खोज-खोजकर निकाली गईं। श्रीधर पाठक कालिदास के 'ऋतुसंहार' का अनुवाद कर चुके थे। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने संस्कृत की अनेक अन्योक्तियों का रूपांतर किया था। उनके सहचरों की पंक्ति में थे श्रीकन्हैयालाल पोद्दार, मैथिलीशरण

गुप्त, पं० रामचरित उपाध्याय, पं० रूपनारायण पाँडेय, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' और पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी। इन सबने संस्कृत काव्य की शतशः मनोरम सूक्तियों और अन्योक्तियों को हिन्दी में ढाल दिया। परन्तु आगे जाकर मौलिक सूक्तियाँ भी प्रसूत हुईं; यद्यपि उनमें संस्कृत की मुद्रा प्रक्षुण्ण रहती थी।

तू जान के भी अनल-प्रदीप
पतङ्ग! जाता उसके समीप।
अहो, नहीं है इसमें अशुद्धि
"विनाश काले विपरीत बुद्धिः।"
(पतंग पर अन्योक्ति : मैथिलीशरण गुप्त)

साथ ही संस्कृत और हिन्दी के भावसाम्य के छन्द दिखाये गये। आजकल की पहेलियों की तरह चामत्कारिक श्लोकों के अर्थ पूछे गये। द्विवेदीजी का यह सञ्चयन-कार्य अन्य कवि तथा काव्यमर्मज्ञ भी करने लगे। पंडित पद्मसिंह शर्म्मा ने बिहारी के दोहों की चमत्कारपूर्ण उक्तियों के स्रोत और फ़ारसी के समानान्तर शेर खोजे और इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के कवि पुराण (classical) जगत् में विचरण करने लगे। निरन्तर प्राचीन संस्कृत काव्यों के भाव-समुद्र में मग्न रहने से मौलिक रत्न भी कभी-कभी उनके हाथ लगे और वे अन्योक्तियाँ लिखने में सिद्धहस्त हो गये। उन्होंने तृण से लेकर हिमालय तक के पदार्थों (भ्रमर, कोकिल, हंस, कुक्कुट, चातक, वक, हाथी, वसन्त, समुद्र, गंगाजल, कदली, चन्दन, मृग, आम्र पत्थर, सन्ध्या, चन्द्र, मेघ, वर्षा तड़ाग, माली, कनेर, केतकी, सिंह, पथिक, खजूर, मलयाचल, हिमालय) आदि आदि पर अन्योक्तियाँ लिखीं और शब्दशिल्प दिखाया।

"कलङ्की (चन्द्रमा) को ऐड्रेस" करते हुए श्रीगिरधिर शर्मा ने श्लेष के चमत्कार से अपने चार चरणों में चौगुना सौंदर्य भर दिया है :

रे दोषाकर ! पश्चिमबुद्धि !
कैसे होगी तेरी शुद्धि ?
द्विजगण को कोने बैठाया;
जड़ दिवान्ध को पास बुलाया !

[कलंकी (शशलाञ्छन) चन्द्रमा का दोषा कर (दोषा-कर और दोष-आकर) होना उसके द्विजगण (ब्राह्मणों तथा पक्षियों को कोने में बैठाने और दिवान्ध (उल्लू) को पास बुलाने से) सिद्ध किया है !]

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'मृत्युञ्जय' शीर्ष देकर न जाने कितनी ही अन्योक्तियाँ लिखी थीं जिनमें मौलिकता थी, परन्तु भाषा उनकी 'व्रज' ही थी।

पं. रामचरित उपाध्याय ने भी आर्यावृत्त में अच्छी अन्योक्तियाँ लिखी थीं, जिनमें मौलिकता थी—

संकट में भी सज्जन स्वभाव अपना कभी नहीं तजता।
अर्धग्रसित सुधाकर सुखकर होता कुमुद वन को ॥

अन्योक्तियों सूक्तियों, और सुभाषितों की यह धारा सन् ११-१२ तक वेग से चलती रही है, फिर धीरे-धीरे क्षीण हो गई है। सन् १५ और १६ तक भी अन्योक्तियाँ प्रकट होती रहीं। कभी-कभी इन अन्योक्तियों में अनूठे प्रकार का स्वादु रस होता था:—

कहा बाण ने 'काम दूर तक मैं ही दूँगा।'
बोला चाप—'परन्तु सहायक मैं भी हूँगा।'

प्रत्यञ्चा ने कहा—'कहा सब अपनी अपनी।'
कर बोला है—'है मुझे मौन माला ही जपनी॥'
कहा वृक्ष ने 'उच्च और उपकारी हूँ मैं।'
बोली वल्ली 'तभी सदैव तुम्हारी हूँ मैं॥'
(मैथिलीशरण गुप्त)

रविठाकुर ने अपनी 'कणिका' (अंग्रेजी अनुवाद Stray Birds) में ऐसे ही छोटे-छोटे बिन्दु दिये हैं, जिनमें गागर-जितना रस है।

ये अन्योक्तियाँ भाव की उस सीमा पर पहुँच गई थीं जहाँ से वे चमत्कार को छोड़कर रस में डूबने लगती हैं!

(२) वर्णनात्मक अवस्था : इतिवृत्तात्मक काव्य'

'सूक्ति-काव्य' की सृष्टि द्वारा खड़ी बोली की कविता उस स्थिति में पहुँच जाती जब कविता 'वाग्विलास' मात्र रह जाती है; परन्तु जो कवि रीतिकुलीन कविता के शिल्प और संकीर्ण सौन्दर्य से ऊब चुका था, वह इस घेरे में बँधा नहीं रह सकता था। जीवन का कठोर आग्रह नयें-नये विषय, नये-नये वर्ण्य उनको दे रहा था और उनकी अभिव्यक्ति की वृत्ति मौलिक मार्ग पाने के लिए छटपटाती थी। अंग्रेजी कविता के अध्ययन ने उन्हें यह पाठ दिया था कि तुच्छ से तुच्छ वस्तु, प्रसंग, घटना और सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव अथवा कल्पना भी कविता का वर्ण्य हो सकती है। जब इंग्लैण्ड का कवि[१] 'वेस्टमिन्स्टर ब्रिज पर' कविता लिख सकता तो हिन्दी का कवि 'द्वारका' और 'मथुरा' नगरियों पर अपने हृदय की श्रद्धा क्यों न प्रवाहित करे? जब स्कॉटलैंड का कवि[२]

१. वर्ड्सवर्थ, २. सर वॉल्टर स्कॉट

'देश-प्रीति' (Love of Country) पर गीति लिख सकता था, तो हिन्दी का कवि क्यों न 'जन्मभूमि' के प्रति कहता ?

बन में जन्मभूमि सुखदायी, जिस नर पशु के मन न समाई।
उसके मुख दर्शक नर-नारी होते हैं अघ के अधिकारी॥

(महावीरप्रसाद द्विवेदी)

जब अंग्रेजी कवि¹ कोकिल बुलबुल (अथवा स्काईलार्क—Skylark) के प्रति अपनी कविता निवेदित कर सकते थे तो हिन्दी का कवि कोकिल वा बुलबुल को संबोधित क्यों न करता ?

पीती स्वयं है; नहि तू पिलाती;
प्रमत्त हो हो ध्वनि है सुनाती।
तथापि उन्मत्त अहो, बनाती;
बता कहाँ मादक द्रव्य पाती ?

(कोकिल : कन्हैयालाल पोद्दार)

जब लार्ड बायरन जैसा कवि 'तरुणी तू चलबसी अभी !'—(And thou art dead as young and fair) का शोकोद्गार प्रकट कर सकता था तो हिन्दी का कवि क्यों न 'पितृवियोग' पर आँसू बहाता ?—

कहाँ गई वह मधुर सीख तव वत्सलता की पयस्विनी ?
कहाँ अतुल दक्षता तुम्हारी त्रिविधताप बाधा हरनी ?
सो अरण्य रोदन सा मेरा यह विलाप हो रहा वृथा !
क्या भूतात्मक तत्त्व न कोई बचा ? हाय ! आश्चर्य-वृथा !

(अनन्तराम पाण्डेय)

---

१ वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शेली आदि।

अंग्रेजी कवियों ने 'दि डेफोडिल्स',§ 'टु दि डेसी',§ 'दि इनविटेशन',‖ 'दि रिकलेम्शन',‖ और 'ब्राइटस्टार' ‡ जैसी कविताओं में प्रकृति-सुन्दरीका सदृश आनन्द को सुनाया है। अंग्रेजी कवि को सरोवर की लहरें नृत्य से लुभाती हैं, तो हिन्दी के कवि को नदी-निर्झर अपने गायन और नर्तन से। अंग्रेजी के कवि ने

'सरोवर की वे लहरें निकट कर रही थी मधुमय नर्तन
ज्योतिमय उन लहरों से किन्तु, अधिक प्रमुदित था उनका मन !*

तो हिन्दी के कवि सत्यशरण रतूड़ी ने भी प्रकृति का मनोरम रूप देखा था :

सुरीली वीणा सी सरस नदियाँ वादन करें,
कभी मीठी मीठी मधुर ध्वनि से गायन करें,
सदा ही नाचे हैं झरित झरने नाच नवल;
निराली शोभा है विपिन वर की कौतुकमयी !
(शांतिमयी शय्या)

अंग्रेजी के कवि सदे § की भाँति हिन्दी के कवि ने भी 'ग्रन्थगुणगान' किया :

---

§ वर्ड्सवर्थ ‖ शेली ‡ कीट्स।

* The waves besides them danced but they
Out did the Sparkling waves in glees
The Daffodils Wordsworth.

§ With them I sake delight in weal
And teek relief in woe,
And while I understand and feel
How much to them I owe,
My cheeks h ve often been bedewed
With tears of thouhtful gratitude
(The Scholar : Southey)

से विनय' 'दिल्ली दरबार' और 'सरस्वती की महावीरता,' 'पुस्तकावलोकन-प्रेमी विद्वान्' और 'प्रयाग की प्रदर्शिनी' 'ग्राम्यजीवन' और 'किसान' 'मेध के गुण और दोष,' 'हिन्दी का महत्त्व' और 'होली का हर्ष', 'निदाघ-वर्णन' और 'पुस्तक-प्रेम', 'हिन्दी षोडशनाम', और 'संसार की असारता' जैसे विविध जाति के वृक्ष-बीरुध हिन्दी-सरस्वती के उपवन में लगाये गये। किसी में सुन्दरता थी, तो सुगन्ध नहीं थी, किसी में सुगंध थी, तो कोमलता नहीं थी। निस्सन्देह, सरस्वती का यह उपवन शूल और फूल दोनों से भरा था। होली में ही सही, पर किसी कवि ने सत्य की हो ओर इंगित किया था :

> सरस्वती का पद्यविभाग है कोरा काँटों का बाग।
> पर इसमें है रस भरपूर। होगा सब भद्दापन दूर॥

यह प्रछन्न आशा एक दिन प्रकट हो कर रही। बहिरंग में ये सब कविताएं प्रायः 'इतिवृत्तात्मक' (वर्णनात्मक) ही हैं; परन्तु 'इतिवृत्तात्मक' की संज्ञा देकर भी हम इन्हें अवमानित-उपेक्षित नहीं कर सकते। 'इतिवृत्तात्मकता' तो कविता के विकास की एक अनिवार्य स्थिति है। कोई कवि, चाहे वह वाल्मीकि ही क्यों न हो, लेखनी उठाते ही रसवृष्टि नहीं करने लगता।

> मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीसमः
> यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्'

में भी इतिवृत्त ही समाविष्ट है। हमारे लिए चाहे ये कविताएँ 'कविताएं' न हों, 'इतिवृत्त' मात्र प्रतीत हों, परन्तु संसार के अल्प शिक्षित जनों के लिए इनका पूर्ण सदुपयोग है। 'सूक्तकाव्य' तो प्राचीनों का अनुकरण था, मौलिक प्रतिभा की कविताओं के

विकास की रेखा वर्णनात्मक (इतिवृत्तात्मक), उपदेशात्मक और भावात्मक सदैव यही रही है। 'द्विवेदी-काल' की इन सब वर्णनात्मक कविताओं में आज हमें चाहे 'रस' न भी मिले, परन्तु ये हमारी खड़ी बोली हिन्दी कविता की प्रगति के चरणचिह्नों के रूप में अमर हैं। अपने शैशव, बाल्य अथवा किशोरकाल के कुरूप और विरूप मुद्रा और भावभूषावाले चित्र को भी आज हम प्यार ही करते हैं। गङ्गा जहाँ से निकली है, वहाँ की धारा क्षीण और क्षुद्र होते हुए भी हमारे लिए तीर्थ है। ये 'द्विवेदीकाल' की कविताएँ आज की हिन्दी कविता की गंगा की गङ्गोत्री है।

(२) उपदेशात्मक अवस्था 'नीति-काव्य'

उपदेशात्मक काव्य का सूत्रपात स्वयम् आचार्यश्री ने किया था। जब उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादक पद को सुशोभित नहीं किया था तभी वे 'नागरी का विनय-पत्र' देने लगे थे, 'मांसाहारी को हण्टर' लगाने लगे थे और सेवावृत्ति को विगर्हणा'—करने लगे थे। कहने लगे थे कि

स्वातन्त्र्य-तुल्य अति ही अनमूल्य रत्न,
देखा न और बहु बार किया प्रयत्न।
स्वातन्त्र्य में नरक बीच विशेषता है;
न स्वर्ग भी सुखद जो परतन्त्रता है।

सरस्वती का सूत्र सँभालने पर पहली उपदेशात्मक कविता उन्होंने 'जन्मभूमि' लिखी थी और पुकारा था :

विविध भाँति श्रम मनुज उठावैं;
निज कुटुम्ब को सुखी बनावैं।

सबको सुखी देख सुख पावैं ।
सत्य सत्य हम सत्य सुनावैं ॥

"बीती ताहि बिसारि दै आगे की सुधि लेइ" के अनुसार उन्होंने अनुरोध किया था —

जो कुछ अब तक हुआ भुलाओ,
अब इसका सम्मान बढ़ाओ ।
मान लीजिये वचन हमारे,
इसकी लज्जा हाथ तुम्हारे ।

उपदेशात्मक कविता की यह धारा बीच बीच में पौराणिक आख्यानों के कारण प्रच्छन्न हो जाती थी, किन्तु प्रवाहित १६१६ ई० तक होती रही है।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' उस काल के धार्मिक-सामाजिक कवि थे। धर्म और समाज की अधोगति के कारण वे क्षुब्ध थे और निरन्तर उसकी उन्नति के लिए चिन्तित थे। अपने एक नाटक में उन्होंने अपने 'भरतवाक्य' में कामना की है:

सुमति सुखद दीजै फूट को लोग त्यागैं।
कुमति हरन कीजै द्वेष के भाव जागै।
तजि कुमसय निद्रा चित्त सौं चेति जागै।
विगम कुपथ त्यागै नीति के पंथ लागै॥
('चन्द्रकला-भानुकुमार' नाटक)

एक कविता में 'स्वदेशीवस्त्र का स्वीकार' का राष्ट्रीय धर्म समझाया जा रहा है:

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजै,
विनय इतना हमारा मान लीजै।

शपथ करके विदशी वस्त्र त्यागो,
न जाओ पास; उससे दूर भागो।

इन्हीं कविताओं ने 'शिक्षाशतक', 'प्रार्थना शतक' जैसी पुस्तकों के लिए दिशा दिखाई था, जिनमें 'दिनचर्या' तक का पाठ पढ़ाया जारहा है :

बाकी रहे घड़ी दो रात।
उठ बैठो तब जान प्रभात॥
भक्ति सहित लो हरि का नाम।
सोचो अर्थ—धर्म का काम॥

(शिक्षाशतक : जनार्दन झा)

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' अपनी सरलतम भाषा में 'कर्मवीर' की शक्तियों को गिनाते हुए अप्रत्यक्षतः कर्मवीरता का पाठ पढ़ा रहे हैं :

ठीकरा को वह बना देते हैं सोने की डली।
रंग को करके दिखा देते हैं वह सुन्दर खली।
वह बबूलों में लगा देते हैं चम्पे की कली,
काक को भी वह सिखा देते हैं कोकिल काकली।
ऊसरों मे हैं खिला देते अनूठे वह कमल।
वह लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल॥

एक ओर 'कविता-कामिनी-कान्त' 'शङ्कर' मुक्ति की साधना की कुञ्जी देरहे थे :

कब कौन अगाध पयोनिधि के उस पार गया जलयान विना।
मिल प्राण अपान उदान रहैं न समान निमिश्रित व्यान बिना॥

कहिये ध्रुव ध्येय मिला किसको अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना।
कवि 'शंकर' मुक्ति मिली न कहीं सुखमूल विवेकज ज्ञान बिना।

इसी स्थिति में कवि ने स्थूल विषयों से हटकर सूक्ष्म भावों और विचारों का चिंतन भी आरम्भ किया है। कवि का धर्म समाज को नैतिक, धार्मिक राजनैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में कोई न कोई पाठ पढ़ाना हो गया है। पाठक को शिक्षा और उपदेश देना कवि का साध्य बन गया है। इन कविताओं में रस-दान करने की क्षमता न हो परन्तु इनका 'उपदेशात्मक' होना ही इनकी विजय थी। यह उपदेशात्मक वृत्ति कभी-कभी सूक्तियों का रेशमी आवरण धारण करके आती थी :

संकट में भी सज्जन स्वभाव अपना कभी नहीं तजता।
अर्धग्रसित सुधाकर सुखकर होता कुमुद वन को॥
(रामचरित उपाध्याय)

और कभी 'प्रार्थना' का परिधान :—

नृयोनि में हे हरि जो पठाना,
न भूल भी दास मुझे बनाना।
करो कृपा हे त्रयतापहारी,
दासत्व है दुस्तर दुःखकारी।

समाज को नीति के, सदाचार के, शील के, कर्तव्य के, धर्म के, लोक-परलोक के उपदेश-देने के लिए हिन्दी का कवि सदैव जागरूक है। यहाँ तक कि पालने के शिशु को भी 'लोरी' में उपदेश ही सुनाता है :

करना ऐसे काम मनोहर : गर्व करें भारत वासी नर।
जन्मभूमि फूली न समावे। नई-नई सुख संपति पावे।

सोजा बेत्री सोजा। सोजा चन्दा सोजा।
सोजा भैया सोजा। सोजा सोजा सोजा॥
(गिरिधर शर्मा)

हिन्दी के एक तत्कालीन जागरूक आलोचक (अब स्वर्गीय) बदरीनाथ भट्ट ने द्विवेदीजी के स्वर मे स्वर मिलाते हुए लिखा था "हिन्दी के लिए यह सौभाग्य की बात है कि बोलचाल की भाषा काव्य मे अपना उचित स्थान पाती जारही है। उसमें भी उच्च श्रेणी की कविता होने लगी है और उसकी लोकप्रियता दिनों दिन बढ़ती जाती है। उसमे कविता सरल भी होती है और चुने हुए उपयोगी विषयों पर ही प्राय. लिखी जाती है। उसके द्वारा अब देशभक्ति तथा जाति-भक्ति को उत्तम तथा समयोपयुक्त शिक्षा दी जाने लगी है। वह मनुष्य के भावों को उच्च बना सकती है।"

इस प्रकार की उपदेशात्मक अथवा नीति-निर्देशक कविता युग की आवश्यकता की थी। देश के जीवन में उस समय सर्वांगीण जागरण हो रहा था। सामाजिक क्षेत्र में पश्चिम के 'बुद्धिवाद' ने क्रांति कर दी। पर्दा और पाखण्ड, अस्पृश्यता और निरक्षरता, बालविवाह और दहेज, अन्धविश्वास और जड़ता का जाल छिन्न-भिन्न होता जा रहा था। धार्मिक क्षेत्र मे उपासना और भक्ति की आडम्बरपूर्ण विधियों पर 'आर्यसमाज' ने कुठाराघात किया था। मूर्तिपूजा, उच्च-नीच भावना, वर्ण-विशृंखलता, आदि रोगो पर वैदिक धर्म ने आक्रमण किया था। आर्थिक जीवन म अपनी पराधीनता का हमें बोध हो गया था। सन् १६०५६ ई. का 'स्वदेशी', आन्दोलन हमारी आर्थिक जाग्रति

विशाल भावजगत् था; संस्कृत अंग्रेजी और बंगला के काव्यों के रसास्वादन से उसने रस-सृष्टि करने की क्षमता अर्जित करली थी।

भावात्मक अवस्था द्विवेदी-काल की कविता-धारा की अन्तिम विजय है। इसी के प्रकाश में हम द्विवेदी-काल की सफलता का दर्शन कर सकेंगे। द्विवेदी-काल इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक और कविताओं में ही सीमित नहीं रह जाता। 'जयद्रथवध' और पञ्चवटी', 'भारतभारती' और 'मौर्यविजय', 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' 'चोखे-चुभते चौपदे' और 'बोल-चाल,' 'रामचरित चिंतामणि,' और 'वीरपञ्चरत्न,' 'मिलन' और 'पथिक' 'बुद्धचरित' और 'वीर सतसई' द्विवेदी-काल की ही देन हैं। श्री मैथली शरण और मुकुटधर के रहस्यभावना के छन्द और बदरीनाथ भट्ट के गेय पद तो हिन्दी कविता में आनेवाले 'रहस्यवाद' और प्रगीत मुक्तकों के बीज थे। जिस समय आचार्य द्विवेदी ने साहित्य-जगत और विशेषत: कविता-जगत का सूत्र भी नहीं सँभाला था, तब उन्होंने हिन्दी कविता की दशा पर अश्रुपात किया था

कहाँ मनोहरि मनोज्ञता गई ?
कहाँ छटा क्षीण हुई नई नई ?
कहीं न तेरी कमनीयता रही;
बता तुही तू किस लोक को गई ?
(हे कविते ।)

परन्तु दो दशाब्दियों के उपरांत जब उन्होंने साहित्य क्षेत्र से विदा मांगी होगी, तब भी क्या इन्हीं चरणों को दुहराया होगा ? नहीं, तब उनकी दृष्टि में उनका वह प्रथम स्वप्न नाच गया होगा जो उस समय प्रत्यक्ष हो गया था। जिस महान् मंगल, अनुष्ठान के लिए उसका

कवि 'आचार्य' के रूप में प्रकट हुआ और 'कविनिर्माता' बनकर सरस्वती के मन्दिर में आया, उसे सम्पन्न हुआ देखकर उसकी छाती गर्व से फूल आई होगी और अपनी सेवाओं की स्वीकृति के लिए उसने वीणापाणि के चरणों में प्रणाम किया होगा।

: ८ :

ज्ञान का जागरण : भावधारा का विकास

हिन्दी-साहित्य में ज्ञान के जागरण की जो धारा भारतेन्दु-काल से आई थी, उसका दर्शन कविता में अब पूर्ण रूप से हो रहा था। यह जागरण भारत में अंग्रेजी शासन और सम्पर्क का परिणाम था। भारतीय सभ्यता के गायक कवि के शब्दों में भले ही यह असत्य न हो कि

> शैशव दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,
> निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे।
> संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-भिक्षा दान की,
> आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की।
>
> ('भारत भारती'-मैथिलीशरण गुप्त)

परन्तु वेद, उपनिषद्, दर्शन और पुराण के विधाता भारतवर्ष के ज्ञान का वह सूर्य यहाँ अस्त होकर पश्चिम में उदय हुआ। यहाँ तमिस्रा रजनी का साम्राज्य हो गया और यूरोप में विज्ञान का आलोक फैल गया। पश्चिम के सम्पर्क ने इस सोये हुए देश में फिर से जागरण की हलचल उत्पन्न कर दी थी। भारत में अंग्रेजी राज के प्रताप से अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ और बंगभूमि के वातायन से वही आलोक हिन्दी के मंदिर में आया। इस आलोक से हिंदी कविता ने भी आँखें खोलीं। हिन्दी के कवि में शताब्दियों की दबी हुई ज्ञान की क्षुधा जाग्रत हुई। उसके

हृदय और मस्तिष्क नवीन भाव-लोक और विचार-क्षेत्र खोजने के लिए व्याकुल हो उठे। उनकी दृष्टि अपने अतीत और दूसरों के वर्तमान की ओर गई। वे कहीं प्रतिवर्तनवादी हुए, कहीं 'स्वच्छन्दतावादी'।

इस जागरण की तीन दिशाएँ हैं—

(१) भारतीय काव्य का अनुशीलन,

(२) पश्चिमी काव्य का सम्पर्क,

(३) नवयुग की विविध भावभूमियों पर विचरण।

इसी त्रिकोण में 'द्विवेदी-काल' का समग्र काव्य निहित है।

(१) भारतीय काव्य का अनुशीलन

भारतीय अर्थात् संस्कृत काव्यों के अनुशीलन से किस प्रकार हिन्दी में सूक्ति-काव्य की सृष्टि हुई यह हम देख चुके हैं। कालिदास, भारवि, माघ, दण्डी जैसे कृती कविजनों के काव्यों के पद्यानुवादों से हिन्दी का राजकोष ही नहीं भरा, हिन्दी के कवि का भावकोष भी समृद्ध हुआ। द्विवेदीजी के 'ऋतु-तरंगिणी' 'गंगालहरी' 'कुमार सम्भवसार', 'रघुवंश' और श्रीधर पाठक का 'ऋतु-संहार' इस दिशा में पहले प्रयास हैं। द्विवेदीजी आगे जाकर हिन्दी काव्य के इस समारोह की प्रेरक शक्ति बन गये। उन्होंने स्वयम् 'कविता' को शेषप्राय

[सती हुई क्या कवि कालिदास के शरीर के साथ तभी अनाथ हो ?
विलुप्त किंवा भवभूति संग ही हुई मही से अवलम्ब के बिना ?]

मानकर कालिदास के 'कुमारसम्भव' का सार प्रस्तुत किया और भारवि के 'किरातार्जुनीय' की एक झाँकी दिखाई। आचार्य द्विवेदी का यह संस्कृत का काव्यानुराग सदैव उन्हें शक्ति देता रहा।

उस शक्ति का वे अपने समय के हिन्दी कवियों में पल्लवित होते हुए देखना चाहते थे। आचार्य के आदर्श को लेकर हिंदी के तत्कालीन कवियों ने जीवन जुटा दिया। 'सरस्वती' के सिद्ध-प्रसिद्ध कवियों ने उन्हींकी प्रेरणा से संस्कृत काव्यों के हिन्दी अनुवाद किये और हिन्दी काव्य को समृद्ध किया। द्विवेदीजी के संपादन-काल में संस्कृत के काव्यों का अनुशीलन, सौंदर्य-विश्लेषण, मनन और मंथन हुआ। वे हिन्दी कविता का 'संस्कार' संस्कृत की ही रस-प्रक्रिया के अनुसार करना चाहते थे। खड़ी बोली की हिन्दी कविता का 'भाव-संस्कार' इसी गुरु ने किया।

इस संस्कार द्वारा हिन्दी के कवि ने अपने 'पुराण' की ओर झाँका और नया भाव-जगत् देखा। राजा रविवर्म्मा ने अपने पौराणिक चित्रों द्वारा हिन्दी के तत्कालीन कवियों का अनन्त कल्पना क्षेत्र की ओर प्रेरित किया। द्विवेदी जी ने कालिदास के काव्यों के चित्र बनाने योग्य प्रसंग सम्भवतः राजा रविवर्म्मा की प्रेरणा के लिए ही खोजे थे। इन दो शक्तियों ने हिन्दी में पौराणिक कथा-काव्य का सूत्रपात किया। द्विवेदीजी की प्रेरणा और राजा रविवर्म्मा के चित्रों का आधार पाकर मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध', 'शकुन्तला' 'पंचवटी'। 'त्रिपथगा' जैसे खण्ड-काव्यों के अतिरिक्त अनेक लघु प्रबन्ध-'राजा शिवी', 'दानी दधीचि', 'रन्तिदेव', 'लंका का जयचंद'—दूसरे कवियों की लेखनी से प्रसूत हुए। कौन जाने 'प्रियप्रवास' के मूल में भी यही प्रेरणा रही हो।

बंग-काव्य के अनुशीलन का भी प्रभाव हिन्दी काव्यधारा में स्पष्ट है। माइकेल मधुसूदनदत्त के 'मेघनाद-वध' और 'व्रजांगना'

तथा नवीन चन्द्रसेन का 'पलाशिर युद्ध' इसी काल में हिन्दी में आये और रवींद्रनाथ के गीतों ने तो हिन्दी काव्य के भाव-जगत् को भी प्रभावित किया।

(२) पश्चिमी काव्य का सम्पर्क

भारत का सम्पर्क पश्चिमी काव्य में अंग्रेजी काव्य से ही रहा है। मकाले के प्रताप से भारतवासियों ने अपनी देवभाषा और देशभाषाओं—बंगाली, मराठी, गुजराती, हिन्दी—से भी पहले विदेश भाषा—अंग्रेजी-सीखी और वाणी की विजय के माध्यम से विदेशी साहित्य और संस्कृति ने विजय प्राप्त की। हमारे जीवन पर इस विदेशी प्रभाव ने जो घातक प्रभाव डाला है, वह उसके कल्याणकर प्रभाव से घट नहीं जाता। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि भारत ने साहित्य और ज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी से जो कुछ अर्जन किया है और आजतक अर्जन कर रही है वह अपरिमेय है।

अंग्रेजी साहित्य, विशेषतया नाटक और काव्य, के सम्पर्क ने हिन्दी के सरस्वती-पुत्र की आँखें खोल दीं और वह दोनों हाथों से यह निधि लूटने लगा। साहित्य ऐसी निधि है कि जिसे लूटनेवाला अपनापन खोकर ही कुछ ग्रहण करता है, और लुटनेवाला लुटकर भी लाभ में रहता है। अंग्रेजी के शेक्सपियर हिन्दी में आचुके थे। भारतेन्दु के जीवन-काल में नाटक-रचना की धूम रही, इसलिए शेक्सपियर की ओर ही साहित्यकारों की दृष्टि गई; परन्तु भारतेन्दु के पश्चात् साहित्य के दूसरे अंग काव्य की ओर भी प्रतिभा झुकी। गोल्डस्मिथ और वर्ड्सवर्थ, शेली और कीट्स, टेनीसन और बायरन, पोप और ग्रे की अब

पूजा हुई। अंग्रेजी काव्यों के अनुवाद के पथ पर प्रथम पद निक्षेप किया था श्रीधर पाठक ने। उनके पदचिह्नों पर चलने-वाले कवि थे—पुरोहित लक्ष्मीनारायण, बाबू जैनेन्द्र किशोर बाबू सत्यशरण रतूड़ी, गंगासहाय, पं० गोविन्दशरण त्रिपाठी सनातन शर्मा सकलानी, गौरीदत्त वाजपेयी, पं० रामचन्द्र शुक्ल। शुक्ल जी को छोड़कर श्रीधर पाठक जी के सदृश वृहद् प्रयास का साहस और किसी ने नहीं दिखाया। अंग्रेजी कवियों की छोटी छोटी भावाभिव्यक्तिपूर्ण कविताओं के ही अनुवाद प्रायः हिन्दी में हुए—'जीवनगीत' (Psalm of Life) 'मेरी मैया' (My Mother) 'स्वदेश प्रीति' (Love of Country), 'पुनः करो उद्योग' (Try again) 'निद्रा' (Sleep) 'लार्ड अलिन कुमारी' (Lord Ullins' Daughter), 'तरुणी तू चल बसी अभी' (And thou art dead so young and fair) 'तरुणी' (woman) आदि। पंडित श्रीधर पाठक का प्रथम (अंग्रेजी से हिन्दी) अनुवाद 'एकांतवासी योगी' (Hermit) युग का सुखद चिह्न था। वह 'भारत और इंग्लैण्ड के स्निग्ध सम्बन्ध का एक मधुरतम फल था। रामचन्द्र शुक्ल ने ब्रजभाषा के वाता-वरण से एडविन आर्नल्ड का 'एशिया का आलोक' (Light of Asia) देखा और 'बुद्धचरित' की रचना की।

(३) नवयुग की विविध भावभूमियों पर विचरण

नवयुग की विविध भावभूमि पर विचरण द्विवेदी-काल के कवियों की अपनी विशेषता है। विषय-विधान का विचार करते हुए हम कवियों के विविध भावक्षेत्रों का दिग्दर्शन कर चुके हैं। अगले पृष्ठों में हम इसी का विस्तृत अनुशीलन करेंगे।

: ६ :

'प्रेम' और 'प्रकृति'

पं० श्रीधर पाठक हिन्दी के उन वरद् पुत्रों में से हैं जिन्हें हिन्दी काव्य में विविध दिशाओं में अग्रणी होने का तिलक लगाया जा सकता है। हिन्दी में महाकवि कालिदास के 'ऋतु-संहार' को लाकर ऋतुवर्णन की नई प्रणाली का श्रीगणेश करने वाले वे थे; ब्रजभाषा में वे अपने प्राण और आत्मा की मधुरिमा भर सकते थे, तो खड़ी बोली में उतनी ही सफलता से जयदेव की सी 'कोमलकांत पदावली' की सृष्टि भी कर सकते थे। हिन्दी की खड़ी बोली में समाज की भावना को व्यक्त करनेवाले पाठकजी थे और अंग्रेजी काव्यों के प्रथम अनुवादक के रूप में तो वे अमर रहेंगे ही।

श्रीधर पाठक खड़ी बोली के 'वाल्मीकि'

संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ पण्डित श्रीधर पाठक 'उत्तम अंग्रेजी लिखने के लिए विख्यात' थे। अंग्रेजी का धार्मिक कवि गोल्डस्मिथ उनका प्रिय कवि था। उसके तीन काव्यों—'डेजर्टेड विलेज', 'हरमिट' और 'ट्रैवलर' के अनुवाद 'ऊजड़ग्राम' 'एकान्तवासी योगी' और 'श्रान्त पथिक' के रूप में उन्होंने हिन्दी कविता को दिये और हिन्दी का नवीन भावजगत् से परिचय कराया। जिस समय भारतेन्दु जैसे कृती कवि खड़ी बोली में

कविता का माधुर्य भरने में निराश हो चुके थे उस समय श्रीधर पाठक की प्रतिभा ने हिन्दी को 'हरमिट' का खड़ी बोली में 'एकान्तवासीयोगी' रूपान्तर दिया था। अनुवाद होते हुए भी 'एकान्तवासी योगी' में मौलिक काव्य का-सा रस है। दूसरी भाषा से अनुवाद करना मौलिक ग्रन्थ लिखने से भी अधिक कठिन है और सफल अनुवाद की कसौटी यह है कि वह पढ़ने में अनुवाद प्रतीत न होकर मौलिक की भाँति रसदान करे। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब पहले डालने में ही कठिनता उपस्थित होती है, और यदि बिना दो चार बूँद इधर-उधर टपके वह दूसरी शीशी में चला भी गया तो इस उलट फेर के करने में उसके सुवास का विशेषांश अवश्य उड़ जाता है।' परन्तु पाठकजी के अनुवाद इसके अपवाद हैं।

प्रेम-काव्य

आदिकवि वाल्मीकि क्रौंच पक्षी के वध से द्रवित होकर आदिकवि बने थे, पं० श्रीधर पाठक 'एकांतवासी योगी' की प्रेमसिक्त वाणी—

> 'मेरी जीवन-मूर प्राणधन। अहो अलबेला प्यारी!'
> बोला उत्कंठित होकर वह 'अहो प्रीति जग से न्यारी।'

सुनकर। 'एकान्तवासी योगी' ही श्रीधर पाठक के मस्तक पर खड़ी बोली के प्रथम काव्य-निर्माता का तिलक लगाता है। जिस समय हिन्दी कविता में रीतियुगीन परम्परा की अवशेष 'समस्या पूर्ति' की लहर बह रही थी, या जनजीवन की किसी घटना पर लम्बी कविता लिखी जा रही थी, या होली, कजली, और 'कबीर'

की तान रठ रही थी, उस समय पाठकजी ने एक प्रेमकहानी द्वारा फिर से कथाकाव्य के रस-तीर्थ की ओर इंगित किया; 'एकान्तवासी योगी' की भाँति कवि ने हिन्दी के रसिक पाठकों को खड़ी बोली की इस नई कुटिया में आमंत्रित किया—

यद्यपि थोडी सी सामग्री, नहीं प्रचुर भण्डार,
अर्पित होय भक्ति श्रद्धायुत यह मेरा परिचार।

'एकान्तवासी योगी' में कवि को किसी भारतीय ऋषि-मुनि का ही दर्शन हुआ—

इस पर्वत की रम्य कुटी में मैं स्वच्छन्द विचरता हूँ।
परमेश्वर की दया देख के पशुहिंसा से डरता हूँ॥
गिरिवर ऊपर की हरियाली झरना-जल निर्दोष।
कन्द-मूल फल-फूल इन्हीं से करूँ क्षुधा सन्तोष॥

खड़ी बोली की इस गगरी में कविता के वन में भटकते हुए पथिक को प्रचुर रस मिला और पूर्व और पश्चिम दोनों ने उसका अभिनन्दन किया। मिश्रबन्धुओं ने लिखा—"एकान्तवासी योगी' एक स्वच्छन्द ग्रन्थ से किसी प्रकार पद-लालित्य, सरसता और अर्थ-गौरव में न्यून नहीं है।" ग्राउस, ग्रिफिथ्स, हेनरी पिनकॉट आदि पश्चिमी विद्वानों ने भी इस अनुवाद की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। श्रीयुत अयोध्याप्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली आन्दोलन' में 'एकान्तवासी योगी' ने बड़ा बल दिया। उस पुस्तिका में उन्होंने 'एकान्तवासी योगी' को हिन्दी की सच्ची कविता के रूप में प्रस्तुत किया था, क्योंकि उनके अनुसार 'खड़ी बोली ही हिन्दी' थी।

पाठकजी गोल्डस्मिथ के काव्यों की भावना-धारा में आकण्ठ

निमग्न हो गये थे, इसलिए अनुवादों का उनका 'अनुवाद' नहीं कहा जा सकता। 'ऊजड़ग्राम' ('डेज़र्टेड विलेज' के ब्रजभाषी के अनुवाद) में जैसे किसी ब्रज के गाँव की ही कथा हो—

कलित ग्वालिनी गान ग्वाल छैला जिहि गावैं।
त्यों गोधन के जूथ मिलन बछगन रँभावैं॥
शब्द शील कलहंस वारि बिच रारि मचावैं।
खेल भरे जो बाल तुरत शाला तजि धावैं॥

जहाँ, किसान और नाऊ, लकड़हारा और लुहार जैसे भारत के हृदय ग्राम के ही अवयव हैं :—

कबहुँ न तहाँ पधारि ग्राम्य जन पग अब धरि हैं।
मधुर भुलौनी माहिं नित्य चिन्ता हि बिसरि हैं॥
ना किसान अब समाचार तहँ आय सुनै हैं।
ना नाऊ की बातें सब को मन बहलै हैं॥
लकड़हार को बिरहा कबहुँ न तहँ सुनि परिहैं॥
तान श्रवन आनन्द उदधि कबहूँ न उमरिहैं।
माथो पोछि लुहार, काम सों तहँ रुकिहै ना।
मारी बलहि ढिलाय, सुनन बातें झुकिहै ना॥

ब्रज भूमि के पुत्र पाठकजी ब्रज-वाणी में जितना रस बरसाते थे उतना ही खड़ी बोली में भी। दोनों पथों पर उनकी प्रतिभा अप्रतिहत रहती थी। आगे आकर गोल्डस्मिथ के 'ट्रैवलर' का अनुवाद उन्होंने, फिर, खड़ी बोली में ही किया है। इस 'श्रान्त-पथिक' में अंग्रेजी चरण का अनुवाद हिन्दी के ठीक एक ही चरण में कवि सफलता और सरसता के साथ अवतीर्ण कर सका है। गोल्डस्मिथ का कवि भावना में भारतीय है। 'एकान्तवासी योगी

और 'ऊजड़ गाम' में हिन्दी कविता ने भारतीय वातावरण की झाँकी देखा। 'श्रान्तपथिक' में 'स्वदेश-प्रीति' और 'आध्यात्मिक आनन्द' की भावना कवि के आकर्षण का कारण है—

> है स्वदेश प्रेमी का ऐसा ही सर्वत्र देश-अभिमान।
>
> उसके मन में सर्वोत्तम है उसका ही प्रिय जन्मस्थान॥

प्रकृति-प्रेम भी गोल्डस्मिथ के सभी काव्यों में झलकता है। 'श्रान्त-पथिक' के

> प्रकृति जो कि सबकी कृपालु समभाव हितैषिणि माता है।
>
> उद्यमयुत श्रम की पुकार पर सदा सहज सुखदाता है॥

में प्रकृति का 'जननी-रूप' प्रतिष्ठित हुआ है और 'ऊजड़ गाम' में प्रकृति का 'रमणी-रूप':

> जहाँ रसीला ऋतु वसन्त पहले ही आवत।
> जान समय विलमाय फूल फल देर लगावत॥
> प्यारी प्यारी वे मलूक हरियाली कुञ्जै।
> शोभा छबि आनन्द भरी सब सुख की पुञ्जै॥

मानवीय प्रेम ('एकान्तवासी योगी') प्रकृति-प्रेम ('ऊजड़ गाम') और स्वदेश-प्रेम ('श्रान्त पथिक') की त्रिवेणी गोल्डस्मिथ के काव्यों में प्रवाहित है। पाठकजी की कविता में भी यही त्रिधारा बहती है। हिन्दी की जो कविता केवल कल्पना के जगत् में विचरण करती थी, इन नवीन संचरण-क्षेत्रों को पाकर कृतार्थ हुई। मानवीय हृदय की कोमल अनुभूतियों का चित्रण हिन्दी-कविता में एक नई दिशा थी। 'एकान्तवासी योगी' के अभिनन्दन में लन्दन के 'दि इंडियन

मेगज़ीन' (जून, १८८८ ई०) ने लिखा था : "निरीक्षणशील व्यक्ति का यह प्रयत्न देशवासियों को प्रेम-भावना के अतिचार से छूटकर प्रकृति की अधिक सुखदायिनी सुषमाओं का साक्षात्कार करने में प्रेरक होगा। ऐसा प्रयास प्रोत्साहन का पूर्ण अधिकारी है, क्योंकि भावना की इस क्रान्ति का परिणाम, सम्पन्न होने पर, भारत के लिए सबसे अधिक मंगलमय। होगा भारतीय काव्य का उसका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन विकृत कर देता है, मन को मेघाच्छन्न स्वप्रदेश में उड़ा ले जाता है और मानव को महान् बनाने वाले व्यवहार्थ गुणों को कुण्ठित कर देता है। दूसरी ओर, प्रकृति की सरलता, हृदय को आनन्दित और उदात्त बनाती हुई मन को जगत् का वस्तुस्थिति और सम्भावनाओं की परिधि में ही बनाये रखती है।*

इस दृष्टिकोण से देखने पर पाठकजी हिन्दी कविता में एक नई दिशा के उद्भावक सिद्ध होते हैं। जो प्रेम राधा और कृष्ण

* "It is obviously an atte npt on the part of an observing man, to lead his corentrymen from the extravagance of romance, and to induce them to realise the more satisfying beauties of Naiure. Such an effo rt deserves every encouragement; for the consequences of such a change of sentiment, if ever accompliseed, would be most beneficial to India. The exuberance of higherbole which disfigures Oriental verse and legend lifts the mind into the clouds of dreamland, and weakens the practical virtues which make a people great. The simplicity of Nature, on the other hand, while satisfying and ennohling the heart, keeps the mind within the range of fact and probability."

की लीला अथवा नायक-नायिका की आँख-मिचौनी और अभि-
सार में ही सीमित था; अब हृदय के अधिक व्यापक और सार्व-
जनीन तत्त्व के रूप में पहली बार देखा गया। केवल एन्द्रिय
विलास के रूप में ग्रहीत प्रेम को पहली बार सार्वभौम शाश्वत
भाव के रूप में श्रीधर पाठकजी ने ही प्रतिष्ठित किया। 'प्रेम' के
ग्रहण में यह वृत्ति एक नई दिशा थी।

जिस प्रकार प्रेम पर कवि की एक नई दृष्टि पड़ी, उसी प्रकार
प्रकृति परक प्रकृति पर भी। प्रकृति के क्षेत्र में भी कवि-भावना
कविता ने नये दृष्टि-पथ देखे। अभी तक के कवि उसके
उद्दीपक रूप को ही देख सके थे, यह कवि उसका यथातथ्यवादी
और निरपेक्ष चित्र देखने लगा है, प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को
वह पहचान गया है और उसके क्रिया-कलाप में मानवोपम संवे-
दना और मानवीय चेतना की प्रतिष्ठा हो गई है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने ब्रजवाणी में 'जमुना वर्णन' करते हुए
प्रथम बार प्रकृति की सुषमा की ओर इंगित किया था—

> तरनि तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
> झुके कूल सों जल परसनहित मनहुँ सुहाये ॥
> किधौ मुकुरमें लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
> कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
> मनु आपत वारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
> कै हरि-सेवा हित नै रहे, निरखि नैन-मन सुख लहत ॥

भारतेन्दु की प्रकृति आलङ्कारिक भार लेकर आई है, अतः यद्यपि
चित्र-विधान उनकी तूलिका ने किया है, किन्तु वह निरपेक्ष-
निःसंग नहीं है। प्रकृति का स्वतन्त्र रूप-विधान संस्कृत के कालि-

दास, भवभूति प्रकृति कवियों की अपनी विशेषता थी।

मध्यप्रदेश के मनोरम नैसर्गिक क्रोड़ में रहने वाले कवि ठाकुर जगन्मोहन सिंह ने प्रकृति का निरलंकृत चित्र-विधान किया—

पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम।
निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिर जात उतंगता ऊपर झूम॥

जगन्मोहन सिंह की प्रकृति संवेदनशीला भी है; उसका मानवाभिमुख हृदय इन पंक्तियों में मुखर और चिन्मय हो उठा है—

अरपा सलिल अति विमल विलोल तीर
सरपा सी चाल बन जामुन है लहरै॥
तरल तरंग उर बाढ़त उमंग भारी
कारे मे करोरनें करारे कोटि कहरै।

तुम तो पियारी अंग परसि सुहागिन ह्वै
हमसे अभागिन की दाहनि को सहरै ?
तुरतै बयार संग प्रान जगमोहन के
सीतल कै हीतल कनूकै क्यों न बिहरै॥

कवि श्रीधर पाठक ने प्रकृति को और भी अधिक चिन्मयता प्रदान की। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति और नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना ने प्रकृति को अलङ्कार ? रीति की दासता से मुक्त, जीवन्त रूप में देखा-दिखाया। उसकी चेतन और प्राणमयी सत्ता में कवि ने अपने हृदयानुराग की प्रतिष्ठा की। उसके क्रिया-कलाप में उसके अन्तरंग की भावना को ग्रहण करके उसके चित्र-विधान को उन्होंने नाटकीय सुषमा

दी। उनके 'काश्मीर सुखमा' और 'देहरादून' काव्य प्रकृति के ऐसे ही चित्रकक्ष हैं, जिनमें प्रकृति-सुन्दरी के अनेक चित्र विभिन्न रूपों, विभिन्न व्यापारों और विभिन्न स्थितियों में अंकित हुए हैं। ये लता-द्रुम, पल्लव-प्रसून, मलनायिल, पराग और मकरन्द तो उस प्रकृति नाम्नी चिन्मय शक्ति के शृंगार और प्रसाधन के उपकरण हैं। उस प्रसाधन-मञ्जूषा के खुल पड़ने से धरती पर फुलवारी खिल पड़ती है:

> खिली प्रकृति पटरानी के महलन फुलवारी।
> खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी।

यह प्रकृति चित्रवत जड़ नहीं, चित् सत्ता है। प्रकृति काश्मीर के किसी कोने में बैठकर अपने रूप को सँवारती है, पलपल अपना परिधान बदलती है, अपनी छबि को क्षण-क्षण पर निर्मल जलाशयों के दर्पण में झुक-झुककर निहारा करती है और स्वयं ही तन-मन से अपने रूप पर संमोहित हो उठती है:

> प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
> पलपल पलटति भेस छनिक छबि छिनछिन धारति।
> बिमल अम्बुसर मुकुरन महँ मुख बिम्ब निहारति।
> अपनी छबि पै मोहि आपु ही तन-मन वारति।*

कवि ने चिरयौवना प्रकृति में यौवन का विलास भी देखा है:

> बिहरति विविध विलासभरी जोबन के मद सनि,
> ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनिठनि,
> मधुर मंजु छबि पुंज छटा छिरकति बन कुञ्जन
> चितवति, रिझवति, हँसति डसति, मुसिक्याति, हरति मन।*

प्रकृति के इस चित्रमय रूप और चिन्मय प्राणों को पाठकजी ने

* 'काश्मीर सुखमा' (श्रीधर पाठक)

ब्रजबाणी में ही प्रतिष्ठित किया, सम्भवतः इसलिए कि प्रकृति के कोमल-कान्त कलेवर के लिए ब्रज की कोमल-कान्त पदावली ही उपयुक्त थी। परन्तु कवि प्रकृति के कोमल फूल और कली के साथ-साथ घोर घने वन-प्रान्तर, भयंकर गर्त-गह्वर, रुक्ष-शुष्क बाँस, दुर्गम दलदल और कठिन कगार को भी उतनी ही ममता से चित्रित करता है :

> अगम घोर वन बनवा जंगल झार
> गह्वर गर्त कठिनवा दुर्घट कुढार।
> भिरत जहाँ तरवरवा बिरवा बाँस,
> भरत बतास अधिकवा दीरघ साँस।
> तिम दुर्गम दलदलवा नरवा नार,
> सुठि जलपात सुथलवा विषम कगार
>
> (देहरादून)

प्रकृति के सुरूप और विरूप, कोमल और कर्कश, भोले और भयंकर—दोनों चित्रों के प्रति इस ममत्व को ब्रजबाणी के द्विवेदी-कालीन कवि पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी दिखाया है। प्रकृति उनके जैसे कविहृदयों को सदैव 'आमन्त्रण' देती रही है : जैसे शिशु को माता—

> जननी धरणी निज अंक लिये बहु कीट पतंग खेलाती जहाँ;
> ममता से भरी हरी बाँह की छाँह पसार के नींद बुलाती जहाँ;
> मृदु वाणी, मनोहर वर्ण अनेक लगाकर पंख उड़ाती जहाँ,
> उजरी कंकरीली गली में धँसी तनुधार लटी बल खोती जहाँ;

प्रकृति और मानव का यही चिरन्तन रागात्मक सम्बन्ध शुक्लजी

और उनकी कविता में मूर्तिवन्त हुआ था। प्रकृति की यह मोहिनी हिन्दी के प्रथम संकेतवादी कवि श्री मुकुटधर में भी परिलक्षित होती थी। उसके क्रिया-व्यापार में कवि को किसी विराट् की सत्ता का आभास दिखाई देता है :

> यह स्निग्ध सुखद सुरभित समीर,
> कर रही आज मुझको अधीर!

> किस नील उदधि के कूलों से, अज्ञात वन्य किन फूलों से
> इस नव प्रभात में लाती है, जाने यह क्या वार्ता गभीर!
> प्राची में अरुणोदय अनूप, है दिखा रहा निज दिव्य रूप
> लाली यह किसके अधरों की, लख जिसे मलिन नक्षत्र-हीर।
> विकसित सर में किंजल्क-जाल, शोभित उनपर नीहार-माल,
> किस सदय बन्धु की आँखों से, है टपक पड़ा यह प्रेम-नीर।

शुक्लजी के शब्दों में 'अनन्त रूपों से भरा हुआ प्रकृति का विस्तृत क्षेत्र उस 'महामानस' की कल्पनाओं का अनन्त प्रसार है।' इसी चिरन्तन भावभूमि में आगे 'छायावाद' और 'प्रकृतिगत रहस्य-वाद' की धारा बही।

'प्रकृति-पुजारी' कवि श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'पथिक' प्रकृति का आलेखन किया है। प्रबन्ध काव्य की भावभूमि काव्य में होने के कारण प्रकृति उसमें मानव-भावना के उद्दीपन का भी कार्य करती है :

> प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग-बिरंग निराला।
> रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद-माला :
> नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।
> घन पर बैठ बीच में विचरूँ यही चाहता मन है।

और अपनी सुषमा के प्रति अनुराग-आकर्षण का भी—

सुन्दर सर है, लहर मनोरथ सी उठकर मिट जाती।
तट पर है कदम्ब की विस्तृत छाया सुखद सुहाती।
लटक रहे हैं धवल सुगंधित कन्दुक से फल-फूले।
गूँज रहे हैं अलि पीकर मकरन्द मोद में भूले।

वञ्जुल, मञ्जुल सदा सुसज्जित मज्जित छदन-विसर से।
अलि-कुल आकुल बकुल मुकुल-संकुल व्याकुल नभचर से।
आसपास का पथ सुरभित है महक रही फुलवारी।
बिछी फूल की सेज बाजती वीणा है सुखकारी।

('पथिक')

प्रबन्ध-काव्यों में कवि प्रकृति का रसोद्दीपक रूप ही देख सकता है; 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास', मैथिलीशरण गुप्त के 'पञ्चवटी,' 'साकेत' आदि काव्यों में 'प्रकृति का यही रूप चित्रित हुआ है। द्विवेदीकाल के कवि ने वस्तुतः प्रकृति के प्रति वह सहज-स्वाभाविक अनुराग अर्जित कर लिया था कि जो अपनी प्रतिभा से ('पथिक' के शब्दों में) कह सकता—

पढो लहर, तट, तृण, तरु, गिरि, नभ, किरन, जलद पर प्यारी!
लिखी हुई यह मधुर कहानी विश्वविमोहनहारी।

—

: १० :

आख्यानक काव्यधारा

मैथिलीशरण गुप्त : पौराणिक गायक

द्विवेदीकाल के पौराणिक काव्यों का इस देश के प्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्मा से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में 'सरस्वती' में राजा रविवर्मा की कला प्रदर्शित हुई। 'राजा रविवर्मा के पहले किसी भारतवासी शिल्पी ने प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित नायक-नायिका वा प्रसिद्ध घटनाओं का तैल-चित्र नहीं बनाया था।' उनके प्रसिद्ध चित्रों में प्रदर्शित भाव या प्रसंग पर द्विवेदीजी अपने वृत्त के कवियों से कविताएँ लिखवाते थे। 'शकुन्तला-पत्र-लेखन' से राजा रवि वर्मा की चित्रमाला आरंभ हुई और 'सीताजी की अग्निपरीक्षा,' 'गंगावतरण,' 'शकुन्तला-जन्म,' 'कृष्ण-विरहिणी राधा,' 'स्वर्णमृग,' 'मोहिनी,' 'प्राणघातक माला,' 'रम्भा,' 'दमयन्ती और हंस,' 'कुमुदसुन्दरी,' 'महाश्वेता,' 'कादम्बरी,' 'इन्दिरा'. 'वसन्तसेना,' 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा,' 'मालती', 'सुकेशी,' 'अर्जुन और उर्वशी,' 'द्रौपदी-हरण,' 'कुंती और कर्ण', 'सीता का धरणी-प्रवेश' जैसी राशि-राशि मुक्तायें गूँथती हुई जन-मन को रिझाती रही। द्विवेदीजी, राजा कमलानन्दसिंह, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण,' नाथूराम शंकर शर्मा तथा मैथिलीशरण गुप्त ने इन चित्रों पर कविताएँ लिखीं परन्तु इस प्रकार की सेवा का सबसे अधिक श्रेय मिला श्रीमैथिलीशरण-गुप्त को। उनकी 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा,' 'शकुन्तला-पत्र-

लेखन,' 'कुन्ती और कर्ण,' 'शकुन्तला को कण्व का आशीर्वाद,' 'केशों की कथा' जैसी कविताएं चित्रों पर ही लिखी हुई हैं और इनमें से कुछ तो निस्सन्देह उनके पौराणिक काव्यों की आधार-शिलाएँ ही हैं। 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा' चित्र पर मैथिलीशरणजी ने

> हे विज्ञ दर्शक देखिए है दृश्य क्या अद्भुत अहा,
> यह वीर करुणा-सम्मिलन कैसा विलक्षण हो रहा।

लिखते हुए पाठकों को आश्वासन दिया था :

> अभिमन्यु का यह चरित अनुकरणीय प्रायः है सभी
> जो हो सका तो युद्ध भी इसका सुनाऊँगा कभी।

'जयद्रथ-वध' की रचना की वह भूमिका थी। दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला का पत्र 'शकुन्तला' कृति में ज्यों का त्यों सुरक्षित है। चित्र पर ही लिखी हुई गुप्तजी की 'केशों की कथा' रचना पर मुग्ध होकर एक सहृदय महानुभाव ने 'सरस्वती' में लिखा था : 'यह कविता बेहद कारुणिक है। आजतक गुप्त महाशय की जितनी कविताएँ 'सरस्वती' में निकली हैं यह कविता उन सबसे बढ़कर है। गुप्तजी चाहे जितना प्रयत्न करें अब इससे अच्छी कविता उनकी लेखनी से निकलने की नहीं।' और इसपर सम्पादकजी ने लिखा था—लाला × जी से हमारी प्रार्थना है कि गुप्तजी को वे आशीर्वाद दें, जिसके बल से गुप्तजी 'केशों की कथा' से भी उत्तमतर कविता आगे लिख सकें।' इससे दो तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—(१) गुप्तजी की ऐसी रचनाओं की लोक-प्रियता और (२) द्विवेदीजी का प्रोत्साहन का ढंग। द्विवेदीजी का आशीर्वाद भविष्य में गुप्तजी की 'जयद्रथवध'

ऐसी रचना में ही नहीं, 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर' आदि के रूप में भी प्रतिफलित होकर रहा। राजा रविवर्मा के चित्रों पर द्विवेदीजी के आग्रह-अनुग्रह या आदेशानुरोध से मैथिलीबाबू ने जो लम्बी कविताएँ लिखीं, उनमें से कौन किस रूप में किस काव्य में परिणत और पल्लवित हुई, यह तो स्वयं कवि ही बता सकता है, परन्तु गुप्तजी के पौराणिक प्रासादों का शिलान्यास इन्हीं में हुआ था। गुप्तजी की वृत्ति पहले से ही पुराण की ओर थी, यह कहने के साथ यह कहना भी असत्य न होगा कि वे राजा रविवर्मा के चित्रों और महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'प्रसाद' और प्रोत्साहन से इस दिशा में आये, अन्यथा जिस कवि ने अपनी दिशा का संकेत।

हुए हिमाच्छादित सूर्य मण्डल; समीर सीरी बहती अखण्डल।
प्रियंगु के पेड़ प्रफुल्ल हो चले; हरे-हरे अंकुर खेत में भले॥

(हेमन्त)

लिखकर दिया था, वह प्रकृति का एक यथातथ्यवादी चित्रकार हुआ होता। गुप्तजी के निर्माण की इन शक्तियों को हमें पहचानना चाहिए। गुप्तजी की लेखनी से जिन पौराणिक आख्यानों की सृष्टि, अब तक, हुई वे तीन कोटियों में आते हैं—

(क) रामायणीय ('पञ्चवटी', 'साकेत')

(ख) महाभारतीय ('जयद्रथ-वध', 'वनवैभव,' 'बकसंहार,' 'सैरन्ध्री,' 'द्वापर,' 'नहुष')

(ग) पौराणिक ('शकुन्तला' 'शक्ति')

गुप्तजी के काव्य के इस 'कलश' को जान कर ही हम गुप्तजी को जान सकते हैं।

गुप्तजी के 'साकेत' की कथा भी ऐसी है। कवि रविठाकुर ने विज्ञसमाज को पहली बार "काव्यों की उपेक्षिताएं" दिखलाईं। वाल्मीकि तथा भवभूति की ऊर्मिला, कालिदास की प्रियम्वदा और अनसूया और बाण की पत्रलेखा के प्रति की गई उपेक्षा पर उनका हृदय व्यथित हुआ था। उसी प्रेरणा से श्री 'भुजगभूषण भट्टाचार्य'§ ने भी 'सरस्वती' द्वारा "कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता" की ओर इंगित किया था : "क्रौंच पक्षी के जोडे में से एक पक्षी को निषाद द्वारा वध किया गया देख जिस कवि-शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया और जिसके मुख से "मा निषाद" इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी, वही परदुःखकातर मुनि, रामायण निर्माण करते समय, एक नवपरिणीता दुःखिनी वधू को बिल्कुल भूल गया। विपतिविधुरा होने पर भी उसके साथ अल्पादल्पतरा समवेदना तक उसने न प्रकट की। तुलसीदास ने भी चलते वक्त लक्ष्मण को ऊर्मिला से नहीं मिलने दिया--माता से मिलने के बाद झट कह दिया—'गये लषण जहँ जानकिनाथा'। × भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है। राम, लक्ष्मण और जानकी के वन से

'साकेत' लौट आने पर भवभूति को बेचारी ऊर्मिला एक बार याद आगई है। चित्रफलक पर ऊर्मिला को देखकर सीता ने लक्ष्मण से पूछा : इयमप्यपराका ?—लक्ष्मण, यह कौन है ? × खेद की बात है कि ऊर्मिला का उज्ज्वल चरितचित्र कवियों के द्वारा भी आजतक इसी तरह ढकता आया।" गुप्तजी ने आचार्य की इस प्रेरणा से ऊर्मिला को अपना गेय बनाया 'साकेत' में। ऊर्मिलादेवी को चार सर्ग गुप्तजी ने उन्हीं दिनों

§ श्री द्विवेदीजी का छद्मनाम।

अर्पित कर दिये थे, परन्तु सम्पूर्ण चित्र सन् १६३१ में उद्घाटित हुआ। 'साकेत' की ऊर्मिला ने ही आगे जाकर यशोधरा को जन्म

'यशोधरा'

दिया है। वर्षों बीत जाने पर भी प्रभाव इसमें ऊर्मिला का और अतः द्विवेदीकाल का ही है।

'ऊर्मिला विषयक उदासीनता' की यह कथा हिन्दी में ऊर्मिला से संबद्ध अन्य काव्यों के रूप में भी प्रतिफलित हुई। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध' ने 'उर्मिला' प्रबन्ध और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'विस्मृता उर्मिला' काव्यों का प्रणयन किया जो सम्भवतः पूर्ण नहीं हुआ।

'हरिऔध' जी ने उन्हीं दिनों एक गौरव-ग्रन्थ हिन्दी को दिया 'प्रियप्रवास'। भागवत में कृष्णचरित्र एक मधुर रस-कलश है और कृष्णचरित्र में उनकी बाललीलाएँ और उद्धवसन्देश

'प्रिय प्रवास'

विशेष रमणीय हैं। बाल-जीवन को सूर अपने शत-सहस्र गीतों में गा चुके थे। दूसरे प्रसंग पर भी सूर, नन्ददास, रघुराजसिंह आदि कवियों ने 'भँवर (भ्रमर)गीत' लिखे थे। हरिऔधजी की दृष्टि राधा की ओर विशेष रूप से गई। प्रिय (कृष्ण) के प्रवास में प्रेमिका राधा, माता यशोदा आदि की करुण दशाओं का चित्र तो 'प्रियप्रवास' में है ही; अन्त में भ्रमरगीतप्रसंग के लोभ को भी कवि नहीं छोड़ सका है और गोपियों का विरह भी उसने चित्रित कर दिया है। उर्मिला की बड़ी बहन वैदेही पर वाल्मीकि और तुलसी की लेखनी की विरसता को धोने के लिए के 'हरिऔध' जी ने 'वैदेही वनवास' की रचना की है। पौराणिक कथाओं की ओर बढ़नेवाली एक और लेखनी थी श्री रूपनारायण पांडेय की जिसने शिबि, 'रन्तिदेव, दानी दधीचि आदि प्राचीन त्यागवीरों की चित्र-रेखाएँ खींचीं।

: ११ :

धार्मिक-सामाजिक कविताधारा

भारतेन्दु-काल की हिन्दी कविता में जब तब भारतीय समाज का क्षीण निश्वास-प्रश्वास सुनाई देता रहा है। श्रीधर पाठक की कविता में समाज की चिन्ता का स्वर प्रखर है। सम्वत ५६ का अकाल भारतीय जीवन की एक घटना थी। कवि के 'घन विनय' का आधार 'दुर्भिक्ष'-पीड़ितों का आर्तनाद है—

दिन दिन दीन दुखित जन दुख दारुन दुगुनात।
द्रुत दुरभिच्छ कुलच्छन छिन छिन अति अधिकात।
\+ \+ \+
द्वैपद चौपद बहुपद खेचर कुचर, मनूख।
दवे अकाल काल रद सहि रहे दारुन भूख।

समाज के अधः पतन का कारण उसकी कुरीतियाँ हैं। इसलिए जागरूक कवि की भाँति वे देशवासियों को ही कुमति-पथ से हटने के लिए प्रेरित करते हैं :

निज देशदशा किन लेचहु सब मिलभाई
किहि रीति कुमति पथ मिटै सकल दुखदाई

बालविधवाओं के प्रति कवि के अन्तस् की करुणा सदैव प्रवाहित थी—

दुखी बाल विधवाओं की जो है गती—
कौन सके बतला किसकी इतनी मती।

धार्मिक-सामाजिक कवियों में सबला लेखनी 'कविता-कामिनी-कान्त' श्री नाथूराम शंकर शर्मा की थी। द्विवेदी-वृत्त से बाहर यह कवि आर्यसमाज के विचारों को कविता में अवतरित कर रहा था। इसकी प्रथम कृति 'शंकर-सरोज' का द्विवेदीजी ने अच्छा अभिनन्दन किया था : 'आजकल प्रतिभा का प्रायः अभाव हो रहा है। इसीसे अच्छी कविता देखने में बहुत कम आती है, परन्तु इस पुस्तक की कविता बहुत अच्छी है।' इसका विषय द्विवेदीजी के मनोनुकूल न था, क्योंकि उनके मत से 'आर्यसमाज की कविता अक्सर अच्छी नहीं होती।' इसकी 'कविता सरस सरल, सार्थ और श्रुतिसुखद है।'

खड़ीबोली मे ब्रजवाणी का सा शब्द-विन्यास और भाव-विधान करने में 'शंकर' जी प्रवीण थे। भाषा और भावों में नवीन युग के होकर भी शैली में वे प्राचीन परिपाटी के ही पोषक थे। 'सरस्वती' में प्रकाशित राजा रविवर्मा के 'वसन्तसेना' चित्र की मोहिनी से मोहित होकर उनका कवि-कौशल प्रस्फुटित हो उठा था :

> कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है कि
> श्यामघन मण्डल में दामिनी की धारा है।
> यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि
> राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है।
> 'शंकर' कसौटी पर कञ्चन की लीक है कि
> तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
> काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि
> ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है।

परन्तु मूलतः वे एक सुधारक कवि थे। समाज-सुधार के विचार

कवि की भावना को सदैव अनुप्राणित करते थे। आर्यसमाजी विचारों से अभिभूत होकर सनातनी मूर्ति-पूजा पर कठोर व्यंग्य भी 'शंकर' जी ने किया है। स्वयम् शंकर होकर भी वे सनातनी शङ्कर का उपहास करने से नहीं चूके :

शैल विशाल महीतल फोड़ बढे तिनको तुम तोड़ कढ़े हो।
लै लुढ़की जलाधर धड़ाधड़ ने घर गोल मटोल गढ़े हो।
प्राणविहीन कलेवर धारि विराज रहे न लिखे न पढे हो।
हे जड़देव शिलासुत शंकर भारत पै करि कोप चढे हो।

घोर अविद्या में सोते हुए हिन्दू समाज को उन्होंने व्यंग्य के कशाघात से जगाना चाहा है :

महीनों पड़े देव सोते रहे : महीदेव डूबे डु बोवे रहें।

तो कभी वृद्ध-विवाह को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है :

बड़ी चाव से व्याह बूढ़े करो। नुकीले कुलों की कुमारी वरो।

उनका 'अविद्यानन्द का व्याख्यान' समाज की अनेक कुरीतियों का प्रत्याख्यान है। वह रुग्ण समाज पर लिखा हुआ एक सशक्त व्यंग्यकाव्य (Satire) है। छुआछूत और मद्यमांसभक्षण, शोषण और पीड़न, भ्रूणहत्या और दुराचार, आलस्य और विलासिता, ऋण और घूंस, कन्या-विक्रय और बालवृद्ध-विवाह, फूट और विदेशी सभ्यता—नैतिक-सामाजिक जीवन के किस रोग पर उनकी दृष्टि नहीं गई ? 'शंकर' जी कविता को 'समाज सुधार' का साधन मानकर चले और उनकी कवितायें खरी व्यंग्योक्तियाँ बन गईं ! अंग्रेजी पढ़े-लिखे 'जेंटिलमैनों' पर उनका व्यंग्य हुआ—

ईश गिरिजा को छोड़ यीशु गिरिजा में जाय
'शंकर' सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।

बूट कोट पतलून कम्फर्टर टोपी डाट,
जाकट की पाकट में वाच लटकावेंगे।
घूमेंगे घमंडी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरंडी मांट होटल में खावेंगे।
फारसी की छार सी उड़ाय अँगरेजी पढ़
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।

समाज के अनाचार और पापाचार से, दम्भ और पाखंड से कवि अत्यन्त क्षुब्ध और व्यथित होता था। उसका सारा आक्रोश कविता में आकर उतरता था। 'गर्भरण्डा रहस्य' में गर्भ में ही विधवा हो जानेवाली बालिका की कथा है। सनातनधर्म के मंदिरों में जो विलास लीलाएं होती हैं उन्हें नग्न और बीभत्स रूप में इनकी लेखनी ने अंकित किया। अपनी परिहास की पिचकारी कभी वह कृष्ण पर छोड़ता है :

फरिया चीर फाड़ कुबरी को पहिनालो पचरंगी गौन।
अबलक लेडी लाल तिहारी वहिये और बनैगी कौन ?

और कभी गर्मी बिताने के लिए पहाड़ों पर जानेवाले गोरे अफसरों पर :

गोरे गोरे भोगविलासी। बहुधा बने हिमाचलवासी।
कातिक तक न यहाँ आवेंगे। वहीं पड़े पूजा पावेंगे।

आर्यसमाजी होने के कारण कवि अपनी साम्प्रदायिक तीव्रता में सनातनी पण्डों के प्रति उग्र हो गया है—

जाति पाँति के धर्म-जाल में उलझे पड़े गँवार,
मैं इन सबको सुलझा दूँगा करके एकाकार,

ठेके पर लेकर वैतरणी देकर दाढ़ी मूँछ
वाटर बाइसिकल के द्वारा बिना गाय की पूँछ,
मरों को पार उतारूँगा। किसी से कभी न हारूँगा।
('अनुरागरत्न')

कटूक्तियों में शंकरजी खड़ीबोली के कबीर थे; परन्तु कटूक्तियों, व्यंग्योक्तियों, उपहासों और परिहासों के इस शैवाल-जाल के नीचे 'शंकर' के मानस में समाज-कल्याण की यह पयस्विनी ही प्रवाहित थी :

(धार्मिक) द्विज वेद पढ़ैं, सुविचार बढ़ैं, बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहैं, ऋजु पन्थ गहैं, परिवार कहैं वसुधाभर को।
ध्रुवधर्म धरैं, परदुःख हरैं, तनत्याग तरैं भवसागर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को।

\+ \+

(सामाजिक) विदुषी उपजैं, छमता न तजैं, व्रत धार भजैं सुकृता वर को।
सधवा सुधरैं, विधवा उबरैं, सकलंक करैं न किसी घर को।
दुहिता न बिकै, कुटनी न टिकै, कुलबोर छिकै तरसै दर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, करदे कविता कवि शंकर को।

समाज की भावभूमि पर विचरण करनेवाले ऐसे ही सिद्ध कवि थे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'। तुलसी और सूर की भाँति पूर्ण जी 'आत्महिताय' नहीं, 'बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय' 'ईश्वर-प्रार्थना' करते हैं :

हे करुना-जलधि करतार !
है यही विनती हमारी नाथ बारम्बार।
यह समय अति पोच आयो सोच छायो भार;

देहु ताते पुरुष उत्तम गुनन के आधार ;
देस-प्रेमी, सत्य-नेमी, धीर, वीर, उदार,
तेजसी, बुध, साहसी, वर जसी विद्यागार।

'वसुधैवकुटुम्बकम्' को वे जीवन का सर्वोच्च मंत्र मानते हैं :

लोक-प्रिय, निस्पृह, सुहृद सम समुझि सब संसार,
करहि निज-पर काज मे जो तुल्य ही व्यवहार।

'पूर्ण' जी की सभी छोटी-बड़ी रचनाओं में समाज-हित की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित है। 'शंकर' जी संस्कारों में आर्य-समाजी थे, तो 'पूर्ण' जी सनातनधर्मी। आर्यसमाजी प्रतिपक्षी को वे उसी प्रकार ललकारते थे जैसे 'शंकर' जी सनातनियों को। उन 'सत्य के खोजनेवालों को' इन्होंने एक 'चेतावनी' दी है—

धातु शिला को अशुच बताया,
स्याही कागज पर मन भाया।
चित्र बनाय, प्रेम बढाय कमरे मै लटकावैं।
भाई भोले-भाले तुम्हें बहकावैं, भूलें भुलावैं और को !

दयानन्द के अनुगामियों को इन्होंने आदेश दिया है—

'दया' युक्त 'आनन्द' सहित धीरता दिखाओ।

'शंकर' जी धर्मध्वजियों पर व्यंग्य कसने में कबीर थे, तो 'पूर्ण' जी राम-रहीम की एकता का सन्देश देने में :

बंदे हो सब एक के नही बहस दरकार,
है सब कौमों का वही खालिक औ करतार।
ख़ालिक औ करतार वही मालिक परमेश्वर,
है ज़बान का भेद नहीं मानी में अन्तर।

हो उसके बर अक्स करौ मत चर्चे गन्दे।

कहकर 'राम' 'रहीम' मेल रक्खो सब बन्दे।

भारतीय समाज की सभी दुर्बलताओं की ओर इन्होंने अँगुली उठाई है और एकता, सहयोग, 'स्वदेशी' को सबलता की ओर संकेत किया है, उद्बोधन दिया है। 'स्वदेशी-कुण्डल' में 'स्वदेशी आन्दोलन' की पूर्ण प्रतिध्वनि है; स्वदेशी भावना पर वह उस काल का सर्वोत्तम पद्य-प्रबन्ध है। गोरक्षा, कृषि, वाणिज्य, चर्खा, कला कौशल, गृहोद्योग और ग्रामोद्योग के द्वारा पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता का अन्देश उसमें है। 'पूर्ण'जी समाज-जागरण के गायक हैं।

स्त्री-समाज

समाज के इस पक्ष को उन्होंने विस्मृत नहीं किया है। देश की देवियों को भी उन्होंने उद्बोधन दिया है :

पढती थी वेद तक जहाँ महिला सदैव ही,

नारी-समूह है वहीं अज्ञान हमारा।

'ठहरौनी' और 'दहेज' का प्रत्याख्यान करके उन्होंने जाति को जगाया है; दुर्भिक्ष पर 'कर्त्तव्य-पञ्चदशी' ध्वनित की है। पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आरम्भ में समाज के ही कवि थे। वे समाज के यथातथ्यवादी चित्रकार हैं। अपनी सामाजिक कविताओं में 'सनेही' 'शंकर' जी के साथ हैं, परन्तु उनके थक जाने पर भी ये आगे बढ़ते रहे। सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रथाओं पर 'सनेही' जी वर्षों तक अश्रुपात करते रहे और अपनी अनूठी अर्थ-व्यञ्जना और काव्य-कुशलता दिखाते रहे। जब बॉस आग

लगाते हैं तो अपना ही नाश पहले करते हैं—'दहेज की कुप्रथा' ऐसी ही वंश (बाँस) में लगी हुई आग है, जिसमें हम हाथ ताप कर 'होली' मना रहे हैं :

यह दहेज की आग सुवशों ने दहकाई।
प्रलय-वह्निसी वही आज चारों दिशि छाई।
घर उजाड़ बन बना रही कर रही सफाई।
ताप रहे हम मुदित समझते होली आई।

किसान

भारतीय समाज के दलित-पीड़ित अग दीन किसान को 'सनेही' जी ने अपने प्राणों के रक्ताश्रुओं से अभिषिक्त किया है। "कृषक-क्रन्दन" में एक तीव्र आर्त्तनाद है :

नहीं मिलती है पेट भर हम को रोटी।
न जुड़ता है कपड़ा सिवा एक लँगोटी।
बनी झोपड़ी माँद से भी है छोटी।
कहें और क्या आज किस्मत है खोटी।
नहीं ऐसा दुख जो उठाया न हमने!
कहीं किन्तु दुखड़ा सुनाया न हमने।

ऐसा ही एक दूसरा करुणार्द्र चित्र है। 'दीन की आह' उसमें मुखर है :

खून से है रँगे जिन्होंने हाथ
हैं कलेजे पकड़ पकड़ मसले।
आज वे हाय से गरीबों की
कह रहे हैं कि हाय हाय जले।

(दीन की आह)

उनकी दरिद्रता मूर्तिमती देखनी हो तो कवि का आग्रह है :

हो न अगर विश्वास आप गाँवों में जाये;
देखे यदि दुर्दशा कलेजा थामे आये।
आती हैं नित नई सिरों पर हाय! बलायें;
बच्चे दाबे हुए बगल में भूखी मायें।
भग्न हृदय हैं, नग्न सा खेत निराने में लगीं।
साग पात जो कुछ मिला उसके खाने में लगीं।

('दुखिया किसान')

'सनेही' जी की कविताएँ विधवाओं, कृषकों, भिखारियों अनाथों, पीड़ितों की करुण कथाओं से सिसक रही हैं। उनकी इन कथाओं को क्या कोई सुनेगा?

उनको यह मौनता नहीं क्या कम कहती है,
चित्त वृत्ति भी कहीं छिपाये छिप रहती है।
माना, घर घर नहीं अश्रु धारा बहती है:
करुणा स्रोतस्विनी लाज भांवर गहती है।

(मौन भाषा: 'सनेही')

सनेहीजी 'कृषक-क्रन्दन' के कवि हैं। 'कृषक-जीवन' के अश्रु-तरल जीवन से उनकी कविताएँ सिक्त हैं। द्विवेदी-काल के अन्य कवि—रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गिरिधरशर्मा भी 'कृषक' के प्रति अपनी कविता की भावाञ्जलि भेंट करते हैं। काल के प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरणगुप्त ने भी 'कृषककथा' कही है। उनका 'किसान' कल्पना की भूमि पर एक कथाकाव्य है जिसमें किसान-जीवन पर उनकी यथातथ्यवादी दृष्टि स्पष्ट है।

ग्राम

ग्राम-जीवन पर भी इस काल के कवि की दृष्टि गई है। उसके कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों को कवि की अन्तर्भेदी दृष्टि ने देखा है। कवि, वस्तुतः, इस युग में आते-आते समाज की दुर्बलताओं को पहचानकर उनके प्रति करुणार्द्र अथवा दयालु हो उठा है। और उनके कारणरूप शोषक-पीड़क शक्तियों के प्रति उग्र और आक्रामक। ग्राम अपने आप में एक सांस्कृतिक-निधि हैं। चिर गाँव (चिरग्राम) वासी मैथिलीशरण अपने हृदय की प्रतिकृति गाँव में पाते हैं :

एक दूसरे की ममता है,
सबमें प्रेममयी समता है।
यद्यपि वे काले हैं मन से,
पर अति ही उज्ज्वल हैं तन से।

लोचनप्रसाद पांडेय के 'ग्राम' मानों स्वर्ग के प्रतिरूप हैं :

कपट, कलह, ईर्ष्या, पाप-पाखण्ड मुक्त—
व्यसन-विषय से हो सर्वथा ही विमुक्त,
सदन शुचि सुधा के, शान्ति सारल्य धाम-
नित चित किसके ये मोहते हैं न ग्राम ?

और गोपालशरणसिंह के 'ग्राम' आदि सभ्यता के प्रतीक :

'मानवता का प्रेम निकेतन; आदि सभ्यता का इतिहास;
भ्रातृप्रेम, समता क्षमता का, तू है अवनी में अधिवास।

समाज के अन्य शक्तिपुंज

विद्यार्थी, तरुण आदि समाज की आशाओं की ओर कवि की आतुर आँखें सदैव लगी हुई हैं। मैकाले महाराज की रचना फूल-

फल रही थी और जो भारतीय विद्यार्थी सात-समुद्र-पार विद्याध्ययन करने जाते थे उनसे अनेक आशाएँ भारतमाता को थीं :

प्यारी भारतभूमि चित्त में आशा धारे,
तुम लोगों पर दृष्टि सदा रखती है प्यारे।
है बस छात्रो, हाथ तुम्हारे ही गति उसकी।
अवलंबित है तथा तुम्ही पर उन्नति उसकी।

('मातृभूमि की आशाः' गोपालशरणसिंह)

श्रीधर पाठक के शब्दों में वे भारत की लाज के जहाज के कर्णधार हैं :

सुघर सुपूत सुमाता के लाड़िले लाल तुम।
भारत लाज-जहाज सुदृढ़ सुठि कर्णधार तुम।

इसीलिए एक कवि ने उनमें असीम शक्ति का स्रोत देखा है :

विद्यार्थी मजदूर कृषक ही सच्चा राष्ट्र बनाते हैं।
उनके बिना रावराजा गण कहीं न कुछ कर पाते हैं।
कृषको उठो, छात्रगण जागो, मजदूरो रोना छोड़ो
अपना सच्चा रूप देख लो गली-गली रोना छोड़ो।

('छोटों का काम'; विश्वनाथसिंह)

मैथिलीशरण गुप्त भारत के सांस्कृतिक कवि हैं, अतः एक साथ ही नैतिक, सामाजिक और धार्मिक कवि हैं। सामाजिक कवि के नाते उन्होंने 'भारतभारती' में अपना सब देय दिया है। भारतीय समाज के 'कल' और 'आज' को उन्होंने गौरव और क्षोभ के साथ स्मरण किया है। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग की चित्ररेखा खींचकर एक वृहद् चित्रपट प्रस्तुत किया है—'भारतभारती'।

उसमें भारत की दरिद्रता, दुर्भिक्ष, गोवध, व्यापार, कला-कौशल, शिक्षा, साहित्य के साथ-साथ समाज की सब कुरीतियों पर व्यंग्य हैं। वह हमारी सामाजिक दुर्बलता की दैनन्दिनी है। एक चित्र-रेखा देखिए—

स्वाधीनता निज धर्म-बन्धन तोड़ देने में रही।
आस्वाद आमिष मे, सुरा मे सरसता जाती कही।
संगीत विषयालाप में, परदुःख में परिहास है।
अश्लील वर्णनमात्र में ही अब कवित्व-निवास है।

'भारतभारती' का 'अतीत खण्ड' परोक्षरूप से और 'वर्तमान खण्ड' प्रत्यक्ष रूप से समाज की दुर्बलताओं की ओर इंगित करता है, 'भविष्य खंड' आदर्श की ओर। वस्तुतः 'भारतभारती' भारतीय समाज की त्रिकालदर्शिनी आरसी है। समाज का कोई अंग ऐसा नहीं बचा, जिसपर उसमें कवि की दृष्टि न पड़ी हो। 'भारती' का 'वर्तमान खण्ड' भारत के सामाजिक जीवन का चित्र है। नीति और धर्म, वर्ण और जाति, साहित्य और कला, विद्या और शिक्षा सब अंग-प्रत्यंग कवि के दृष्टि-पथ में आये हैं। उनकी आलोचना भी कवि की वक्र-व्यञ्जना द्वारा कहीं-कहीं बड़ी सरस हो गई है

(१) कवि-कर्म कामुकता बढ़ाना रहगया देखो जहाँ,
वह वीर रस भी स्मर-समर मे हो गया परिणत यहाँ,
(२) वे चीरहरणादिक वहाँ अत्यन्त लीला-जाल हैं,
भक्तस्त्रियाँ हैं गोपियाँ, गोस्वामि हो गोपाल हैं!!!
(३) निज अर्थ-साधन में हमारी रह गई अब भक्ति है,
है कर्म बस दासत्व में, अब स्वर्ण में ही शक्ति है।

परन्तु धीरे-धीरे द्विवेदीकालीन कवि की दृष्टि समाज से राष्ट्र की इकाई पर गई है और राष्ट्रीय भावना के उन्मेष से कविता

में नया ओज, नयी आभा, नया बल, नया जीवन, और नई शक्ति आगई है।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध) भी अपने अन्तस् में समाज-सुधारक हैं। अपने चौतुकों और चौपदों में वे करुणा के आवरण में समाज-कल्याण की स्रोतस्विनी प्रवाहित करते रहे है। इनमें उपदेशों के ताने में समाज-हित का बाना बुना गया है। 'चुभते चौपदों' की कटूक्तियों में भी 'हरिऔध' कभी उग्र नहीं हुए। वे 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियं' के समर्थक हैं। जीवन की कल्याणी शक्ति नारी के प्रति 'हरिऔध' जी सदैव श्रद्धालु रहे हैं। 'प्रियप्रवास' के विरही कृष्ण और विरहिणी राधा समाज-सेवी और लोक-संग्रही नायक-नायिका हैं, भगवान् के अंश नहीं! कथा के माध्यम से 'हरिऔध' जी ने समाज-सेवा का उदात्त अमृत पाठकों को वितरित किया है। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त भी अपने प्रबन्ध-काव्यों में समाज-सेवा के अनेक क्षेत्रों की ओर इंगित करते रहे हैं। द्विवेदी-वृत्त का कवि प्रधानतया समाजजीवी है और उसकी कविता समाजस्पर्शी हो गई है। जीवन का पूर्ण स्पर्श सबसे अधिक द्विवेदी-काल की कविता में ही हमें दिखाई देता है। द्विवेदी-काल के कवि का एक मात्र उपजीव्य है लोक-जीवन।

: १२ :

राष्ट्रीय कविता-धारा

भारतेन्दु-मण्डल के कवि की राष्ट्रीयता राजभक्ति की गोद में खेलती थी। उसके हृदय में जातीयता के भाव प्रखर थे। वह जातीयता आर्य्यजाति की पोषक थी। आर्य्य-गौरव, आर्य-धर्म, आर्य-वीर और आर्य मग (मार्ग) के प्रति उनकी श्रद्धा उच्छ्वसित होती थी। भारतीय 'हिन्दू' में सीमित था; हिन्दू आर्य थे–शेष सब 'यवन' :

> धिक तिन कहँ जे आर्य्य होइ जवनन को चाहैं
> धिक तिन कहँ जे इनसों कछु सम्बन्ध निबाहैं।
> छन महँ नासहि आर्य नीच जवनन कहँ करि छय।
> कहहु सबै भारत जय, भारत जय, भारत जय! ‖

उनका सबसे बड़ा देशद्रोही जयचन्द था—'फूट के फल सब भारत बोये, बैरी के राह खुलाये जयचन्दवा।'

राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया को आशीर्वाद देने के लिए वे प्रशस्तियाँ लिखते थे। १८५७ का विप्लव उनके लिए 'अमित उत्पात' था और 'राजभक्ति' परम कर्त्तव्य। वह समय ही ऐसा था कि भारतवासी अंग्रेजी सरकार से अधिकार माँगने में अपना सम्मान समझते थे। अँग्रेजी राज से उन्हें बड़ी आशाएँ थीं क्योंकि अंग्रेजी राज में उन्हें रामराज का सपना दिखाई देता था :

‖ भारतेन्दु (विजयिनी-विजय-वैजयन्ती)

उमड़ै भारत मे सुख सम्पति धन विद्या बल
धर्म सुनीति सुमति उछाह व्यापार, ज्ञान भल।
तेरे सुखद राज की कीरति रहै अटल इत ॥
धर्म्मराज, रघु,राम प्रजा हिय में जिमि अंकित। §

परन्तु कांग्रेस की स्थापना भी तो अंग्रेजी राज से विद्रोह करने के लिए नहीं हुई थी। भारतेन्दु के स्वर में स्वर मिलाते हुए जो ब्रजभाषा के कृती कवि श्रीधर पाठक एक ओर 'भारत चेतहु नींद निवारो" गाकर 'भारतोत्थान' की प्रेरणा देते हुए 'कांग्रेस बधाई' लिखते थे :

नगर-नगर सोहै प्रतिनिधि पाहुने पधारे,
ग्रेटब्रिटन गुनगाथा गौरव गावन हारे।

उन्होंने तो कांग्रेस-जन्म के भी पहले (अगस्त१८८५ में) 'हिन्द बन्दना' करते हुए 'जय देश हिंद, देशेश हिन्द !' का उद्घोष किया था। और उसी वर्ष 'भारतप्रशंसा' आदि गीतियों में हिन्दी के इस प्रथम गायक ने स्वदेश को देवता-रूप दिया, जिसके भाल पर हिमकिरीट है, कण्ठ में गंगा का हार और हरित पट है; गिरि-वर भ्रू भंग :

जय जय भारत विशाल झलकत हिम कीट भाल
बुधिवल दृग ज्वलित ज्वाल तेज पुंज धारी।
गिरिवर भ्रूभंग धारि, गंगधार कण्ठहार
सुर पुर अनुहार विश्ववाटिकाविहारी। *

देश की भौगोलिक आकृति में मानवी मूर्त्ति की स्थापना हिन्दी कविता में नवीन थी :

---

§ प्रेमघन (हार्दिक हर्षादर्श)
* पाठक ('भारत-प्रशंसा':)

अञ्चल चञ्चलित रंग, झलमल झलमलित अंग,
सुखमा तरलित तरंग, चारुहासिनी ।
मंजुल मनिबन्ध चोल, मौक्तिक लट हार लोल ।
लटकत लोलक अमोल कामशासिनी ।

('भारत-श्री': पाठक)

इसके अनन्तर कवि ने भारत को अनेक गीतियों में गेय बनाया और अपने जीवन की सन्ध्या में तो वे भारत के सबसे बड़े गायक हो गये। उनका 'भारतगीत' आज भी एक सुमधुर भारत-गीत है।

देशभक्ति की इन गीतियों के साथ राजप्रशस्तियों की धारा भी बह रही थी : स्वयं पाठकजी ही 'चिरजीवी रहो विकटोरिया रानी' नहीं मना रहे थे, एक ओर प्रेमघनजी महारानी विक्टोरिया की हीर एक जुबिली पर हार्दिक हर्ष प्रकट करते हुए मंगलाचरण गारहे थे :

ईस कृपा सों और एक जुबिली तुम आवै ।
फेरि भारती प्रजा ऐस ही मोद मनावै ।।

दूसरी ओर हरिऔधजी अपनी ब्रजबाणी में हाथ जोड़कर जगदीश से मना रहे थे-'जससों, जुगुत सों, जलूस सों, जयादिक सों जुगजुग जीओ महारानी विकटोरिया।' राजभक्ति और देशभक्ति की ये दो धाराएँ उस काल की कविता में साथ-साथ देखकर हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए, स्वयं कांग्रेस की राजनीति उस समय सौम्य थी। १६१२ तक की कांग्रेस ने लार्ड हार्डिंज (तत्कालीन वायसराय) पर बम फेंके जाने की घटना पर खेद और घृणाव्यञ्जक प्रस्ताव स्वीकृत किया था। जीवन की गति और समय के प्रताप

से राजभक्ति धीरे-धीरे राजद्रोह में परिणत हुई है और राजधर्म राष्ट्रधर्म के रूप में।

देशार्चन

देश को दिव्य रूप में देखने का प्रथम भावोन्मेष जिस प्रकार हिन्दी में श्रीधर पाठक का 'भारतश्री' गीत था, उसी प्रकार बंगभाषा में वङ्किम का 'वन्देमातरम्' गीत है। बङ्गमाता धीरे-धीरे 'भारत-माता' में पर्यवसित होगई है और 'वन्देमातरम' जातीय गीत से ऊँचा उठकर 'राष्ट्रगीत' बनगया है। 'वन्देमातरम' का प्रथम प्रतिविम्ब हिन्दी-मानस में आचार्य द्विवेदी के 'वन्देमातरम्' में (१६०६ में) पड़ा। बंगभाषा के मूर्द्धन्य कवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाया था—

अयि भुवन—मन—मोहिनी।
अयि निर्मल सूर्य करोज्वल धारिणि, जनक-जननि-जननी।
नील सिंधु जलधौत चरणतल
अनिल-विकम्पित श्यामल अञ्चल
अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल शुभ्र तुषार किरीटिनी।

सियारामशरण गुप्त की 'भारतलक्ष्मी' इसी की छाया है—

जय जनक जननी जननि, जय भुवनमानस हारिणी।
धौत तेरा चरण तल है नील-नीरधि नीर से।
जय अनिल कम्पित मनोरम श्याम अञ्चल धारिणी।
व्योमचुम्बी भाल हिमगिरि है तुषार किरीट है
जय जयति लक्ष्मी-स्वरूपा दैन्यदुःखनिवारिणी!

मैथिलीशरण गुप्त की 'मातृभूमि', रूपनारायण पाण्डेय की 'मातृ-भूमि' और रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि भारत' कविताएँ इसी देशपूजा की भावना से ओतप्रोत हैं।

श्री माधव शुक्ल राष्ट्रीय गीतों के गायकों में अन्यतम हैं। उनकी ओजस्विनी कविताओं ने देश में राष्ट्रीयता के भावों को जगाने का कार्य किया था। श्रीधर पाठक की भाँति वे भी भारत देश के राष्ट्रीय वैतालिक हैं। 'भारत-गीताञ्जलि,' 'जागृत भारत,' 'स्वराज्य-गायन' और 'राष्ट्रीय तरंग' माधव शुक्ल की राष्ट्रीय वीणा पर छिड़े हुए गीत हैं। इन गीतों की शैली उर्दू की गजलों की सी है, जिन्हें समवेत स्वर से गाया जा सकता है। कितने ही अज्ञात-नाम कवियों ने भारत और भारतीय विभूतियों पर अपनी भावाञ्जलि भेंट की; राष्ट्रीय झण्डे पर लिखा हुआ 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' गान भी ऐसे ही किसी अज्ञात किन्तु स्वनामधन्य राष्ट्रीय कवि की भेंट है।

'राष्ट्रवाद'

मातृभूमि के प्रति यह भक्ति, पूजा और अर्चना क्रिया में राष्ट्रवाद का रूप धरकर ही आसकती है, इसलिए एक काव्य-धारा राष्ट्रवाद की भी निःसृत हुई, जो जीवन में राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा देती रही। उस राष्ट्रवादी काव्यधारा का कल-कल स्वर है 'राष्ट्र के अतीत का गौरव-गान,' उद्वेलन है 'राष्ट्र के वर्तमान के प्रति क्षोभ-विक्षोभ,' प्रवाह है 'राष्ट्र की गति के साथ स्पन्दन' और गर्जन है 'राष्ट्र की मुक्ति की माग को बाधाओं को विचूर्ण करने की प्रेरणा'। इस धारा में इस काल के कवि स्वयम् बह रहे रहे हैं और जन-मन को भी बहाते रहे हैं।

अतीत का गौरवगान इस काल के कवि की वीणा का ऊँचा स्वर रहा। स्वर्गोपमा भारतभूमि के स्वर्णिम अतीत के दर्शन में 'भारतभारती' के कवि ने अपनी चिरसंचित श्रद्धा उँड़ेल दी है,

जिसका केन्द्र-बिन्दु है—भगवान की भवभूतियों का यह प्रथम

अतीत का गौरवगान

भाण्डार है।" विद्या, कला, धर्म, शौर्य शील, भक्ति, सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान के उस चरम उत्कर्ष की अनेक झाँकियाँ 'भारतभारती' में हैं—वह भारतीय गरिमा का उदात्त चलचित्र है। भारतीय सभ्यता और आर्य संस्कृति के प्रति कवि की आस्था अविचल और अजस्र रूप से उसमें समाविष्ट है। वैदिक काल से 'भारत-भारती' की चित्ररेखा चलती है और रामायण–महाभारत युगों में से होती हुई; बौद्धकाल को पार करती हुई, विक्रम को स्मरण करती हुई, उस सीमा-रेखा पर आजाती है, जिसके आगे 'यवनराजत्व' का सूत्रपात होता है। देश की हिन्दू जातीय भावना यहीं उद्बुद्ध होती है और कवि पृथ्वीराज, राणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी को तिलक-बिन्दु लगाता हुआ अन्त में ललकार उठता है :

> अन्यायियों का राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी,
> आखिर हुए अंग्रेज शासक राज्य है जिनका अभी।
>
> ('भारतभारती')

मैथिलीशरण गुप्त के अनुज सियारामशरण गुप्त भी इसी काल के मुकुल हैं। अपने 'मौर्य्य-विजय' खण्डकाव्य में प्रसिद्ध भारतीय ऐतिहासिक वीर चन्द्रगुप्त मौर्य की गाथा गाकर वे अपनी राष्ट्रीय भावना की परितुष्टि करते हैं :

> जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे।
> शौर्य्य वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे॥
> रोम-मिश्र चीनादि काँपते रहते सारे।
> यूनानी तो अभी अभी हमसे हैं हारे॥

\ सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय,
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय !

('मौर्य्य—विजय')

श्री सियारामशरण गुप्त की कवि-भावना जिस प्रकार भारतीय ऐतिहासिक वीर के प्रति प्रणत हुई उसी प्रकार 'जयशंकर प्रसाद' तथा पं० कामताप्रसाद गुरु की कवि-भावना भी महाराणा प्रताप, शिवाजी, चाँदबीबी, दुर्गावती आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों का प्रशस्ति गाने में तत्पर हुई।

लाला भगवान्दीन की राष्ट्रीय भावना भी पौराणिक और ऐतिहासिक वीरों की पूजा बनकर आई। बुन्देलखण्ड की वीरभूमि के संस्कारों में पले हुए कवि 'दीन' ने भारत के वीर पुरुषों, नारियों और बालकों के प्रति अपनी पूजा की थाली सजाई। वीरपूजा की यह बाँसुरी उर्दू-कविता का श्वास लेकर मुखरित हुई। उनका 'वीरपञ्चरत्न' (वीर प्रताप, वीर क्षत्राणी, वीर बालक, वीर माता और वीर पत्नी) इस काल का अनूठा वीर-गीत

वीर-पूजा

है। राणा प्रताप जैसे वीर पुरुष, तारा, वीरा दुर्गावती जैसी वीराङ्गनाएँ, राम,-कृष्ण-कृष्ण बलराम, लव-कुश, अभिमन्यु, आल्हा-ऊदल जैसे वीर बालक इन गीतों के गेय हैं। राम और कृष्ण चरित की रीति-धारा में बहे जाते हुए और ब्रज-वाणी में 'दीन-हितकारी धनुधारी रामचन्द्र कैधौं पाछे लागे जात आगे कंचन-कुरग है।' और 'ताही समै कारागृह माहिं देवकी के ढंग जग उजियारो धरि कारो रूप आयगो।' गाते हुए कवि को बुन्देला बाला-जैसी पत्नी ने (तुलसीदास की रत्नावली की भाँति) भारत के वीर बालकों, वीर पुरुषों, वीर पत्नियों, वीर माताओं

और वीरांगनाओं का चारण बना दिया और वह लोकभाषा (खड़ी बोली) में अपना कड़खा सुनाने लगा।

'दीन' जी के इन वीर-गीतों में अपने धर्म, अपने देश और अपनी जाति के स्वर अत्यन्त सशक्त हैं। प्राचीन भारत के वीरत्व की एक झाँकी देने के लिए कवि ने इन नाटकीय कविताओं का राग छेड़ा था। इन झाँकियों का मंच पौराणिक काल से लेकर मुसलमानी काल तक विस्तीर्ण है। कवि के हृदय में भारत के वीर-रक्त के प्रति अबाध श्रद्धा उच्छ्वसित है। उसने इन वीरों का गान इसलिए किया है कि 'वीरों का सुयश गान है अभिमान कलश का!' वीर बालकों की वीर-क्रीड़ा इसलिए गायी है कि

लड़कों ही पै निर्भर है किसी देश की सब आस,
बालक ही मिटा सकते हैं निज देश की सब त्रास,
बालक जो सुधर जायँ तो सब देश सुधर जाय।
हर एक का दिल मोद से भण्डार-सा भर जाय।

और वीरमाताओं के प्रति उनकी अर्चना इन चरणों में अपने आप बोल रही है—

भारत के लिए दीन है यह नित्य मनाता
(१) 'शत्रुघ्न से हों पुत्र सुमित्रा सी सुमाता'
(सुमित्रा)
(२) 'भारत में हो सुत भीम से, कुन्ती सी सुमाता।'
(कुन्ती)
(३) 'बभ्रु सा सुवन हो तो अलूपी सी सुमाता॥'
(अलूपी)

और क्षत्राणियों के प्रति उसके हृदय में अटूट श्रद्धा है क्योंकि

> क्षत्री का परम धर्म है रणखेल मचाना।
> रणभूमि में मरना है तुरत स्वर्ग में जाना ॥

कवि ने पौराणिक और ऐतिहासिक वीर-रक्त की ही पूजा नहीं की है, आधुनिक युग के अल्पप्रख्यात वीररक्त को भी पत्र-पुष्प भेंट किया है। रायमती कोटा, जसमा मालवा, नीलदेवी नूरपुर (पंजाब) और कमला मोहनपुर (बुलंदशहर) की भूमि-पुत्रियाँ हैं। कवि, वस्तुतः, शौर्य और वीरता का उपासक है।

'वीर पञ्चरत्न' में सर्वत्र वीर रस की धारा प्रवाहित है, रौद्र, वीर का मित्र, समय-समय पर प्रकट होकर तीव्रता बढ़ा देता है। छन्द कड़खा भी ओज गुण और वीर रसानुकूल ही है। 'वीर प्रताप' और 'वीर क्षत्राणी' में वीर दर्प का अधिक तीव्र है। कहीं इनमें युद्ध की ललकार है :

> "हाँ, वीरो। खबरदार न हिम्मत को हराना।
> तज वीर के बाने को न बन जाना ज़नाना ॥

तो कहीं युद्ध के नाटकीय चित्र हैं :

> जिस ओर लपक जाती थी सरदार की तलवार।
> मुण्डो के उधर ढेर थे, रुंडों के थे अम्बार ॥

ध्वन्यर्थव्यञ्जना के कारण इन नाटकीय दृश्यों में यथार्थता और सजीवता आगई है :

> चेतक कभी उछला, कभी कूदा, कभी दबका,
> इस ओर को दपटा कभी उस ओर को लपका।

वेशभूषा वर्णन में, तलवार-बर्छी के प्रहारों में, शत्रु के प्रति ललकारों में कवि ने विषय के अनुरूप शब्द-योजना करके वर्णन में

चित्रमयता भर दी है। अनुभावों का अंकन करने में कवि की तूलिका अपना उपमान नहीं जानती :

> फर्राते अधर दोनों हैं, भुजदण्ड फड़कते।
> उत्साह से छाती के किवाड़े हैं धड़कते।
> नथने हैं बने धौंकनी, हैं दाँत कड़कते।
> पहनी हुई चोली के हैं सब बन्द तड़कते।

'दीन' की लेखनी सरलतम लोकभाषा में इतनी प्रवाहपूर्ण और शक्तिशाली व्यञ्जना करने के कौशल की धनी है।

आल्ह खंड से लेकर आजतक के वीरगीतों (Ballads) का इतिहास जिस दिन लिखा जायगा, उस दिन 'वीर पञ्चरत्न' के वीरगीतों का मूल्यांकन होगा। वीरगीतों की प्रभावात्मकता वाद्य-विशेष के साहचर्य से सिद्ध होती है। कड़खा गानेवालों के हाथों में ये गीत पहुँचें तो इनका सच्चा उपयोग हो! छापे ने तो लोक-गीतों के मौखिक प्रचार की हत्या करदी है। लोकगीतों के प्रचार का मूल्य जाननेवाले किसी राजनेता ने कहा था--'मुझे वीर-गीतकार चाहिए फिर मैं विधान-निर्माता न चाहूँगा।' 'दीन' जी ऐसे ही वीरगीतों के गायक हैं।

हिन्दी का कवि देश के वर्तमान को देखकर सदैव विक्षुब्ध रहा है। अंग्रेजों के राज में उसे कितनी ही शान्ति मिली हो, परंतु वह अपनी जाति के अधः पतन पर सदैव भीतर ही भीतर अश्रुपात करता रहा है। यह व्यथा कभी क्रोध, कभी करुणा, कभी उद्बोधन और कभी आक्रोश बन गई है।

वर्तमान के प्रति विक्षोभ

मैथलीशरण के 'भारतभारती' काव्य में अतीत के गौरवगान और वर्तमान के प्रति क्षोभ और व्यथा दोनों का

संगम हुआ है। उसमें तीसरी धारा—भावी का स्वप्न—सरस्वती की भाँति अन्तःसलिला है। कवि उसमें त्रिकालपदर्शी है :

हम कौन थे, क्या होगये हैं और क्या होंगे अभी,

आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी!

अतीत के गौरवोज्ज्वल रूप को दिखाकर दूसरे ही क्षण वर्तमान के म्लान-मलीन रूप को दिखाने की अद्भुत प्रतिभा 'भारतभारती' के चित्रकार में है। भारतीय जीवन के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, सभी अंगों के त्रिकाल को कवि ने इसमें देखा है। कभी वर्तमान भारत का दारिद्र्य उसे उदास करता है, कभी दुर्भिक्ष उसे विकल करता है, और कभी देश के राजारईसों की विलासिता पर उसे व्यंग्यपूर्ण क्षोभ होता है :

"हो आध सेर कवाब मुझको एक सेर शराब हो,
है सल्तनत नूरेजहाँ की खूब हो कि खराब हो।"
कहना मुगल सम्राट का यह ठीक है अब भी यहाँ,
राजा-रईसों को प्रजा की है भला परवा कहाँ?

राजनीतिक जगत् में फैले हुए साम्प्रदायिक भेद की ओर भी कवि ने इंगित किया है :

क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो!

बनती नहीं क्या एक माला विविध सुमनों की कहो?

फिर भी 'भारतभारती' मे गुप्तजी को जातीय भावना ही उद्दीप्त हुई है जो राष्ट्रीय भावना बनने के पूर्व की स्थिति है। विदेशी शासन के शोषण-पीड़न का बोध इसमें नहीं है; बोध है केवल जाति की

अधोगति का, परतन्त्रता का, देश की एकता का और इस सत्य का—

'है बृटिश शासन की कृपा ही यह कि हम कुछ जग गये।'

सियारामशरण गुप्त आदि कवियों ने अपनी स्फुट रचनाओं में भारत की हीन दशा पर दृष्टिपात किया है :

सर्वत्र ही कीर्तिध्वजा उड़ती रही जिनकी सदा,
जिनके गुणों पर मुग्ध थीं सुख शांति संयुक्त सम्पदा
अब हम वही संसार में सबसे गये बीते हुए।
हैं हाय! मृतकों से बुरे अब हम यहाँ जीते हुए

राष्ट्र की गति के साथ स्पन्दन

द्विवेदीकालीन हिन्दी कविता सच्चे अर्थों में राष्ट्र की गति के साथ है। वह जिसका चित्र है उस भारतीय राष्ट्रीयता की विकासरेखा यह है— १८८५ से लेकर १९०५ ई. तक राष्ट्रीयता की प्रगति में 'सुधारों का काल' रहा। देश की सबसे बड़ी माँग उस समय तक शासन-सम्बन्धी सुधारों की थी। १८९२ के सुधारों से कांग्रेस को असन्तोष था, परन्तु भविष्य में अधिक अधिकारों की आशा थी। बीसवीं शताब्दी के आरंभ से 'स्वराज्य' का शब्द जनता के मुख पर आया है। १९०५ में उसकी माँग 'औपनिवेशिक स्वराज्य' (Dominion Status) की थी, १९१५ से १९१६ तक का काल 'स्वशासन (होमरूल) का काल' रहा जिसमें वंगभंग एक ज्वार की भाँति उठा। कभी जनता में असंतोष और आन्दोलन रहा तो कभी मिण्टो मार्ले सुधारों से आधे संतोष और आधे असंतोष की स्थिति रही। १९१५ में हिन्दू-मुसलमानों का मतैक्य हुआ और मॉण्ट फ़ोर्ड सुधारों ने उसे स्वीकृत किया। १९१८

की मौण्ट फोर्ड-रिपोर्ट निराशाजनक रही। महामना मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में स्वशासनाधिकार माँगा गया और देश की राजनीति सौम्य गति से चलती रही। इस काल की कविताओं ने स्वदेशी आन्दोलन को पूर्णतया मुखरित किया है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने "स्वदेशी-कुण्डल' शीर्षक एक लघुप्रबन्ध ही रच डाला था। द्विवेदीजी ने स्वयं इस आन्दोलन को अपनी कविता द्वारा शक्ति दी थी।—

हे देश। सप्रण विदेशज वस्तु छोडो

सम्बन्ध सर्व.उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।

बङ्ग-विच्छेद राष्ट्रयज्ञ की दूसरी ज्वाला थी। उसमें भारतराष्ट्र ने अपनी शक्ति को देखा था। इस काल में वंगभंग ने भारतीय राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित और प्रोत्तेजित किया है। बकिम बाबू के 'वन्देमातरम्' से लेकर हिन्दी के 'वन्देमातरम्' (लेखक-महावीरप्रसाद द्विवेदी) और 'आनन्द अरुणोदय') लेखक-श्री-वद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन') तक इसी आन्दोलन की प्रतिध्वनि है :

उन्नति पथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा दिखाई।

खग वन्देमातरम् मधुर ध्वनि पडने लगी सुनाई।

राष्ट्र इस समय स्वतन्त्रता के मार्ग का पथिक बन चुका था। लोकमान्य तिलक ने उसे 'स्वराज्य' (हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है) का मन्त्र दिया था और कर्मवीर गांधी उस अधिकार को प्राप्त करने की कुञ्जी 'असहयोग' और 'सत्याग्रह' लेकर भारत के राष्ट्रीय क्षितिज पर उदय होगये थे। भारतेन्दु का समय, अतीत

की बात होगया था। 'बङ्ग-भंग' और 'स्वदेशी-आन्दोलन' का रक्त अब राष्ट्र की शिराओं में दौड़ रहा था। इस काल की कविता को उसकी नाड़ी का स्पन्दन बनना एक अनिवार्य घटना होगई थी, किन्तु इस भूमि में सदैव उग्र-सौम्य भावनाएँ रीति नीति को स्वरूप देती रही हैं। द्विवेदीजी की राष्ट्रीयता भारतेन्दु की भाँति राजभक्ति का दूध पाकर पलनेवाली राष्ट्रीयता ही थी। जिस समय विद्रोही रक्तवाले किसी भारतीय ने दिल्ली में लार्ड हार्डिज पर बम चलाया था और उनके सौभाग्य से वे बाल-बाल बच गये थे तब 'सरस्वती' के सम्पादक की कलम आँसू बहा रही थी . "ईश्वर की कृपा से लाट बाल-बाल बच गये। चोट तो लगी परंतु प्राणघातक नहीं। इस दुर्घटना ने भारत की राजभक्त प्रजा के हृदयों को बेतरह विचलित कर दिया है। सभी लोग दुःख, क्रोध और घृणा से अभिभूत हो रहे हैं।"* 'सरस्वती' के कवि का इसलिए, राजविद्रोह तो दूर, उग्र राष्ट्रीयता की भावना का उन्मेष करना भी कठिन था। 'सरस्वती' ने इस काल में ऐसी उग्र भावना की कोई कविता नहीं दी। जिस काल ने हिन्दी को माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल', माखनलाल चतुर्वेदी ('एक भारतीय आत्मा') जैसे राष्ट्रधर्मी कवि दिये, उस काल की प्रमुख पत्रिका 'सरस्वती' में इस भावना की कोई प्रतिध्वनि नहीं सुनाई दी। परंतु कवियों के भाव-क्षेत्र में राष्ट्रीयता की यह पुण्यधारा बहती रही जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट होजाती थी। भारतीय राजनीति के भावी सूत्रधार मोहनदास करमचन्द गांधी ने १६०६ में अफ्रीका में अपना 'सत्याग्रह' का शंखनाद किया था, उसकी

* 'सरस्वती'-भाग १४ खंड १ : फरवरी १६१३ : सम्पादकीय टिप्पणी

प्रतिध्वनि भारत में सुनाई देने लगी थीं। सन् १३ में अफ्रीका में सत्याग्रह के विजेता उस 'निःशस्त्र सेनानी' के प्रति 'एक भारतीय आत्मा' ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी :

'देह' ?—प्रिय यहाँ कहाँ परवाह टँगे शूली पर चर्मक्षेत्र,
'गेह' ?—छोटा सा हो तो कहूँ विश्व का सारा धर्मक्षेत्र!

इन्हीं कर्मवीर गांधी ने भारतीय भूमि पर पदार्पण करते ही असहयोग-आन्दोलन और 'सत्याग्रह द्वारा राष्ट्रीय जीवन में क्रांति की थी। शस्त्र के स्थान पर उन्होंने जनता के हाथ में नैतिक अस्त्र दिया। जेल, हथकड़ी-बेड़ी का मार्ग स्वाधीनता का मार्ग हुआ। रक्त-दान लेने के बदले उन्होंने रक्तदान देने का धर्म राष्ट्रीय योद्धा के आगे प्रतिष्ठित किया। राष्ट्र की बलिवेदी को अपने मस्तक से सजा देने की दीक्षा 'सत्याग्रह' ने दी। हिन्दी के कवियों ने इसका मङ्गलाचरण और इसकी प्रशस्तियाँ अपनी वीणा पर छेड़ीं। उन कविताओं में राष्ट्र के बलि-वीरों को सत्य पर अटल रहने, पग-पग-पर आग से खेलने और हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग करने की प्रबल प्रेरणा थी। प्रत्येक राष्ट्रीय योद्धा प्रह्लाद, सुकरात, ईसा और मंसूर हो गया :

तुम होंगे सुकरात जहर के प्याले होंगे।
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे।
होंगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।
होना मत व्याकुल कहीं इस भवजनित विषाद से।
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से।

('सत्य' : 'त्रिशूल')

बलिदान की इस भावना ने सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति पाई 'एक भारतीय आत्मा' की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता में :

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ;
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ;
चाह नहीं देवों के शिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ;
मुझे तोड़ लेना वनमाली ! उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

श्रद्धा के किस पावन मुहूर्त में मानस की इस मुक्ता का जन्म हुआ था कि जब राष्ट्रभारती की माला में यह गुँथा तो इसकी अनुकृति और प्रतिकृति में असंख्य मुक्ता लाये गये, परन्तु वह अब भी इन सब मुक्ताओं में सुमेरु ही है।

कारागार ऐसे बलिपंथी के लिए कृष्णमन्दिर था, हथकड़ी माला थी, आराध्य राष्ट्रनेता के संकेत पर सुरपुर भी हेय और रौरव भी प्रेय था; पृथ्वी उसकी शैया थी, आकाश उसका आच्छादन :

कागों का सुन कर्त्तव्य, राग कोकिल-कलरव को भूल-भूल
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे, तो चल रौरव को कूल-कूल।
भूखण्ड बिछा, आकाश ओढ़, नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल, अपने जीवन-धन को निहार।

('बलि पन्थी से' : 'एकभारतीय आत्मा')

इन बलिवध के जीवों का गन्तव्य स्वतन्त्रता देवी का मंदिर था, जो त्याग और तपस्या, सेवा और साधना के शिखर के ऊपर बसा था। मरण उनके लिए श्रेय था, यह पंकिल, दासता का

जीवन नहीं। इन बलिवीरों को अनुप्राणित करने के लिए कवि के हृदय में अपार उल्लास-माला थी :

चढ़ चल, चढ चल, थक मत, रे बलिबध के सुन्दर जीव,
उच्च कठोर शिखर के ऊपर है मन्दिर की नींव
बडे-बडे ये शिलाखण्ड मग रोके पडे अचेत,
इन्हे लाँघ तू यदि जाना है तुझे मरण के हेत,
ऊपर अगम शिखर के ऊपर मचा मृत्यु का रासः
नीचे उपत्यका में जीवन–पंकिल का है त्रास!

('शिखर पर': नवीन')

विदेशी शासन के अभिशाप भारतभूमि में समाज की दीनता-दरिद्रता और शोषण पीड़न के रूप में प्रकट हो रहे थे। किसानों की दुरवस्था की ओर चम्पारन और खेड़ा के सत्याग्रहों ने जनता के कवियों का ध्यान आकर्षित किया था और किसान क्रांतिवाद की भावना पर इस काल में विपुल साहित्य रचा गया। गुप्तबन्धु (मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त) ने पद्यकथाओं द्वारा किसान के उस विकल जीवन को अंकित किया और पाठक की सहानुभूति जाग्रत की। सियारामशरणजी के हृदय में समाज की इस पीड़ित-शोषित श्रेणी के प्रति अत्यन्त आर्द्र सहानुभूति है। कृषक के दीन-दुखी जीवन की व्यथा-वेदना ग्रहण करने में उनका हृदय समसामयिक हिन्दी-कवियों में सबसे अधिक संवेदनशील है।

चम्पारन और खेड़ा ने किसानों को एक राष्ट्रीय जनशक्ति

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : 'किसान'

२. सियारामशरण गुप्त : 'अनाथ' तथा 'आर्द्रा'

के रूप में प्रस्तुत किया। हिन्दी की राष्ट्रीय कविता ने ऐसे किसान के दुर्बल और सबल दोनों रूपों को देखा है। सियारामशरण के 'अनाथ' 'आर्द्रा' और काव्य ऐसे दीन-दुखी किसानों के आँसुओं से आर्द्र हैं। 'एक फूल की चाह' इस कवि की अमर रचना है अछूत-कन्या अपनी रोग-शैय्या पर अंतिम श्वास छोड़ती है— मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर' और उधर उसका अभागा पिता कारावास में बन्द है। जब तक छूटकर बेटी के पास पहुँचता है तब तक यह छोटा-सा फूल स्वयं धूल बन गया है।

क्रांतिकारीभावना का अत्यन्त सरस उन्मेष हुआ है श्री रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' काव्यों में। त्रिपाठी जी की राष्ट्रीय भावना-धारा कल्पना की भावभूमि पर सचरित हुई है। तीनों काव्यों की वस्तु कल्पना-प्रसूत होते हुए भी वस्तु-स्थिति से सम्बद्ध है। उनका समाज, उनकी प्रजा, उनकी प्रेरणाएँ और समस्याएँ सब भारत के 'आज' से सम्बद्ध हैं। और 'आज', से सम्बद्ध होते हुए भी विगत कल से व्यतीत और आगामी कल से अतीत वे नहीं हैं—वे शाश्वत हैं। तीनों काव्य जितने सरस हैं उतने ही प्राणप्रेरक भी। गांधी-युग के चिन्ता इन काव्यों में सच्चे रूप में मुखरित हुई है।

'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' तीनों मे समाज (भारतवर्ष की भाँति ही) दुःखी और रुग्ण है, जिसके उद्धार के लिए समाज की सेवा की पुकार है। तीनों में देश की प्रजा पीड़ित अथवा परतंत्र ('मिलन') है, जन्मभूमि के लिए जीवन देने का आह्वान उनमें हैं : मिलन' में विदेशी शासन की आततायी

दासता से मुक्ति की प्रेरणा से, 'पथिक' में स्वदेशी शासन के अत्याचार और अन्याय के प्रति विद्रोह के रूप में, और 'स्वप्न' में स्वदेश पर विदेशी शत्रु के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए। तीनों में इस पुकार और आह्वान को सुननेवाले दो युवक-युवती ('मिलन' में आनन्द और विजया, 'पथिक' में पथिक और पथिक-प्रिया, और 'स्वप्न' में वसन्त और सुमना) हैं, जो प्रणयी-प्रणयिनी हैं, जिनकी धमनियों में प्रणय का उष्ण रक्त संचरित है। तीनों के नायक-नायिका के आगे प्रेम या जनसेवा ('मिलन'), समाज-विराग या समाज-सेवा ('पथिक') और ऐंद्रिय विलास या राष्ट्र-रक्षा ('स्वप्न') के समस्यामूलक संघर्ष हैं। तीनों में जनसेवा और देशभक्ति त्याग और बलिदान, कर्मयोग और कर्तव्य में ऐंद्रिय विलास, शारीरिक निरपेक्ष प्रेम अथवा समाज-वैराग्य का पर्यवसान होता है। सेवा ('मिलन') कर्म-योग ('पथिक') और राष्ट्रधर्म ('स्वप्न') इन काव्यों के उच्चतम स्वर हैं। तीनों में प्रणयी-प्रणयिनी अपने प्रणय को जन-सेवा या देश-प्रेम में पर्यवसित करते हैं। प्रेम को कवि ने प्रकृति-प्रेम, समाज-प्रेम, और देश-प्रेम में समाविष्ट होता दिखाया है। प्रेम-योगी देश-योगी बनते दिखाये गये हैं। 'मिलन' में पति-पत्नी स्वतंत्र किन्तु एक दूसरे से अज्ञात रूप में समाज-सेवा में लीन होते हैं। जनता संगठित होती है, विदेशी आततायी शासक से युद्ध होता है, नायक आहत होता है और मृत्यु के मुख से निकल आता है। सहसा नायिका के आक्रमण से शत्रु पराजित होता है और स्वदेश स्वतंत्र हो जाता है।

'पथिक' में देश-सेवक पथिक एक सत्याग्रही है, जो अयोग्य राजा की पीड़ित प्रजा की सेवा का व्रती है। सेवा पथ में वह

संकट सहता हुआ पुत्र-कलत्र को मरते देखता है और स्वयम् बलि हो जाता है। बलिदान के उपरान्त जनता अनुप्राणित होती है और असहयोग द्वारा विजयी होती है। अत्याचारी राजा को वह निर्वासित करती है और जनता का राज्य—'स्वराज्य'—स्थापित होता है।

'स्वप्न' में देश पर विदेशी आक्रमण और युद्ध का आह्वान है। नायक—नायिका के प्रेमाभिभूत होकर कर्त्तव्य से विमुख हैं, परन्तु नायिका के चुपचाप स्वतन्त्रता के युद्ध में चले जाने पर वह वियोगी और बनवासनी बन जाता है। वहाँ युवक-वेशधारी अपनी पत्नी के उद्बोधन से ही कर्त्तव्य-प्रेरित होता है। युवक के आगमन से हारते हुए देश को बल मिलता है और विजयोत्सव में देश का राजा उसे 'राजा' बना देता है।

तीनों काव्यों में नारी-धर्म अत्यन्त उच्च स्वर से बोलता है—नारी जागरूक है, वह पुरुष से अधिकार और कर्त्तव्य में न्यून नहीं है; वह उसकी सच्ची सहधर्मिणी-सहचारिणी है; वह शारीरिक आसक्ति और ऐंद्रिय विलास को जन-सेवा और राष्ट्र-धर्म की वेदी पर उत्सर्ग कर सकती है; वह युद्ध का नेतृत्व कर सकती है; और युवक ? वह तो राष्ट्र की निधि है, राष्ट्र का योद्धा और राष्ट्र का उद्धारक है।

'मिलन' में विदेशी शासन के प्रति सशस्त्र विद्रोह है किन्तु 'पथिक' में वह विद्रोह निष्क्रिय प्रतिरोध और 'असहयोग' बन गया है: 'पथिक' का पथिक सच्चा सत्याग्रही है, गांधी की भाषा में। यह युग की राष्ट्रीय भावना की प्रतिच्छाया है। 'स्वप्न' मे विदेशी आक्रमण के प्रतिरोध में अवश्य यह रणघोष सुनाई

देता है : 'चकाचौंध हो जाय तुम्हारी तलवारों की चमक देख-कर।' गांधी की अहिंसा भी विदेशी आक्रमण में शस्त्र-ग्रहण को अधर्म नहीं मानती। कवि ने भी दुहराया है :

दुरुपयोग से सद्गुण कहकर घोषित सत्य अहिंसादिक व्रत।
हो सकते हैं दुख के कारण है यह सत्य विज्ञजन सम्मत॥

कवि 'कुटिल के लिए नीति शस्त्र है' का विश्वासी है जो 'शठं प्रति शाठ्य" की अवचेतनगत प्रतिच्छाया है।

द्विवेदीकालीन राष्ट्रीय कविताएँ इस प्रकार जीवन-जाग्रति-बल-बलिदान की प्रेरक शक्ति हैं। अपनी राष्ट्रीय दुर्बलताओं के प्रति उनका प्रत्याख्यान है, किन्तु विधायक; प्रतिपक्षी के प्रति उसमें प्रत्याख्यान है किन्तु सौम्य और अहिंसक। शोषक-पीड़क शासन के प्रति उसमें उग्र आक्रोश नहीं मिल सकता। भारतीय राजनीति में गांधी के सत्याग्रह ने भी इस सौम्य राजनीति को उग्र नहीं बनने दिया। भारतीय राष्ट्र की अंग्रेजी शासन के प्रति समस्त श्रद्धा पर तीव्र आघात 'रौलट बिल' और परवर्ती दमन-कार्यों से हुआ। अमृतसर के जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड (१९१९) तक भारतीय राष्ट्रीयता का एक अध्याय समाप्त और दूसरा आरंभ हुआ। राष्ट्र की सारी ब्रिटिश-आस्था हिल उठी और देश की सौम्य राजनीति ने उग्रता धारण की। यह होते हुए भी अहिंसा के प्रभाव और प्रतिहिंसा के अभाव से इस काल की क्रांतिवादी कविताओं में उग्र आक्रोश न होकर केवल एक उदात्त उद्बोधन है। श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'त्रिशूल' 'एक भारतीय आत्मा', त्रिपाठी और 'नवीन' इस करुण और सौम्य, उज्ज्वल और उदात्त क्रांतिवाद के जागरूक गायक हैं।

: १३ :

भक्ति और 'रहस्य'

तुलसी और सूर के भक्ति के गीतों ने भगवद्भक्ति को मानव-हृदय की गंगा बना दिया था जिसमें स्नान करके जन-मन पवित्र होता था। उस गंगा की निर्मल धारा में कोई पंकिलता न थी। मीरा के गीत अपनी माधुर्य भावना के स्पर्श से उस गीत-धारा में मादकता का पुट ला देते हैं। भारतेन्दु की भक्ति प्रेम का दूसरा नाम थी। भक्ति की ये सब कवितायें प्रेम-भावना से ओत प्रोत हैं। उस प्रेम में लौकिक, ऐहिक और शारीरिक अनुरक्ति-आसक्ति के स्पष्ट संकेत हैं। उनकी भक्ति शरीरी के प्रेम का रूप लेकर आई हैं। उनके 'प्रेमाश्रु-वर्षण', प्रेम-मालिका', 'प्रेम-तरग, 'प्रेम-प्रलाप' और 'प्रेम फुलवारी' में रीतिकालीन कृष्ण भक्ति की विलासिता है। उनका प्रेम शृंगारिक है। युग-युग से निर्गुण-निराकार अथवा सगुण-साकार भगवान के प्रति गाये जाते हुए भक्त के आत्म-निवेदन में भारतेन्दु के प्रेमी हृदय ने लौकिक प्रेम का मधुर पुट दिया है। अलौकिक भक्ति और लौकिक प्रेम उसमें उसी प्रकार मिल गये हैं जैसे नवनीत में मधु। इन भक्ति की कविताओं का गेय एक मात्र आराध्य अथवा प्रेमपात्र रहा है।

भारतेन्दु जी ने उर्दू कविता के संसर्ग से हिन्दी में गज़लों की शैली में भी भक्तिपरक पद्य लिखे जिनका छंद-बंध, और शब्द-विन्यास भी उर्दू का सा ही रहा

मेरे नैनों का तारा है, मेरा गोविंद प्यारा है।
वो सूरत-उसकी भोली सी, वो सिर पगिया मटरेली सी॥
वो बोलो में ठठोली सी, कठिन दृग बान मारा है।
('वर्षविनोद')

'प्रेमघन' और प्रतापनारायण जी ने भी इसी प्रकार के भक्तिभाव-पूर्ण छंद लिखे हैं। इस परंपरा का अन्त तब हुआ जब देश में ऋषि दयानंद के प्रताप से एक नवीन रँग में रंगे हुए भक्ति के भजन लोकजीवन में प्रविष्ट हुए। आर्यसमाज का आधार एक धार्मिक सामाजिक क्रांति करना था। उसके प्रभाव से लोक हित और लोक-कल्याण कविता का गेय बना। द्विवेदी काल के कवि लोकजीवन में से कविता को ग्रहण करते थे। उनकी भक्ति आत्महिताय न होकर लोकहिताय है। 'भारत भारतीय' का लोकहितैषी कवि गाता :

इस देश को हे दीन बंधो! आप फिर अपनाइए।
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइए।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का 'भारत वाक्य' भी लोकहिताय है:

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै,
विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै।
हे हे स्वामी! प्रार्थना कान कीजै,
कीजै कीजै देश-कल्याण कीजै।

प्रसिद्ध आर्यसमाजी कवि 'शंकर' लोककल्याण के लिए ही 'ईश्वर-प्रार्थना' करते हैं—

मन-जाल जलै छलियान छलै, कुल फूल फलैं तज मत्सर को।
अघ-दम्भ दवै, न प्रपंच फवै, गुन-मान नवैं न निरक्षर को।
सुमनै जप से निरखै तप से, सुर पादप से तुझ अक्षर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को।

गोपालशरणसिंह संसार का हित करने की शक्ति की याचना करते हैं :

जो विश्व में हरि, हमें नर जन्म दीजै,
तो ज्ञानहीन हमको न कदापि कीजै।
हे जो दयामय, दयाकर आप शक्ति,
संसार का हित करें हम तो सभक्ति।
('अभ्यर्थना')

वस्तुतः इस काल की भक्ति-परक कविता देश-सेवा, देश-कल्याण और देशोद्धार के भावों से परिपूर्ण है। ईश्वर की असीम शक्ति में इस काल के कवि को अखण्ड अटूट विश्वास है:—

हरि हरि हे
हे मेरे धन्वन्तरि हे।
तेरे हाथों में है अक्षय सुरस सुधा से भरा घड़ा
और देश यह मरे पड़ा।

ऋषि दयानन्द ने मंदिर और मूर्ति का विरोध संभवत इसलिए किया था कि समाज केवल पत्थर और धातु को विधाता न मान बैठे। मूर्ति पूजा हमें अकर्मण्य, जड़ और भाग्यवादी बना देती है। इसी चिन्ता की रेखा हिंदी कविता में हम देखते हैं:—

जिन विशाल महीतल फोड़ बढ़े तिनको तुम तोड़ कढ़े हो।
जो कुटसी जलधार घटाघड़ ने कर गोल मटोल गढ़े हो।

प्राण विहीन कलेवर धारि विराज रहे न लिखे न पढ़े हो।
हे जडदेव, शिलासुत शंकर, भारत पै करि कोप चढ़े हो।
('शंकर')

आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द की चिन्ताधारा वस्तुतः अद्वैतवाद से भी प्रभावित है। वह ईश्वर को एक अक्षर-अविनाशी शक्ति मानती है। निर्गुण और निराकार की वह उपासिका है। अवतारवाद में उसकी कोई आस्था नहीं; मूर्तिपूजा को वह मानसिक जड़ता का लक्षण मानती है और तिलक-छाप को पाखण्ड। ऋषि दयानन्द की चिन्ता का आधार स्वस्थ था, परन्तु मूर्तिपूजा का यह विरोध भारतभूमि में बद्धमूल नहीं हो सकता। मूर्तिपूजा-विरोध का खण्डन स्वयं आर्यसमाजियों ने 'आर्यमंदिर' बनाकर, दयानन्द की चित्रमूर्ति स्थापित करके किया। यह आर्य समाजी कट्टरता की प्रतिक्रिया थी। कवि ने भी मूर्ति को हेय और त्याज्य न मानकर ईश्वर का आवास सिद्ध किया। वह ईश्वर
आर्यसमाज की निर्विकार और लीलामय है ('निर्विकार लीला-
प्रतिक्रिया मय! तेरी शक्ति न जानी जाती है—'प्रसाद')
वह प्रकृति के भीतर व्याप्त है, प्रकृतिरञ्जक है :

प्रभो प्रेममय प्रकाश तुम हो प्रकृति पद्मिनी के अंशुमाली
असीम उपवन के तुम हो माली धरा बराबर जातारही है
—('प्रसाद')

तब वह मंदिर में क्यों न होगा ?

जब मानते हैं व्यापी जल भूमि में अनिल में
तारा शशांक में भी आकाश में, अनल में।
फिर क्यों ये हठ है प्यारे, मन्दिर में वह नहीं है।
वह शब्द जो नहीं है, उसके लिये नहीं है॥
(प्रसाद)

प्रसाद के लिए मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, पैगोडा विश्व के ही लघुरूप हैं :

मस्जिद, पगोड़ा, गिरजा, किसको बनाया तूने ।
सब भक्त-भावना के छोटे-बडे नमूने ॥
सुन्दर वितान वैसा आकाश भी तना है ।
तेरा अनन्त मन्दिर यह विश्व ही बना है ॥
('प्रसाद,)

इसी प्रकार एक कवि ने अवतारवाद का समर्थन किया है—

जो महत्तत्व बन सबमें आप समाया ।
खुद बनकर जिसने है ब्रह्माण्ड बनाया ॥
वह धारण करके पंचतत्व बन छाया ।
खुद चित्रकार मानों सचित्र बन आया ॥
('अवतार' : बदरीनाथ भट्ट)

कवि की दार्शनिक चिन्ता वस्तुत: संक्रान्ति की स्थिति में थी । एक ओर वह रामरूप में विश्वव्यापी है —

तू ही तू है विश्व में, रामरूप गुणधाम ।
है तेरी ही सुरभि से, सुरभित यह आराम ॥
आँखें उठती हैं जिस ओर, तू ही देखा जाता है ।
('तू ही तू' : मैथिलीशरण गुप्त)

तो दूसरी ओर उसे यह साक्षात् अनुभूति भी थी:—

आँख बन्द कर देखे, कोई रहे निराले में जाकर ।
त्रिकुटी में या कुटी बनाले, समाधि में खाये गोता ॥
खडे विश्व जनता में प्यारे, हम तो तुमको पाते हैं ।
तुम ऐसे सर्वत्र सुलभ को, पाकर कौन भला खोता ?
('तुम्हारा स्मरण' 'प्रसाद')

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (अद्वैतवाद) की चिन्ता इस काल की कविता में प्रविष्ट होती दिखाई देने लगी और सगुण उपासना की गंगा निराकार उपासना की सरस्वती बनती हुई रहस्यवाद की यमुना बन निकली। अंग्रेजी के साहचर्य से आई हुई सर्वचेतनवाद की धारा ने अपना जल भी इसमें मिला दिया। प्रकृति के अणु और परमाणु, मानव और चराचर में विभु की विभुता का आभास कवि को अन्तर्नेत्रों से दिखाई देने लगा :

विमल इन्दु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं।
अनादि तेरी अनन्त माया, जगत को लीला सिखा रही है ॥

(प्रसाद)

ईश्वर की चित् शक्ति को खोजने के लिए वह व्यग्र हो उठा :

ढूँढ़ ढूँढ़ तुमको कहाँ बताते क्यों नहीं ?
पाऊँ कैसे तुम्हें सिखाते क्यों नहीं ?
× × ×
कभी लता सौंदर्य बीचि में ही मिलो,
कभी कुसुम की नई कली में ही खिलो !

(रामचन्द्र शुक्ल, बी. ए.)

उसके प्रियतम (परमेश्वर) चंद्र से अधिक ज्योतिर्मय हैं :

यद्यपि चंद्र, तुम्हारा आनन देख विलज्जित हुआ नितान्त,
छिपता-फिरता है वह देखो घने-घने वृक्षों में कान्त !

अपने अन्तर्मन्दिर के द्वार खोलकर वह उसको मनुहार करता है

खुला द्वार है, भीतर आओ मानो कहा करो न विलम्ब !

('खुला द्वार' : राय कृष्णदास)

भारतीय उपनिषदों का अद्वैतवाद प्रेम के अनेक क्रिया-व्यापारों में ढलकर हिन्दी कविता का 'रहस्यवाद' बन गया है। कवि अनन्त की ओर उन्मुख होगया है, कहीं वह अनन्त 'राम' है, कहीं 'ब्रह्म' और कहीं केवल 'नाथ', 'प्रियतम' और 'प्राण'! कवि कभी अपने आराध्य से मीरा और कबीर की भाँति माया का 'खेल' और होली खेलता है: और 'रहस्य' को नहीं सुलझा पाता:

ध्यान न था कि राह में क्या है काँटा-कंकड़ ढौंका-ढेला,
तू भागा मैं चला पकड़ने, तू मुझसे मैं तुझसे खेला ॥

× × ×

यदि तू कभी हाथ भी आया,
तो छूने पर निकली छाया,
हे भगवान्! यह कैसी माया ?

('खेल' : मैथिलीशरण गुप्त)

तो कभी वह अपने असमञ्जस और भोलेपन में संसार को भक्ति के विभिन्न मार्गों की ओर इंगित करता है—

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं
सब द्वारों पर भीड़ लगी है कैसे भीतर जाऊँ मैं ?

('स्वयमागत' : मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्त जी के प्रियतम से 'ब्रह्म' झाँकता है, क्योंकि वे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के उपासक हैं। उनके गीत निराकार सच्चिदानन्द के नैवेद्य हैं किन्तु उनमें साकार राम की भक्ति-भावना बड़ी खूबी से छलक झलक रही है। मुकुटधर पांडेय ने अद्वैत के रहस्य को पा लिया है इसलिए उन्हें अणु-परमाणु में ईश्वर दिखाई दिया—

हुआ प्रकाश तमोयम मग मे
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में,
तेरा हुआ बोध पग पग मे खुली रहस्य महान्

दम्पति के मधुमय विलास में
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में था तब क्रीड़ा स्थान।

इसीलिए मुकुटधर का हृदय के अधिक निकट है, वह प्रेमी बनकर आता है :

पाजाऊँ मैं तुमको जो फिर नाथ !
रक्खूँ उर में छिपा यत्न के साथ,
बिछा हृदय पर आसन मेरे आज !
सजे तुम्हारे स्वागत के हैं साज !
गूँथ प्रेम के फूलों की नवमाल,
रक्खा मैने पलक-पाँवड़े डाल !

('मर्दित मान')

वह शून्य में उसका नीरव अभिषेक करना चाहता है:

शून्य कक्ष में अथवा कोने ही में एक,
करूँ तुम्हारा बैठ यहाँ नीरव अभिषेक
सुनो न तुम भी वह आवाज,
नाथ, सताती मुझको लाज !

('लाज')

भक्ति और आराधना के ये गीत आगे जाकर केवल नैवेद्य ही न रहे, साधना बन गये और आत्मा-परमात्मा के अव्यक्त सम्ब-

रहस्य का अनुसन्धान-अन्वेषण अपने अंतर्जगत् के भावना-लोक में करने लगे। इन आध्यात्मिक रंग में रँगी हुई कविताओं में लौकिक प्रणय और प्रेम की मधुमती व्यञ्जना हुई; ऐसी कविताओं को ही आगे जाकर 'रहस्यवाद' कहा गया। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में 'एशिया के कविशिरोमणि' रवीन्द्रनाथ इस चिन्ताधारा के प्रवर्तक हैं। मैथिलीशरण, राय कृष्णदास, मुकुटधर पाण्डेय, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी आदि कवियों के मानस में रवीन्द्र के नूतन अध्यात्म भावना की छाया पड़ी है।

१४

प्राचीन परम्परा और नई दिशाएँ

(१) ब्रजभाषा-परम्परा

भारतेन्दु ब्रजभाषा के ही महाकवि और महागायक थे। खड़ीबोली में काव्य-रचना में वे असफल रहे। पाठकजी ने खड़ी बोली में काव्य का श्रीगणेश किया, परन्तु ब्रजवाणी का मोह वे अन्त तक न छोड़ सके। 'प्रेमघन' जी ने अपनी जीवन-सन्ध्या में जाकर खड़ी बोली को अपना लिया था ('आनन्द-अरुणोदय' कविता)। 'शंकर' और 'पूर्ण' प्रधानतया खड़ी बोली और ब्रज-बोली के कवि हैं। 'शंकर' जी की खड़ीबोली में ब्रज की मधुर छाया है :

(१) छवि ने छपाकर की छाती पै छपाई है।

(२) ऐसी नासिका की कहूँ उपमा न पाई है।

(३) ताकत ही तेज न रहैगो तेजधारिन मैं

(४) काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहि

पर 'पूर्ण' जी ने युग के आग्रह को स्वीकार करते हुए 'स्वदेश-कुण्डल' जैसी रचनाएँ ही खड़ी बोली में लिखी। इस प्रकार ये सब प्रमुख कवि द्विवेदीजी के खड़ी बोली के काल में भी ब्रज के स्वप्न-हिंडोलों पर झूलते रहते थे। ब्रज और खड़ी बोलियों का यह आकर्षण-विकर्षण इस काल के उषाकाल मे मिलता है।

—'प्रसाद'—

जब मैथिलीशरण, 'हरिऔध' आदि कवियों ने खड़ी बोली की कविता की प्रतिष्ठा करदी तब भी जो ब्रज में ही अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति करते रहे वे थे जयशंकर 'प्रसाद'। 'प्रसाद' के 'चित्राधार' (१९०९-११ ई०) की कविताओं में उनका ब्रज-संस्कार परिलक्षित होता है। 'प्रेम-पथिक' (१९०४) भी ब्रजभाषा का ही अतुकान्त खण्डकाव्य था ! परन्तु भाषा (रूप) प्राचीन होते हुए भी उनके भाव (रंग) और अभिव्यक्ति की शैली(रेखा) अभिनव ही थी और इसी के बल पर उन्हें अपने काव्य का बहिरंग बदलते विलम्ब न लगा और वे नवीन पीढ़ी के कवियों के नेता बन सके। 'प्रसाद' के शब्दों में 'सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं, उनके अनुकूल कविताएँ नही मिलतीं और पुरानी कविता को पढ़ना तो महादोष सा प्रतीत होता है क्योंकि उस ढंग की कविताएँ तो बहुतायत से हो गई हैं।' 'प्रसाद'जी ने जिस नवीन भाव और शैली की उद्भावना की उसका इङ्गित उनके ब्रजभाषा के रूप में भी मिलता है—

प्रथम भाषण ज्यों अधरान में—
रहत है तउ गूँजत प्रान में—
तिमि कहौ तुम हूँ चुप धीर सौं
विकल नेह-कथान गँभीर सौं—
कछुक हौ नहिं पै कहि जात हौ
कछु लहौ नहिं पै, लहि जात हौ।

('नीरव प्रेम')

परन्तु 'प्रसाद' का ब्रजवाणी का यह अनुराग मोह न था, एक संस्कार था, जो उन्होंने विलम्ब से ही सही, एक दम छोड़ दिया और शीघ्र ही अपनी कविता का कायाकल्प कर लिया! ('प्रेम-पथिक' को भी ब्रज से खड़ी बोली में परिवर्तित करके उन्हें सन्तोष मिला!) और खड़ी बोली के उन्नायकों में आज 'प्रसाद' का अमिट स्थान है!

—'रत्नाकर'—

प्राचीन ब्रजभाषा काव्यनिधि के सच्चे संरक्षक और प्रहरी कहे जानेवालों में जगन्नाथदास 'रत्नाकर', रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण और वियोगीहरि के नाम प्रमुख हैं। 'सरस्वती' के प्राथमिक सम्पादक-मंडल में 'रत्नाकर'जी का नाम प्रकाशमान था। काव्यरचना में वे द्विवेदीजी के सहचर थे। उनकी मर्मज्ञता प्रख्यात थी। ब्रजवाणी में ही उन्होंने सरस्वती के कोष में अपना देय दिया।

काव्य-जगत् में देव और बिहारी, नन्ददास और घनानन्द उनके आदर्श थे, इसका इंगित स्वयं कवि ने अपने एक मङ्गला-चरण में किया है—

> नन्ददास, देव, घनआनँद, बिहारी सम
> सुकवि बनावन की तुम्हें सुधि याऊँ मैं।

द्विवेदी-काल में 'सरस्वती' और अन्य पत्र-पत्रिकाओं में उनके मुक्तक पद्य प्रकाशित होते रहे। ब्रजवाणी के समृद्ध काव्य का गहरा संस्कार उनके मानस में था और उनकी कविता वस्तुतः मतिराम पद्माकर, देव और घनानन्द की कविता से स्पर्द्धा करती है!

द्विवेदी-काल में भी वे भक्ति-युग के प्रतिनिधि थे। द्विवेदी-काल के उपरान्त भी वे ब्रजभाषा का कोमल उत्संग छोड़कर खड़ी बोली की कर्कश भूमि पर न आसके। उनकी काव्य-प्रतिभा का शीर्ष-विन्दु उनके 'गंगावतरण' और 'उद्धवशतक' काव्यों में दिखाई दिया, जिनका प्रकाशन बहुत पीछे हुआ।

—सत्यनारायण—

जिस ब्रजभूमि ने हिन्दी को श्रीधर पाठक जैसे 'अभिनव जयदेव' की प्रसूति की, उसी भूमि की अमराइयों में कुहुकनेवाले कोकिल थे श्री सत्यनारायण 'कविरत्न'। सत्यनारायण की कविता में सूर और नन्ददास का प्रभाव है। सूर से उन्होंने ब्रजराज की भक्ति ली और नन्ददास से भ्रमर-गीत-परम्परा। सत्यनारायण के मोहन और माधव ब्रजराज ही नहीं, वे भारत-राज हैं और उनसे प्रार्थना करते हुए वे भारतभूमि को कभी नहीं भूलते, जो उनके वियोग में विकल होकर अरण्यरोदन कर रही है :

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ,
मौन-मुहर कच लौं टूटैगी, हरे! न और सतावौ।
द्रुम-तक हू के दग नव किसलय, रोइ भये अरुनारे।
दारुन देस-दसा लखि बौरे, ये रसाल चहुँ सारे,
अबला-लता-कलेवर कोमल कम्पित भय दरसावैं,
लम्बी लेत उसाँस जानिये बवै हृदय लहरावै।
कारी कोयल कूक कलाकल जदपि गुहार मचावत,
चहुँ अरन्य-रोदन सम सुनियत कछु न प्रभाव जनावत।

वसन्त में ब्रजराज के विलास में उन्हें स्वदेश विस्मृत नहीं

द्रुम डारनि के बीच चपल चहचही चुहूवनि,
कोकिल-कीर-कपोत-कलित कल कंठ कुहूकनि,

मानहुँ करि स्तुति-पाठ धरम की ध्वजा उड़ावत,
'हे भारत अब उठौ तजौ आलस' समुझावत,

देश और समाज का चिन्तन सत्यनारायण के कृष्णार्चन में एकाकार सा हो गया है। भारतेन्दु और सूर की भाँति कृष्ण इनके सखा हैं, जिन्हें ये मधुर उपालम्भ देते हैं। 'माधव आप सदा के कोरे।' और 'माधव, अब न अधिक तरसैये' में उनके आँसू घुले-मिले हैं। कृष्ण-भक्ति उनकी निरपेक्ष नहीं, वह जाति (देश)-भक्ति पर अवलम्बित है :

अब न सतावौ!
करुणाघन इन नैनन सों द्वै बुँदियाँ तो टपकावौ।
× × ×
होरी सी जातीय प्रेम की फूँकि न धूरि उड़ावौ।
जुग कर जोरि यही 'सत' माँगत, बिलम न और लगावौ।

सूर से उन्होंने सख्यभाव की भक्ति ली और भारतेन्दु से प्रेम की उत्कटता और तीव्रता। नन्ददास के 'भँवर गीत' की शैली पर इनका 'भ्रमरदूत' व्रजभाषा काव्य का एक उज्ज्वल रत्न है। श्याम-विरह में आकुल-व्याकुल यशोदा माता व्रज की नैसर्गिक सुषमा में कृष्ण का विरह देखकर फूट पड़ी हैं—

लखि यह सुखमा-जाल लाल निज बिन नँदरानी।
हरि सुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी।
सुधि बुधि तजि माथौ पकरि करि करि सोच अपार।
दृगजल मिस मानहुँ निकरि बही बिरह की धार
कृष्ण रटना लगी।

और 'भ्रमरदूत' से सँदेसा भेजती हैं :

जननी जनमभूमि सुनियत सुर्गहु सों प्यारी।
सो तजि सबरो मोह साँवरो तुमनि बिसारी।
का तुम्हरी मति गति भई, जो ऐसो बरताव।
किधौं नीति बदली नई, ताको पर्यौ प्रभाव।
कुटिल विष को भरयौ।

समाज की स्त्री-जाति की अशिक्षा का

[(१) पढ़ी न आखर एक ज्ञान सपने ना पायो
दूध दही चारन में सबरो जनम गँवायो
मात पिता बैरी भये सिच्छा दई न मोहिं
सबरे दिन यों ही, गये कहा कहें तो होहिं।

(२) नारी-सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी,
ते स्वदेस-अवनति-प्रचण्ड-पातक-अधिकारी,

देश में पड़ रहे अकाल का

[नव नव परत अकाल काल को चलत चक्र चहुँ
जीवन को आनन्द न देखयो जात यहाँ कहुँ]

तथा प्रवासी भारतीयों की यातना का

[जे तजि मातृभूमि सों ममता होत प्रवासी।
तिन्हें विदेसी तंग करत है विपदा खासी।]

दुःसम्वाद देती हैं। कृष्ण की माता यशोदा के मुँह में उन्होंने आज की जागरूक नारी के शब्द दे दिये हैं। इस इतिहास-विपर्यय (anachronism) के आभास में भी सत्यनारायण की जाति-भक्ति की भावना का प्रभास है। अपनी मधुमयी वाणी में

काकली सुनाता हुआ यह 'व्रज-कोकिल' अचानक अनन्त की ओर उड़ गया !

—रामचंद्र शुक्ल—

द्विवेदी-काल में जिस समय खड़ी बोली में पद्य प्रबन्ध और पद्य-कथाएँ लिखी जारही थीं, तब रामचंद्र शुक्ल की लेखनी व्रजवाणी में पद्य-कथा और पद्य-प्रबन्ध लिख रही थी। शुक्लजी का 'शिशिर-पथिक' श्रीधर पाठक के 'श्रान्त पथिक' और 'प्रसाद' के 'प्रेम पथिक' की परम्परा में है, जिसमें अफगान-युद्ध लौटे हुए पथिक की मार्मिक कथा है। प्रकृति के रम्यरूप में उनका मन विशेष रमता था। प्रकृति प्रेम उनकी जन्मजात वृत्ति थी, अतः उनकी कविता में प्रकृति का यथातथ्यवादी चित्र मिलता है। शुक्लजी की अद्भुत काव्य-प्रतिभा का प्रकाश दिखाई दिया उनके 'बुद्धचरित्र' काव्य में। एडविन आनल्ड के एशिया का आलोक (Light of Asia) शुक्लजी ने व्रजवाणी में अवतरित किया। यह अनुवाद भी द्विवेदीकालीन पौराणिक और ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों की शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

—वियोगी हरि—

सत्यनारायण की ही भाँति व्रजराज और व्रजभाषा के अनन्यभक्त वियोगीहरि में वीर और भक्तिरसों का अद्भुत परिपाक हुआ है। बुन्देलखण्ड की वीर भूमि से उन्होंने वीर भावना ली और 'अष्टछाप' कवि-परम्परा से व्रजराज की भक्ति। सूर और भारतेन्दु का भक्त हृदय उन्हें मिला था। उन्हीं की पद्-शैली में लिखे इनके गीतों में सगुणोपासक के उद्गार हैं :

हाँ, हम सब पन्थन ते न्यारे।
लीनो गहि अब प्रेम-पन्थ हम और पन्थ तजि प्यारे।
नायँ करायँ सकैं सट दरसन दरसन मोहन तेरो।
दिन दूनो नित कौन बढ़ावै या हिय माँझ अँधेरो।
तो अभेद को भेद कहा ए बेद बापुरे जानैं।
वा झिलमिली झलक को नीरव रहस कहा पहिचानैं।

मीरा और कबीर की सी मर्म-अनुभूति इनके हृदय की अनश्वर सम्पदा है :

कहा कहौं वा नगर की कछु रीति कही नहिं जाय।
हेरत हिय-हीरा गई यह हेरनिहारि हिराय।
इक मरजीवा मरमी बिना हरि मरमु न समुझै कोय।
हिलग-तीर की पीर बिनु, कोइ कैसे मरमी होय?

उनके प्रेमाप्लावित सरोवर में वीर-भावना की तरंगें सदैव उच्छ्वसित होती रहती हैं :

अरे चलि वा मन्दिर की ओर।
करत शक्ति आराधन जहँ नित वीर भगत उठि भोर।

बल और बलि के वे आराधक-उपासक हैं :

तात विमल निज हृदय-रक्त सो करि वाको अभिसेक।
क्यों न चढ़ावत ललित लाल तेहि मौलि-माल गहि टेक।
लाज-अग्नि सोइ धूप-दीप पुनि नव नैवेद्य-विधान।
अपने कर तें काटि सीस निज, करु पुनीत बलिदान।

जब काल के प्रमुख कवि अपने देश के वीर रक्त के प्रति अपने मानस की श्रद्धाञ्जलि चढ़ा रहे थे, तब इस कवि ने भी त्यागी और

बलिदानी वीरों और वीरांगनाओं के मस्तक पर एक तिलक लगाया और वीर रस से ओतप्रोत सतसई की रचना की। 'वीर सतसई' में परम्परा, युद्धवीरों (मारुति, कृष्ण, अभिमन्यु, भीम, चन्द्रगुप्त, कन्ह, कैमास, चामुंडराय, चंद्रपुंडीर, आल्हा-ऊदल, गोरा-बादल, सांगा और प्रताप, जयमल्ल और पत्ता, राजसिंह और चूंडावत, शिवाजी और छत्रसाल, गोविंदसिंह और तेगबहादुर), दानवीरों और दयावीरों का अभिनंदन ही नहीं है विरह-वीरों सत्यवीरों दयावीरों और कर्मवीरों का अभिवन्दन भी है। उसमें शिशु-वीरोक्तियाँ हैं :

ऊँ ऊँ मै तो लेउँगो आई तीर-कमान।
मारूंगो म्लगलाज मैं घालि अचूक निशान।

उसमें व्यंग्योक्तियाँ हैं :

जोरि नाम संग 'सिंह' पदु कियौ सिंह बदनाम।
ह्वै हैं क्यों करि सिंह यौ करि शृगाल के काम।

उसमें पवित्र बलि-तीर्थों, वीर-प्रतिज्ञाओं, वीरभूमियों, वीर-पुरुषों, वीरांगनाओं (लक्ष्मी-दुर्गा, पन्ना कर्मा, वीरां, नीलदेवी, चाँदबीबी) वीर-मुद्राओं, वीर-युद्धों का स्तवन तो है ही, जातीय चेतना का स्वर भी उतना ही प्रखर है। उसमें राष्ट्रीय वीरों (तिलक, दास, आदि) की वन्दना है और है आधुनिक अधोगति पर व्यंग-व्यञ्जना भी—

जहाँ पराजय ही विजय मानत सभ्य समाज,
कहा जानि आयौ तहाँ फेरि दसहरो आज।

(विजयादशमी)

साथ-साथ देश और समाज भी भारतेन्दु का गेय रहा। अपने अनेक गीतों में उन्होंने जागरण की भैरवी छेड़ी है—

जागो जागो रे भाई
सोवत निसि वैस गँवाई

इस नई दिशा के संकेत को 'प्रेमघन' और पाठक ने भी अपनाया था। पाठक ने पहले 'जय देश हिन्द! देशेश हिन्द!' का राग गुंजरित किया और देशभक्ति के गीतों की परम्परा चलाई। भारतेन्दु के गीत भाव और भाषा में सूर के पद-चिह्नों पर चले हैं। प्रेममालिका, 'कार्तिकस्नान' 'प्रेमाश्रुवर्षण', 'प्रेमतरंग' 'प्रेमप्रलाप' आदि कृतियों के गीत सूर और मीरा की पदशैली में ही लिखे गये हैं इसी काल में प्रचलित उर्दू कविता की गजल शैली को भी भारतेन्दु ने अपनाया था। उनकी हिन्दी गजलें खड़ी बोली की प्रयोगशालायें थीं :

श्री राधा-माधव जुगल चरन-रस का अपने को मस्त बना।
पी प्रेम-पियाला भर-भर कर कुछ इस मैं का भी देख मजा।
यह वह मै है जिसके पीने से और ध्यान छुट जाता है।
अपने में औ दिलबर में फिर कुछ भेद नहीं दिखलाता है।
इसके सुरूर में मस्त हरेक अपने को नज़र बस आता है।
फिर और हवस रहती न जरा कुछ ऐसा मजा दिखाता है।
टुक मान मेरा कहना दिल को इस मैखाने की तर्फ झुका।

('फूलों का गुच्छा')

'प्रेमघन' ने भारतेन्दु का ही पदानुसरण किया। 'प्रेमघन' लोक-साहित्य के रसिक-स्रष्टा थे। उन्होंने लोक-प्रचलित लयों, धुनों, तर्जों और राग-रागिनियों और होली, कजली और कबीर

गीतों के रंग में रँगकर बहुत-सा संगीत-काव्य रच डाला था। इन गीतों में सुरुचि की मात्रा उतनी नहीं थी जितनी लोकरंजन की, इसलिए काव्य हम चाहे उसे न कहें। समाज के जीवन के अनेक पक्षों पर उसमें व्यंग और विनोद के छींटे हैं।

श्रीधर पाठक के दो ही आराध्य थे राधा-माधव की युगल मूर्ति और स्वदेश; और दोनों के चरणों में उनके गीत निवेदित हुए हैं। कृष्ण-भक्ति के गीतों में वे जयदेव की स्मृति जगा देते हैं—

कर धृत-वर-वेनु-धेनु-गोप-संग,
राधा-मुख मुकुलित अंभोज-भृंग,
त्रिभुवन-सुख-सुखमा छबि अंग अंग
मूरति रति मन्मथ मोहिनि, त्रिभंग

('भक्ति-विभा')

और स्वदेश-भक्ति के गीतों में तुलसीदास की—

सुख धाम अति अभिराम-गुननिधि नौमि नित-प्रिय भारतम्
सुठि-सकल-जग संसेव्य सुभथल सकल-जग-सेवा रतम्
सुचि सुजन सुफल सुसस्य संकुल सकल भुवि अभिवंदितम्
नित नवल सुरित सुदृश्य सुठ छबि अवलि अवनि अनंदितम्

('नौमि भारतम्')

उर्दू की गजल शैली में भी उन्होंने सुन्दर रचना की है—

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है।
हरेक स्वर में नवीनता है हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है अलाप अद्भुत मिला रही है।

द्विवेदी-काल के श्रीधर पाठक भारतेंदु-काल के श्रीधर पाठक से अधिक प्रगतिशील हैं। चिरकाल से प्रतिष्ठित ब्रजवाणी को छोड़कर अब लोकवाणी (खड़ी बोली) में उन्होंने 'भारतगीत' लिखा। उनका 'भारतगीत' काव्य हिन्दी के गीत काव्य की अमूल्य निधि है।

जय जय शुभ्र हिमाचल शृंगा,
कलरव निरत कलोलिनि गंगा,
भानुप्रताप चमत्कृति अंगा,
तेज पुञ्ज तपवेश
जय जय प्यारा भारतदेश !

'भारतगीत' में कवि राष्ट्र दैवत का पूजक और उपासक है; उसमें भारत का दैवीकरण है। भारत के गायकों में श्रीधर पाठक का नाम शिरस्थानीय रहेगा।

द्विवेदी काल के कवि ब्रजभाषा का मोह तोड़कर खड़ी बोली से अनुराग करने लगे थे, इसलिए ब्रजभाषा के कोकिल-कण्ठों से गाये हुए गीतों की परम्परा नष्ट हो चली थी। उसमें वह सहज लालित्य अभी नहीं आया था जो गीतों के कोमल हृदय को अपने में रमा सके। काव्य की वर्णनात्मक, चमत्कारात्मक, उपदेशात्मक आदि अनेक विकास-दशाओं को पार किये बिना कवि का हृदय गीतों के भाव-जगत में नहीं पहुँच सकता। समस्त बहिर्मुखताओं की समाप्ति के अनंतर ही अंतर्लोक के द्वार खुलते हैं और गीतों की रचना होती है। वह स्थिति द्विवेदी काव्य की कविता द्वारा धीरे-धीरे आरही थी। रस-सिद्ध कवियों की वाणी जब-तब गीतों की धारा भी बहाती रहती थी। ऐसे

कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, 'शंकर', राय कृष्णदास और बदरीनाथ भट्ट महामहिम थे।

द्विवेदी-कालीन कविता का उपजीव्य समाज-जीवन होने के कारण इस काल के कवि के गीतों का गेय भी समाज ही रहा है। गीत-काव्य कवि के हृदय के अन्तःप्रदेशों की छायात्मक अभिव्यक्ति है; इसलिए उसमें कवि के चिन्तन का प्रच्छन्न प्रभाव व्यंजित होता है। ब्रह्म समाज और आर्यसमाज भारतीय जीवन में प्रगतिशील धार्मिक संगठन थे। एक के गायक रवीन्द्र नाथ वंगभूमि में वंग साहित्य को प्रभावित कर रहे थे तो दूसरे के गायक हिन्द प्रदेश में हिन्दी-साहित्य को। आर्यसमाज ने सनातन धर्म की रूढ़ियों पर प्रगतिशील चिन्तन-धारा का स्वस्थ आलोक फेंका था। आर्यसमाज के क्रोड़ में दो प्रकार के गीतों की सृष्टि हुई —(१) ईश्वरपरक और (२) समाजपरक। ईश्वर-परक गीतों में आर्यसमाज के द्वारा प्रतिपादित एकेश्वरवाद की ही प्रतिष्ठा है। उसमें अनादि-अनंत, अजर-अमर, निर्गुण-निराकार, सर्वांतर्यामी, सच्चिदानंदस्वरूप सृष्टिकर्ता परमेश्वर की अर्चना है। 'शंकर' कवि के गीतों में आर्यसमाजी विचारों का पूर्ण प्रति-पादन है—

> जिस अविनाशी से डरते हैं, भूत-देव-जड़-चेतन सारे।
> जिसके डर से अम्बर बोले, उग्र-मंद गति मारुत डोले।
> पावक जले प्रवाहित पानी, युगल वेष वसुधाने धारे।
> जिसका दण्ड दसों दिसि धावे, काल डरे ऋतु चक्र चलावे।
> बरसे मेघ दामिनी दमके, भानु तपै चमके शशि-तारे।
> मन को जिसका कोप डरावे, घेर प्रगति को नाच नचावे।
> जीव कर्म फल भोग रहे हैं, जीवन जन्म-मरण के मारे।

समाज-परक गीत उर्दू की गजल शैली पर लिखे हुए भजनों के रूप में थे। होलियों और कबीरों के रंग में रंगकर 'शंकर' जी ने इन भजनों में व्यंग और परिहास का रंग भरा था—

सैयाँ न ऐसी नचाओ पतुरियाँ।
गाने पै रीझौ बजाने पै रीझौ, बंदी की छाती मे छेदौ न छुरियाँ।
पापों की पूँजी पचैगी न प्यारे, खाते फिरोगे हकीमों की पुरियाँ॥

पूर्णजी के गीतों में आर्यसमाजी विचारों की कट्टरता का प्रत्याख्यान है।—

धातु शिला को अशुच बताया
स्याही कागज पर मन भाया
चित्र बनाय, प्रेम बढ़ाय कमरे में लटकाय
भाई भोले भाले तुम्हें बहकावें।

और 'प्रसाद' जी के धार्मिक गीतों में उस कट्टरता की प्रतिक्रिया स्वरूप धार्मिक उदारता की व्यंजना :

मस्जिद पगोडा गिरजा किसको बनाया तूने।
सब भक्त-भावना के छोटे बड़े नमूने।
सुन्दर वितान वैसा आकाश भी तना है।
तेरा अनन्त मन्दिर यह विश्व ही बना है।

हिन्दी के गीत-काव्य की प्रचलित पदशैली में श्रीधर पाठक के पीछे 'पूर्ण' और सत्यनारायण ने व्रजभाषा में और मैथिलीशरण, राय कृष्णदास, 'प्रसाद' आदि ने खड़ी बोली में अनेक गीत लिखे हैं। 'पूर्ण' जी अब भी मुरारी के अद्भुत् चरित गारहे थे—

तुम्हारे अद्भुत चरित मुरारि।
कबहूँ देत विपुल सुख जग में, कबहुँ देत दुख भारि

कहुँ रचि देत मरुस्थल रूखो, कहुँ पूरन जल रास
कहुँ ऊसर कहुँ कहुँ विपिनकुं, कहुँ तम कहूँ प्रकास

सत्यनारायण 'कविरत्न' मानो सूर और नंददास के अंशावतार थे। सूर की भाँति सत्यनारायण अपने विनय के पदों में विरही भक्त की समस्त आकुलता-व्याकुलता और व्यथा-वेदना भर देते हैं—

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सो आये, नहीं दया दरसैये
× × ×
आरत तुमहिं पुकारत हम सब सुनिए त्रिभुवन राई
अँगुरी डार कान में बैठे धरि ऐसी निठुराई
अजहुँ प्रार्थना यही आप सों अपनो विरुद सँवारौ
'सत्य' दीन दुखियन को विपता आतुर आइ निवारौ

और कभी माधव के प्रति उलहना देते हैं —

माधव आप सदा के कोरे

ब्रजराज के भक्त वियोगीहरि (हरप्रसाद द्विवेदी) भी 'अष्टछाप' की परम्परा के गीत गारहे हैं—

कैसे वह मूरति बिसराऊँ?
नैन पीउ-मय, पीउ नैनमय, किमि दोउन बिलगाऊँ ?
श्याम रूप अञ्जन कोयन ते, क्यों करि धोय बहाऊँ?
किमि वह उरझीली चितवनि इन अँखियन ते सुरझाऊँ ?

('आराध्यदेव' : वियोगीहरि)

मैथिलीशरण ने चिरप्रतिष्ठित पदशैली और नवप्रचलित भजन शैली दोनों को बनाया है। भजन-शैली में उनकी प्रार्थना 'भारत-भारती' के अंत में सुरक्षित है :

इस देश को हे दीनबन्धो आप फिर अपनाइये।
भगवान भारतवर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइये॥
जड़तुल्य जीवन आज उसका विघ्न-बाधा-पूर्ण है
हे रम्ब, अब अवलम्ब देकर विघ्नहर कहलाइये।

पदशैली में भी उन्होंने भक्ति और रहस्य-परक गीत लिखे हैं—

(१) राम, तुम्हें यह देश न भूले,,
धाम-धरा-धन जाय भले ही, यह अपना उद्देश न भूले।
निज भाषा निज भाव न भूले, निज भूषा, निज वेष न भूले।
प्रभो, तुम्हें भी सिन्धुपार से सीता का सन्देश न भूले।

(२) दूती! बैठी हूँ सजकर मै
ले चल शीघ्र मिलूँ प्रियतम से, धाम-धरा-धन सब तज कर मैं।
धन्य हुई हूँ इस धरती पर निज जीवनधन को भजकर मैं
बस अब उनके अंक लगूँगी उनकी वीणा सी बजकर मैं।

बदरीनाथ भट्ट ने अपने समाज-चिंतन को संकेतात्मक पद्धति में अपने गीतों में भरा है। दलित-उपेक्षित जातियों के मानस में बैठकर वे उनकी वाणी से कुलीनों के प्रति निवेदन करते हैं—

चिढ़ाते हो क्यों हमको यार?
धीरे धीरे टूट रहा है सभी तुम्हारा तार!
जिस प्रभु ने है तुम्हें बनाया,
उसने ही सब जग प्रगटाया,

हमको भी उसने जनमाया,
तुम कैसे सरदार ?

('निवेदन')

भट्टजी के संगीत-ज्ञान ने हिन्दी के काव्य-कोष में अनेक भैरवी आसावरी, कालिंगड़ा आदि राग रागिनियाँ हमें दीं। उनका आध्यात्मिक चिंतन भी उनके गीतों में प्रकट हुआ है। 'जीव और माया', 'मनुष्य और संसार' के चिरंतन प्रश्नों पर इस कवि ने अच्छे गीत लिखे हैं—

सागर में तिनका है बहता।
उछल रहा है लहरों के बल 'मैं हूँ मैं हूँ' कहता
अपने को है बड़ा समझता यह इसकी नादानी।
धीरे धीरे गला रहा है इसको खारी पानी॥
धक्के खाकर भी इतराता ऐसा मद से फूला!
मैं हूँ कौन, कौन है सागर, इसको बिल्कुल भूला।

('मनुष्य और संसार')

राय कृष्णदास अपनी रहस्यभावना में रवींद्र के अनुगत हैं। उनकी 'गीताञ्जलि' के हार्द को उन्होंने अपने रहस्यवादी गीतों और गद्यगीतों में पल्लवित किया—रवींद्र की 'गीताञ्जलि' ही रायकृष्णदास की 'साधना' में ढल आई है। जीवन एक निर्झर की भाँति प्राणेश्वर समुद्र के प्रेम-निमन्त्रण को पाता हुआ निरन्तर बहा जारहा है—

क्या यह न्योता तेरा है ?
प्रेम-निमन्त्रण मेरा है ?

इसकी अवहेला क्या मुझसे हो सकती है भला कभी ?

× ×

इच्छा के गिरि गिरा गिरा,
कर निज मार्ग प्रशस्त निरा:
प्राणेश्वर के पद-पद्मों में पहुँचा बस मैं अभी-अभी !

'अहोभाग्य' ('शुभकाल')

प्रसाद के प्रारंभिक गीत उर्दू की गजल शैली में लिखे गये हैं जिससे भारतेन्दु, प्रतापनारायण, प्रेमघन', हरिऔध, पाठक सभी न्यूनाधिक रूप में प्रभावित हुए थे :

विमल इन्दु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं।
अनादि तेरी अनन्त माया जगत को लीला सिखा रही हैं।

सियारामशरण गुप्त के गीतों में भी रवींद्र-चिन्ता का प्रभाव स्पष्ट है :

(१) जिस दिन तुम इस हृदय-कुञ्ज पर अकस्मात् छा जाओगे।
करुणाधारायें बरसाकर सब सन्ताप बहाओगे।

(२) स्वर्ण सुमन देकर न हमें जब तुमने उसको फेंक दिया।
होकर क्रुद्ध हृदय अपना तब हमने तुमसे हटा लिया।
उपवन भर के श्रेष्ठ सुमन सब
जाकर तोड़ लिये सहसा जब,
समझ तुम्हारा गूढ़ाशय तब,
हुआ विशेष कृतज्ञ हिया !
स्वर्ण सुमन देकर न हमें जब तुमने उसको फेंक दिया।

(३) प्रतीक और 'छाया'

द्विवेदी-काल की कविता खड़ी बोली की कविता का बाल्य और कैशोर काल है; उसमें बाल्य जीवन से कैशोर जीवन के विकास की सभी अवस्थाएँ हैं : जब वर्णनात्मक (इतिवृत्तात्मक) और उपदेशात्मक अवस्था को पार कर यह हिन्दी कविता भावात्मक अवस्था में आरही थी, तब अचानक उसमें यौवन का महज गुरु-गांभीर्य और मदिर माधुर्य समाविष्ट हो गया। 'हरिऔध' और मैथिलीशरण, 'पूर्ण' और 'शंकर', रामचरित उपाध्याय और लोचनप्रसाद पाण्डेय, सियारामशरण और रूपनारायण पाण्डेय, गिरिधरशर्मा और गोपालशरणसिंह की काव्य-प्रतिभाओं ने कविता का संस्कार और परिष्कार कर दिया था। जीवन के दृश्यमान स्थूल पक्ष पर शत-सहस्र अभिव्यक्तियाँ हो चुकी थीं, बहिश्चक्षुओं से दिखाई देनेवाले पृथ्वी से लेकर आकाश तक के विषयों की अपरिमेय सूची समाप्त हो चुकी थी। देश और समाज के अङ्ग-प्रत्यङ्ग उसमें आलोचित-पर्यालोचित हो चुके थे। समस्त प्रत्यक्ष जीवन कवि के दृष्टि-पथ में आ चुका था, और अज्ञात रहस्यमय प्रदेशों में प्रवेश करने के लिए अन्तश्चक्षुओं के खुलने का समय आ गया था। वर्षों की यात्रा के बाद द्विवेदी वृत्त की कविता इस समय (१९१४ से लेकर २० तक) संक्राति की स्थिति में थी। एक ओर की सरल ऋजु अभिव्यक्ति को साहित्य-समीक्षकों ने 'इतिवृत्तात्मक' या 'वस्तुपाठात्मक' संज्ञा दी है। इन्हीं इतिवृत्तात्मक कविताओं की सीमा-रेखा के पश्चात् उत्कर्ष की दिशा में एक विशेष शैली की व्यञ्जना-प्रधान कविता का सूत्रपात हुआ। अब कवि सरल और

संक्राति की स्थिति

ऋजु अभिव्यक्ति को पीछे छोड़कर वक्र और वंकिम व्यञ्जना को अपनाने लगा था। कविता के वर्ण्य विषय (theme) से इस अभिव्यंजना-पद्धति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था। जड़-जीवन के समस्त स्थूल विषयों को कविता में वर्णित कर चुकने के उपरांत कवि सूक्ष्म विषयों की ओर झुका था। इस झुकाव (प्रकृति) के मूल में एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया - प्रतिक्रिया ही थी। 'जब वर्णनात्मक अथवा वस्तुवृत्तिप्रधान (Ob ective) रचनाओं का बाहुल्य हो जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया भावात्मक अथवा भावप्रधान (Subjective) रचनाओं के द्वारा हुए बिना नहीं रहती।' * शताब्दियों से हिन्दी कविता पर एक प्रकार की भौतिक दृष्टि का प्रभाव था; इसी भौतिक मुद्रा को समीक्षकों ने 'युग और जीवन का प्रभाव कहा है। रीतियुगीन शृंगारिक काव्य में जो वासना-जन्य प्रेम अन्तर्भूत था, उसकी प्रतिक्रिया में आया भारतेन्दु-काल, जिसमें कवि की दृष्टि समाज की ओर भी गई, उसी की परिणति हुई द्विवेदी-काल में, जिसमें पार्थिव जगत् के सभी लोकोपयोगी विषय कविता के वर्ण्य बन गये, और शास्त्रीय काव्य-पद्धति में उनकी अभिव्यक्ति हुई। द्विवेदी-काल तक केवल भाव और भाषा, 'रंग' और 'रूप', बदल पाये थे, अभिव्यक्ति की शैली शास्त्रीय (Classic al) ही थी। द्विवेदी-काल में कवि पर वस्तु जगत् की जो प्रतिक्रिया हुई उसे उसने स्थूल वृत्त के रूप में अभिव्यक्त किया। जीवन के सभी दृश्यमान क्षेत्रों को कवि ने देखा-पहचाना और सीधी-सरल भाषा में उन्हें कह डाला।

* 'हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास': हरिऔध; द्वितीय संस्करण; पृष्ठ ५६२

केवल एक जगत की ओर कवि ने कल्पना परिचालित न की थी, वह था अन्तर्जगत्। इस अन्तर्जगत के मार्ग हिन्दी कविता में सहज-स्वाभाविक क्रम से खुलने लगे थे। किसी अज्ञात-अज्ञेय प्रक्रिया से कवि ने जग-जीवन के स्थूल पक्ष से ऊबकर सूक्ष्म पक्ष की ओर झाँका! प्रकृति और मानव के रम्य रूपों और व्यापारों ने उसे अपनी रहस्यमयता में आकर्षित किया। '...कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम 'छाया' उपयुक्त ही था।' ‡ इन मानवी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति की भाषा भी विलक्षण थी। आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्रिया-कलाप का यथातथ्य ज्ञान एक वैज्ञानिक भी नहीं दे सकता। केवल भावना और अनुभूति का धनी कवि-हृदय ही उसकी व्याख्या का अधिकारी है। उस व्याख्या की भाषा भी उतनी ही 'अटपटी' और संकेत-प्रधान होती है। बाह्य (प्रत्यक्ष) जगत् को अपने अन्तस् के नयनों से देखते समय जो छाया या प्रतिबिम्ब कवि के हृदय-दर्पण में पड़ता है।कवि उसे कविता में दिखा सकता है; उसकी भाषा कभी कभी गूँगे के गुड़ की भाँति दुर्बोध हो जाती है।

तो, 'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिव्यक्त किया गया।' परन्तु धीरे-

‡ 'यथार्थवाद और छायावाद' : जयशंकर 'प्रसाद'

धीरे जब इस प्रकार के भाव-जगत् में रहने के कारण लाक्षणिक वक्रता, प्रतीकात्मक चित्रविधान, और ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति लेकर जो कविताएँ आईं उन्हें भी 'छायावादी' कहा गया।

'छायावाद' का विरोध

कविता अब अन्तरात्मा की गहन-गूढ़ वेदना से उद्भूत होने होने लगी; वस्तु-जगत् अनुभावक के अन्तर्जगत् में रँग गया और एक 'अट पट' भाषा में कवि अपनी अनुभूतियाँ चित्रित करने लगा—इन अनुभूतियों की गहनता-गूढ़ता को रूढ़िवादी या परम्परा वादी समीक्षक यथेष्ट रूप में ग्रहण न कर सके। अपनी सीधी सरल 'प्रसाद' मयी 'कविता' के आगे वे छन्द-बंध-हीन अस्पष्ट (अटपट) और अगम्य तुकबन्दियों को (अस्पष्टता के अर्थ में) 'छायावाद' मानने लगे। आचार्य द्विवेदीजी के सामने ही इस प्रकार की कविताओं का जन्म होने लगा था और उस पर व्यंग्य और परिहास भी। एक लेखक ने (सुमित्रानन्दन पन्त जैसे) कवि की ऐसी कविताओं को कोरे कागज की ओर इंगित करके, अर्थ-हीन व्यंजित किया था। स्वयं द्विवेदी जी ऐसे 'छाया' वाद के अनुकूल न हो पाये।—"अंग्रेजी में एक शब्द है Mystic या Mystical; पंडित मथुराप्रसाद मिश्र ने अपने त्रैभाषिक कोष में उसका अर्थ लिखा है—गूढ़ार्थ, गुह्य, गुप्त, गोप्य और रहस्य। रवीन्द्र-नाथ की वह नये ढंग की कविता इसी 'मिस्टिक' शब्द के अर्थ की द्योतक है। इसे कोई रहस्यमय कहता है, कोई गूढ़ार्थ बोधक कहता है और कोई छायावाद की अनुगामिनी कहता है। छाया-वाद से लोगों का क्या मतलब है कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया

दि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावाद-कविता
हना चाहिये।',*

अस्पष्टता के कारण इन 'गूढ़ार्थविहारी' कवियों की कविता
ो उन्होंने 'छायावादी' माना था।—"आजकल जो लोग
हस्यमयी या छाया-मूलक कविता लिखते हैं, उनकी कविता से
ो उन लोगों की पद्य-रचना अच्छी होती है जो देश प्रेम पर
अपनी लेखनी चलाते या 'चलो वीर, पटुआ खाली' की तरह की
क्तियों की सृष्टि करते हैं। उनमें कविता के और गुण भले ही
ा हों, पर उनका मतलब तो समझ में आजाता है। पर छाया-
ादियों की रचना तो कभी-कभी समझ में भी नहीं आती।"†

श्याम सुन्दरदास जी ने भी अपने एक वक्तव्य में कह डाला
था —"छायावाद और समस्या-पूर्ति से हिन्दी कविता को बहुत
हानि पहुँच रही है। छायावाद की ओर नवयुवकों का झुकाव है
और ये जहाँ कुछ गुनगुनाने लगे कि चट दो-चार पद को जोड़
कर कवि बनने का साहस कर बैठते हैं। इनकी कविताओं का
अर्थ समझना कुछ सरल नहीं है। कविता लिखने के अनन्तर
बेचारा कवि भी उसके अर्थ को भूल जाता है और उसके भाव
तक को समझाने में असमर्थ हो जाता है। पूज्य रवीन्द्रनाथ का
अनुकरण करके ही यह अत्याचार हिन्दी में हो रहा है। इस कवि-
श्रष्ठ की विद्या बुद्धि को प्राप्त करने में असमर्थ होते हुए भी कुछ
ऐसी बातें कह जाना जिनका कोई अर्थ ही न समझ सके ये कवि

'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' : महावीरप्रसाद द्विवेदी

उपर्युक्त

अपने कवित्व की पराकाष्ठा समझने लगे हैं !"* इसमें संदेह नहीं नहीं कि कवि-मानस में अनुभूति के क्षणों में जितने भाव-चित्र रहते हैं उतने अभिव्यक्ति में नहीं उतर पाते और अभिव्यक्ति करनेवाले कवि की भावना में प्रत्येक शब्द और अक्षर की एक एक चित्र-कथा, एक-एक कहानी, रहती है, उसे श्रोता, पाठक और समीक्षक अत्यन्त सहृदय होकर भी कभी-कभी नहीं समझ पाता, परंतु इस दुर्बोधता के बल पर 'गूढ़ार्थव्यञ्जिनी' कविता को 'छाया' कह-देना सहृदयता नहीं है। जिस छायावादी कविता पर द्विवेदी जी का आक्षेप-आरोप है, वह है—

घोर निबिड़ में तू आवेगा यदि कोई यह बतलाता।
इस दीपक का मेरे द्वारा, अंत कभी करा हो जाता।
× × ×
जो हो आओ रिक्त करों से तेरा स्वागत करता हूँ।
जिसे हृदय में रक्खा था वह तव चरणों पर रखता हूँ।

आचार्य को 'घोर निबिड़' पर आपत्ति है; उन्हें 'अन्धकार' शब्द की अपेक्षा है। उत्तर है कि क्या हम 'काले ने डस लिया' नहीं कहते ? केवल 'प्यारे' में जो व्यंजना है, वह 'प्यारे......' में नहीं है ! दूसरी आपत्ति है—'इस गूढ़ार्थ में भी कवि की वह चीज अब पाठक ही ढूँढने की तकलीफ गवारा करें जिसे वह अपने हृदय में, दीपक बुझने के समय तक, छिपाये बैठा था।' खेद है कि जिस आचार्य की रसज्ञता रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' और कबीर की 'उलटबासियाँ' समझ सकती है, वह इन पंक्तियों में कवि की भावना को नहीं छू सकी !

*'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' : महावीरप्रसाद द्विवेदी

'छायावाद' एक विद्रोह की शक्ति थी,—यह विद्रोह केवल भाव-क्षेत्र को ही नहीं, भाषा और व्यंजना को भी लेकर चला था। इस नवीन रंग-रूप-रेखा की कविता में प्रकृति का मानवीयकरण देखा गया, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा हुई, उसमें 'पुरातन के प्रतिवर्तन' की झलक दिखाई दी, उसमें आत्माभिव्यंजन की उत्कटता भर गई और एक चिर सौंदर्य की दीप्ति कवि के अन्तर्जगत् में दिखाई दी। उसके भाव-जगत में कोई बंधन न रहा, वह स्वछन्द हो उठा।—इन्हीं विशेषताओं को देखकर अंग्रेजी-साहित्य के विद्यार्थी को अंग्रेजी का 'स्वछन्दवादी प्रतिवर्तन' (रोमाण्टिक रिवाइवल) याद आजाता है; उस प्रतिवर्तन की प्रेरक शक्तियाँ भी ऐसी ही थीं। दोनों साहित्यों के इस तुलनात्मक अध्ययन से हिन्दी की इस रोमाण्टिक कविता को आज-कल 'छायावाद' नाम से ही पुकारा जाता है। इस अर्थ के आग्रह से 'छायावाद' के क्रोड़ में वे समस्त कविताएँ समाविष्ट होगई हैं जो 'रंग' में स्वानुभूति मयी, 'रूप' में भावात्मक मुक्तक (लिरिकल) और 'रेखा' में लाक्षणिक व्यंजना-प्रधान थीं।

—रवींद्र का प्रभाव—

हिन्दी-कविता में 'छायावाद' के इस उद्भव में रवीन्द्रनाथ और उनकी चिंताधारा का तथा शेली कीट्स, वर्ड्स्वर्थ आदि अंग्रेजी रोमांटिक कवियों के भावात्मक (प्रगीत) मुक्तकों का प्रभाव स्पष्ट था। उस काल के कवि राय कृष्णदास के शब्दों में 'साहित्य में सन् १९१२ से १९१९ तक को हम 'गीतांजलि' की धूम का युग कह सकते हैं। उससे भारत के कितने ही साहित्यिक प्रभावित हुए।' * इन प्रभावित होनेवाले कवियों में हैं—मैथिली

* 'आस्वाद' (चयन): मैथिलीशरण गुप्त की भूमिका

शरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, गिरिधर शर्मा, सियारामशरण गुप्त, राय कृष्णदास, पारसनाथसिंह, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी और सुमित्रानन्दन पन्त। 'गीताञ्जलि' पर १६१३ में विश्व-सम्मान मिलते ही उसकी चिंताधारा हिन्दी में आने लगी थी। हिन्दी के मंदिर में भी वाणी की वीणा पर 'झंकार' की लहरियाँ उठने लगीं और एक नये युग के आगम का आभास मिला। रवींद्र-चिन्ता का हिन्दी में आगम उनके अनुवादों से प्रारंभ हुआ। सियारामशरण गुप्त और पारसनाथसिंह ने 'गीताञ्जलि' के गीतों की छाया हिन्दी कविता में दी। १६१८ के आसपास जब नयी पीढ़ी के कवि सुमित्रानन्दन पन्त का उदय हुआ तो उनमें रवींद्रनाथ का सा भावना-लोक देखा गया। 'वीणा' की झंकृतियों पर रवींद्र के भावों की मुद्रा है। रवींद्रनाथ ने एक गीत में गाया है—

> तोमार सोनार थालाय साजाव आज दुखेर अश्रुधार
> जननी गो गाँथव तोमार गलार मुक्ता-हार;
> तोमार बुके शोभा पावे आमार दुखेर अलंकार।

पन्त ने भी 'विनय' ('पल्लव') में लिखा:

> तेरा मञ्जुल हृदय हार हो अश्रुकणों का यह उपहार;
> मेरे सफल श्रमों का सार
> तेरे मस्तक का हो उज्ज्वल श्रम-जल मय मुक्तालंकार!

इसी प्रकार:

> वंशी-से ही करदे मेरे सरल प्राण औ सरस वचन।
> × × ×
> रोम रोम के छिद्रों से मा! फूटे तेरा राग गहन,

१. रवींद्र के

जीवन लये जतन करि
जदि सरल बाँशि गडि,
भरिया दिबे आपन सुरे सरल छिद्र तार !

की ही छाया है ! सियारामशरण के

जिस दिन तुम इस हृदय-कुंज पर अकस्मात छा जाओगे ।
करुणाधाराएँ बरसाकर सब सन्ताप बहाओगे ।

मुकुटधर पांडेय के

शून्य कक्ष के अथवा कोने में हो एक
बैठ तुम्हारा करूँ वहाँ नीरव अभिषेक

तथा गोकुलचंद्र शर्मा के

मुक्ति हाँ मुक्ति मुझे मिलजाय,
सिद्धि की युक्ति मुझे मिलजाय !
भजन-पूजन-आराधन में, योग-जपतप के साधन में,
देव-मदिर के अर्चन में, पूज्य प्रतिमा के चर्चन में
मिला है मुझे न उचित उपाय

में 'गीताञ्जलि' के गीतों की ही अनुकृति है। रामकृष्णदास की 'साधना' तो हिन्दी की गीताञ्जलि ही है।

'प्रतीकवाद'

हिन्दी में स्वतंत्र रूप से विकास पा रही संकेतात्मक और प्रतीकात्मक कविता ने धीरे-धीरे लाक्षणिक ध्वन्यात्मकता और सौंदर्यमय प्रतीक-विधान के द्वारा 'छायावाद' की प्रतिष्ठा के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था। मैथिलीशरण गुप्त की 'काले

बादल' कविता में 'कालों' के मनोभाव की ध्वन्यात्मक अभिव्यञ्जना है :

सरस हैं पर हम शक्ति विहीन नहीं;
आर्द्र होकर भी क्या घन पीन नहीं ?
देखलो, दाता हैं हम, दीन न हीं;
समय के साथी, किन्तु अधीन नहीं।
भरी है हममें—नस-नस में—बिजली;
किन्तु हम रखते हैं बस बिजली।

'सुमन' के प्रति कवि की अन्योक्ति भावी छायावादी शैली की भूमिका थी :

जब उदयाचल पर ऊषा ने प्रकटित अपना किया स्वरूप।
तब तुमने था मन्द हास से विकसित किया अनूपम रूप।

'पुष्पाञ्जलि' में मैथिलीशरण का हृदय झड़े हुए फूल के दर्शन से उच्छ्वसित हो उठा है :

मेरे आँगन का एक फूल
सौभाग्य भाव से मिला हुआ,
श्वासोच्छ्वासन से हिला हुआ,
संसार-विटप में खिला हुआ,
झड़ पड़ा अचानक फूल-फूल।

राय कृष्णदास के 'उद्बोधन' में 'आत्मतत्त्व' की ओर निर्देश है—

हे राजहंस, यह कौन चाल ?
तू पिञ्जर-बद्ध चला होने, बनने अपना ही आप काल।

बदरीनाथ भट्ट 'मनुष्य और संसार' के खेल को प्रतीक से व्यक्त करते हैं—

> सागर में तिनका है बहता—
> उछल रहा है लहरों के बल—'मै हूँ, मैं हूँ,' कहता।

इन 'अन्योक्तियों' और समासोक्तियों द्वार स्वानुभूतिमयी-अन्तर्भाव-व्यञ्जक (Subjective) कविता हिन्दी के मंदिर में प्रतिष्ठित हो गई थी। अंग्रेजी के प्रगीत मुक्तकों (Lyrics) की भाँति हिन्दी में भी अब प्रगीत-मुक्तको की रचना होने लगी थी। शेली के 'क्लाउड' (बादल) की ही भाँति पंत के 'बादल' भी बोलेः 'कड़क कड़ककर हँसते हम जब थर्रा उठता है संसार।* तथा वर्ड्सवर्थ के 'दॅन, सिंग यी बर्ड्स सिंग सिंग ए जॉयस सौंग'† के स्वर में मिला कर गाने लगे—'गाओ, गाओ, विहग-बालिके, तरुवर से मृदु-मंगलगान।' ('छाया') 'प्रसाद' के 'झरना' में पन्त को 'वीणा' में और राय कृष्णदास के 'भावुक' में उसकाल के प्रगीत मुक्तक संग्रहीत हैं।

मैथिलीशरण गुप्त का कवि अनन्त का 'यात्री' बनने का संकल्प करता है—

> रोको मत, छोड़ो मत, कोई, मुझे राह में,
> चलता हूँ आज किसी चंचल की चाह में!

---

*. I laugh when I pass by thunder.
(Cloud: Shelley)

†. Then sing ye birds, sing, sing a jöyous song.
(Wordsworth)

सुमित्रानन्दन पन्त की भावना-प्रवणता ने उस काल में छायावाद का शैशव दिया। उनके मुक्तकों में प्रकृति का एक चिरसौंदर्य मयी शक्ति के रूप में अंकन हुआ है; सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'जुही की कली' जैसी कविताओं में प्रकृति का मानवीय चेतना प्रदान की है। इन सब प्रक्रियाओं की पूर्ण परिणति 'छायावाद' के संसार में हुई। उसकी एक एक दिशा में एक एक लोक प्रकट हुआ और 'प्रकृतिवाद', 'हृदयवाद', 'अध्यात्मवाद', 'रहस्यवाद' आदि की सृष्टि हुई।

द्विवेदी-काल-चक्र

वि० सं०	ब्रजभाषा-काव्य	मुख्य घटनाएँ	खड़ीबोली-काव्य	ई० स०
१९५८				१९०१
'५९	'श्रान्त पथिक' (पाठक),			
	'धाराधर धावन' (पूर्ण)			'०२
'६०		'सरस्वती' के सम्पादक द्विवेदीजी हुए।		'०३
'६१	'काश्मीर सुखमा' (पा०);			
	'प्रेमपथिक' (प्रसाद)		'प्रेमपुष्पोपहार' (हरिऔध)	'०४
'६२			'शंकर सरोज' (शंकर).	
			'उपदेश कुसुम' (हरिऔध)	'०५
'६३		'स्वदेशी-आन्दोलन'	'उद्बोधन' (हरिऔध)	
			'आनन्द अरुणोदय' (प्रेमघन)	'०६
'६४		राधाकृष्णदास, बालमुकुंद गुप्त की मृत्यु		'०७
'६५				'०८
'६६	'काव्योपवन' (हरिऔध)			
"	'उर्वशी' चंदू (प्रसाद)	'इंदु' (काशी) का प्रकाशन	'रंग में भंग' (गुप्त) 'काव्योपवन' (हरि०)	'०९

'६७	'मर्यादा' (प्रयाग) का प्रकाशन	'जयद्रथवध' (गुप्त)	'१०
		'स्वदेशीकुंडल' (पूर्ण)	
'६८	'चित्राधार' (प्रसाद)	'चित्राधार' (प्रसाद)	'११
'६९		'पद्यप्रबंध' (गुप्त) : 'काननकुसुम' (प्रसाद)	
		'करुणालय' 'गीतिनाट्य' (प्रसाद)	
'७०		'वनाष्टक' पा. 'शंकर-सरोज' (शंकर)	'१२
	रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'गीताञ्जलि' पर नोबुल पुरस्कार का विश्व-सम्मान !	'अनुरागरत्न' (शंकर)	
'७१	प्रथम महायुद्ध का सूत्रपात	'प्रेमपथिक' (प्रसाद),	'१३
		'प्रियप्रवास' (हरिऔध)	
		'झरना' (१) (प्र०) 'महाराणा का महत्व (प्र०) 'भारत-भारती' (गुप्त)	
		'विरहिणी व्रजांगना' (गुप्त)	
		'मौर्यविजय' (सि० श० गुप्त)	
		'भारतगीताञ्जलि' (माधव)	'१४

'७२	'देहरादून' (पा०)	'पूर्ण' जी की मृत्यु	'झङ्कार' (गुप्त) 'प्रथवीर प्रताप' (गोकुल) १५
			'सूक्ति मुक्तावली' (रामचरित) ;
			'पद्यपुष्पाञ्जलि' (लोचनप्रसाद) '१५
'७३	'भारत-विनय' (मिश्रबन्धु)		'कृषक-क्रंदन' (सनेही)
			'पूजा-फूल' (मुकुटधर) '१६
७४			'अनाथ' (सियारामशरण)
			('किसान' गुप्त) 'कानन-कुसुम' (प्रसाद)
			'मिलन' (त्रिपाठी) '१७
'७५		सत्यनारायण कविरत्न की मृत्यु	'भारतगीत' (पाठक) 'वीणा' (पंत)
			की रचना 'झरना' (१) (प्र०),
			'चित्राधार' (प्रसाद) '१८
'७६			'पत्रावली' (गुप्त), 'वैतालिक' (गुप्त)
			'त्रिशूल तरंग' (त्रिशूल)
			'गर्भरंडा रहस्य' (शंकर) वायसविजय (शं०)
			गान्धी गौरव (गोकुलचन्द्र) '१९

'७७	'हृदय-तरंग' (सत्य० कविरत्न)	तिलक का स्वर्गवास	'ग्रंथि' (पंत) 'शकुन्तला' (गुप्त)
			'पलासीका युद्ध' (गुप्त)
		असहयोग का आरम्भ	'पथिक' (त्रिपाठी) 'वीरपंचरत्न' (दीन)
		'चौरी-चौरा काण्ड'	'रामचरित चिंतामणि' रामचरित)

'२०

[विशेषः 'बुद्धचरित' (शुक्ल) 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' (हरिऔध) 'वीरसतसई' (वियोगीहरि) आदि कुछेक काव्यों का प्रकाशन पीछे होते हुए भी उनका रचनाकाल प्रायः द्विवेदी-काल ही है]

क्रान्ति का तीसरा चरण

—'रेखा' की क्रान्ति—

'प्रसुमन'-काल

[१९२०—]

: १ :

कविता में 'रेखा' की क्रांति

भारतेन्दु-काल मे हिन्दी कविता ने चिर-दिन से चला आरहा अपना 'रंग'—भाव और विषय—बदला हुआ देखा था, 'रूप'—भाषा और छन्द—परम्परागत ही रहा था। द्विवेदी-काल में 'रंग' गहरा और विस्तृत हुआ, परन्तु 'रूप' का परिवर्तन इस काल की मौलिक देन है। इस नवीन काल में कविता की 'रेखा' बदलने जा रही थी। चित्र में जो स्थान 'रेखा' का है, वही यहाँ गृहीत है। चित्रकार की तूलिका का अङ्कन ही 'रेखा' है, वह चित्रकार की अभिव्यञ्जना पद्धति है, कविता में भी 'रेखा' यही अभिव्यञ्जना-पद्धति है। चित्रकार की रेखा उसकी 'शैली' है, भाव-प्रकाशन की प्रक्रिया है—कविता में भी 'रेखा' यही है।

रेखा — भारतेन्दु-काल और द्विवेदी-काल में काव्यगत-चित्रों की रेखाएँ ऋजु (सरल) थीं—उनकी भावाभिव्यक्ति की शैली सीधी—सुबोध थी, कोई बङ्किमा, कोई वक्रता उन्हें अपेक्षित न थी : वे अभिव्यक्ति में निपुण नहीं थे। द्विवेदी-काल के मध्य में यह अभिव्यक्ति की दक्षता आने लगी थी; परन्तु इस [illegible] इस नवीन काल मे हुआ। भावाभिव्यक्ति की शैली में बङ्किमा, वक्रता और निगूढ़ता इस काल की देन है। यह निगूढ़ता, रहस्यमयता इस काल की अन्तर्भावव्यञ्जक कविताओं में, विशेषतः छायावाद में अधिक परिस्फुट हुई।

संक्रांति-कालीन कविता में इस नई अभिव्यञ्जना शैली के लक्षण प्रकट होने लग गये थे, परंतु उसका पूर्ण विकास हुआ इसी नवीन काल की कविता मे। द्विवेदी-काल में किस प्रकार अन्योक्ति काव्य ने प्रतीकात्मक काव्य में परिणति पाई और बदरीनाथ भट्ट, राय कृष्णदास, मुकुटधर पांडेय और गुप्त-बन्धुओं

रहस्यात्मक कविताका विकास

की लेखनी से अनेक रहस्यभावना के गीत प्रसूत हुए यह दिखाया जा चुका है। भक्तिभावना के गीत भारतेन्दु काल से ही लिखे जारहे थे। पहले उनमें साम्प्रदायिकता थी--चाहे वह राधा-कृष्ण से सम्बद्ध हो, चाहे 'सनातन' धर्म से, चाहे वैदिक धर्म से। सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार ईश्वर की उपासना के ये गीत 'शंकर' और 'पूर्ण', 'प्रसाद' और 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह और बदरीनाथ भट्ट के कण्ठ से उद्गत होते रहे, जिनमें प्रायः देश-दशा का निवेदन और उसे सुखी-सम्पन्न करने की प्रार्थना रहती थी। बदरीनाथ भट्ट और राय कृष्णदास के गीतों (पदों) में रहस्यभावना का संकेत मिला था; यह संकेत भावों की संकेतवादिता में था। स्वाभाविक विकास-क्रम से अथवा रवीन्द्रनाथ के 'गीताञ्जलि' की शैली के गीतों के प्रभाव से 'रहस्य' का यह पुट इनमें आगया था। बँगला के गीतों और अंग्रेजी के भावात्मक प्रगीत मुक्तकों (Lyrics) के साहचर्य और संपर्क से धीरे-धीरे इनकी परिणति रहस्यात्मक गीतियों में हुई थी।

लोकभाषा खड़ी बोली हिन्दी को खड़ा करनेवाले महाप्राण आचार्य द्विवेदी जी ने अपनी दो दशाब्दियों की साधना से जिस कविता-युग को निर्माण किया था, उसमें अब वास्तविक यौवन आनेवाला था। अभी तक उन्होंने कविता को अपने पाँवों पर

खड़ा कर दिया था। अब तक उनके आदेशानुसार कवि ने 'चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा

नया मार्ग पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र-पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत' का सांगोपांग वर्णन किया था; परन्तु दो दशाब्दियों में अब चर्मचक्षुओं से दिखाई देनेवाला कुछ शेष रह नहीं गया था। अभी तक, महादेवी वर्मा के शब्दों में 'कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कह कर संसार भर का इतिहास कहना था,' परन्तु अब आचार्य द्विवेदी कवि को अन्तरंग की दिशा में ले जाने को प्रस्तुत थे। कवि स्वयं भी बाह्य-वस्तु-वर्णन से ऊबकर अन्तर्मुख हुआ और कविता का एक नया मार्ग खुला।

दो दशाब्दियों से पितृ-हृदय आचार्य द्विवेदी ने अपने स्नेहमय हाथों से जिस कविता का पालन-पोषण, संगोपन और सवर्द्धन किया, उसी "कविता का भविष्य" बताते हुए अब उन्हीं की लेखनी लिख रही थी—"कवि किसी भी मत का अनुयायी हो, कोई भी सिद्धान्त मानता हो, पर ज्योंही वह अपने सिद्धान्तों को पद्य-बद्ध करता है अथवा वर्ड्स्वर्थ या ड्राइडन के समान पद्यों में धार्मिक शिक्षा देना चाहता है त्योंही वह कवि के उच्च आसन से गिर जाता है। कवि का काम न तो शिक्षा देना है और न दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या करना है। उसके हृदय से तो वह गान उद्गत होना चाहिए जिससे समस्त मानव जाति की हृत्तन्त्री में विश्व-वेदना का स्वर बज उठे।"* द्विवेदी जी ने अपने ही हाथों से कितने ही वर्ड्सवर्थों और ड्राइडनों का निर्माण किया था और आज वे कह रहे हैं कि ऐसा कवि 'कवि के उच्च

---

* 'कविता का भविष्य' : 'सरस्वती,' सितम्बर, १९२०

आ ...न से गिर जाता है'! यह सब क्या है? क्या 'शंकर' और 'पूर्ण' 'हरिऔध' और गुप्त, रामचरित उपाध्याय और लोचन प्रसाद पाण्डेय जिनके कंधों पर उनका समस्त कीर्ति-भार अवलम्बित था, जिनके प्राणों की चेतना उस काल की कविता थी, क्या अब 'कवि' नहीं रह गये थे? नहीं, ऐसा समझना तो उस पिता के हृदय को न समझना होगा। वह गुरु तो शिष्य को अत्यन्त सावधानी से, नई-नई आशाएं दिखाता हुआ, नये-नये द्वार खोलता हुआ, क्रीड़ा-क्षेत्र का प्रसार करता हुआ उसे अनन्त भावक्षेत्र में ले जा रहा है। द्विवेदीजी अब हिन्दी कवि को इस योग्य मानते थे कि वह अन्तर्मुख होकर, अन्तर्जगत के द्वार खोल सके, बाहर न देखकर अन्तस् के 'रहस्यों' में झाँक सके, हृत्तन्त्री के तार झंकृत कर सके। वे जानते थे कि किस प्रकार आदितम काल में "कवि प्रकृति की देदीप्यमान शक्तियों का गान करते हैं। इसके बाद कवि वीरों का यशोगान करते हैं। इसके बाद नाटकों की सृष्टि होती है। फिर शृंगार-रस पर काव्य-रचना होती है, भाषा का माधुर्य बढ़ता है, अलंकारों की ध्वनि सुन पड़ती है और पद-नैपुण्य प्रदर्शित किया जाता है। इसके बाद सांसारिक विजयों से घृणा होती है। भक्ति के उन्मेष में कोई प्रकृति का आश्रय लेता है, कोई प्राचीन आदर्शों का।"* यहाँ तक आचार्य ने अपने काल तक की कविता की प्रगति का आलेखन किया है और इसके आगे भावी की रेखा खींची है: 'बाह्य प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है। तब साहित्य में कविता का रूप परिवर्तित हो जाता है। कविता का लक्ष्य 'मनुष्य' हो जाता है। संसार से दृष्टि

* 'कविता का भविष्य'': महावीर प्रसाद द्विवेदी: सरस्वती सितम्बर १९२०

हटाकर कवि व्यक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। वह सान्त में अनन्त का दर्शन करता है और भौतिक पिण्ड में असीम ज्योति का आभास पाता है। भविष्य कवि का लक्ष्य इधर ही होगा।" §

'एवमस्तु' आचार्य को सुननेवाले कवि ने कहा और हिन्दी कवि संसार से दृष्टि हटाकर व्यक्ति पर ध्यान देने लगा। वह विषयसाधक न बनकर भावसाधक बन गया। उसे आत्मा का रहस्य ज्ञान हुआ और वह सान्त में अनन्त का दर्शन करने और भौतिक पिण्ड में असीम ज्योति का आभास पाने लगा—यहीं आत्मगत Subjective) कविता का बीज है; यहीं अध्यात्मवाद के रंग में रँगे हुए छायावाद-रहस्यवाद की मूल प्रेरणा है। 'बाह्य

भावक्षेत्र में प्रतिक्रिया

प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत की ओर दृष्टिपात करता है।' आचार्य द्विवेदी के इन्हीं शब्दों में 'छायावाद' का रहस्य अन्तर्निहित है। 'छायावाद' को जो आलोचक 'बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर आत्मबद्ध अन्तर्मुखी साधना' की संज्ञा देते हैं (नगेन्द्र) अथवा जो इसे 'प्रकृति में चेतना की अनुभूति और प्रणय व्यापार' ('मानव') अथवा 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहते हैं, वे कोई नई बात कहते नहीं; वे उसकी व्याख्या ही करते हैं।

इस 'छायावाद' के अनुरूप, अप्रस्तुत की ओर संकेत करने वाले अप्रस्तुत 'प्रतीकों' की सृष्टि हुई और चित्रभाषा बनी। इस रूढ़ चित्रभाषा को ही कुछ लोग 'छायावाद' कहकर पुकारने लगे, जो भ्रांतियों का कारण हुआ। तो, यह हुई भावक्षेत्र में प्रतिक्रिया—बहिरंग से अंतरंग की ओर।

---

§ कविता का भविष्य' : महावीरप्रसाद द्विवेदी : 'सरस्वती,' सितंबर १९२०

एक दूसरी प्रतिक्रिया हुई अभिव्यञ्जना के स्वरूप में। अब तक कवि वस्तु-जगत का, बहिर्जीवन का तिल-तिल देख चुका था, हृदय की अपेक्षा शरीर को आहत कर चुका था, जीवन के प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले सब पक्ष वर्ण्य हो गये थे, जीवन का एक पक्ष अभी तक अस्पृश्य बना हुआ था—अन्तर्जगत। मनुष्य के मन में भी अज्ञात कोने हैं, जिनमें गणनातीत अज्ञेय, अव्यक्त भाव और भावनाएँ स्पंदित होती हैं, इनका अव्यक्त किन्तु चेतन सूत्र समग्र सृष्टि से जुड़ा हुआ है। वस्तुगत 'सौंदर्य' अभिव्यंजना की और इनके अन्तर्निहित 'रहस्य' की प्रेरणा कवि प्रति क्रिया : को आमंत्रित करती है। इन्हीं 'अन्तर्निहित रहस्यों' की ओर चलने का अवकाश और अवसर कवि-प्रतिभा को अब मिला। मनुष्य जब बाहर देखता है तो 'वर्णन' के लिए उत्सुक हो जाता है, भीतर झाँकता है तो भीतर ही भीतर आनन्दोल्लास में मग्न होकर या व्यथा-वेदना में विकल होकर रह-रह जाता है। तभी उसकी अभिव्यक्ति और अभिव्यंजना गीतात्मक होती है। संसार के साहित्य में गीतों की सृष्टि इसी प्रकार हुई है। 'सुख दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।' 'गीत-सृष्टि शाश्वत है। समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार है। इसी अशब्द संगीत से स्वर-सप्तकों की भी सृष्टि हुई। समस्त विश्व स्वर का ही पुंजीभूत रूप है।' प्राणी के हृदय की भावात्मक आत्मानुभूति संगीत के रूप में प्रस्फुटित होती है। यह तब होता है जब वह आत्मगत—अन्तर्मुख होता है। इस काल में कवि अन्तर्मुख था, क्योंकि बहिर्मुख तो वह चिर-दिनों से इतना रह चुका था कि उससे ऊब होनी ही चाहिए थी। कविता का सम्बन्ध आत्मा की संस्कृति—हमारे संस्कारों से है, भाव-जगत् से है।

गीति काव्य की भूमिका

जिस सीमा तक समाज और युग के संस्कार बन चुके होते हैं, उस सीमा तक इन्हें अर्जित करने में नई पीढ़ी को आयास नहीं करना पड़ता। उदाहरण के लिए भक्तियुग में जन्म लेने वाले कवि के संस्कार ही भक्ति के होंगे और वह गीतों में ही अपनी अभिव्यक्ति करेगा। शैशव अथवा बाल्यकाल में कवि की मानसभूमिका जिस 'संस्कार' में निर्मित हुई होगी, उसी में वह प्रतिभा को प्रकाश देगा। जयशंकर 'प्रसाद', सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी आदि आनेवाले कवियों के लिए 'छायावाद' और गीतिकाव्य के लिए भूमि प्रस्तुत थी। जिस काल में इतिवृत्तवादी कवि रहस्य के संकेत काव्य में देने लग गये थे, जिस काल में इतिवृत्तवादी कवि गीति की ओर झुके जारहे थे, उस काल की नई प्रतिभा को उधर ही जाना था। इस छायावाद और गीतिकाल की कविता की यह भूमिका थी

इस नये काल में 'प्रसाद' ब्रजवाणी के भक्ति और प्रेम के कवि होने के कारण कविता में सूफी ढंग का आध्यात्मिक रहस्यवाद लाये। सुमित्रानन्दन पन्त को कविता करने की प्रेरणा 'प्रकृति-निरीक्षण' से मिली थी। उन्हीं से शब्द लें तो "कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।" इसलिए उनकी कविता में प्रकृतिमूलक रहस्यवाद है। महादेवी वर्मा, जैसा वे कहती हैं, 'भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण' और एक अवर्णनीय सुखमिश्रित वेदना में पली होने के कारण

वेदनावादी रहस्यवाद की विधायिनी हुईं। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' वेदान्त के प्रभाव से दार्शनिक रहस्यवाद के कवि हुए। 'प्रसाद' ने प्रेम, सौंदर्य और यौवन के प्रोज्ज्वल चित्र दिये, पन्त ने प्रकृति की सी कल्पना और कोमलकान्त भाषा दी, महादेवी ने वेदना की मधुरिमा और अनुभूति की कोमलता दी और निराला ने यौवन का पौरुष और निर्बन्ध गति (छन्दविधान)। इन्हीं चार नेताओं के पथ पर इस नवीन काल के कवियों ने 'प्रसुमन' काल संचरण किया है, अतः इस काल का नामकरण इन्हीं चारों के नाम से होगा। जयशंकर 'प्रसाद' सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा निर्मित इस काल को 'प्रसुमन' काल कहना चाहिए :

प्र : प्रसाद

सु : सुमित्रानन्दन पन्त

म : महादेवी

न : 'निराला'

श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम में, विचित्र संयोग से काल के सभी प्रमुख कवियों—(श्री) श्रीधर पाठक, शंकर; (म) मैथिलीशरणगुप्त मुकुटधर, (ह) हरिऔध, (वी) बदरीनाथ भट्ट, वियोगी हरि; (र) रत्नाकर, रामचरित उपाध्याय, रामचन्द्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय; (प्र ('प्रेमघन', पदुमलाल पुन्नालाल, पारसनाथसिंह, 'पूर्ण', (स) 'सनेही', सियारामशरण; (द) ''दीन', देवीप्रसाद—के नाम सन्निविष्ट है। कुछ इसी प्रकार 'प्रसुमन' में काल के कई कवियों जैसे 'प्रेमी' सियारामशरण सुभद्राकुमारी, सुमन (रामनाथलाल : शिवमंगल

सिंह,) सुमित्रा, सोहनलाल, सुधीन्द्र, 'माखनलाल' मिलिन्द, मैथिलीशरण, नवीन, नगेन्द्र नरेन्द्र के नामों के प्रथमाक्षर अन्तर्भूत हो गये हैं। क्या इन प्रसुमनों के प्राणों से बने हुए इस काल को 'प्रसुमन' काल कहना अनुचित होगा। भाई शांतिप्रिय द्विवेदी ने इस काल को गांधी-रवीन्द्र-काल कहना चाहा है, परन्तु 'गांधी-काल' राजनीति में तो हो सकता है, साहित्य में उसके लिए स्थान कहाँ ? 'रवीन्द्र हिन्दी के अपने नहीं हैं। वगकाव्य में यह नाम अधिक उचित होता। 'छायावाद' काल भी इसे कहा गया है, परन्तु 'छायावाद' तो काव्य की एक प्रवृत्ति है। 'राष्ट्रवाद' और 'प्रगतिवाद' की धाराओं को इसमें कहाँ समेटेंगे ? 'प्रसुमन' में 'राष्ट्रवाद' और 'प्रगतिवाद' दोनों के प्रतिनिधि कवि आगये हैं। नामकरण की यह पद्धति विचित्र तो अवश्य है, परन्तु बेसिक (BASIC) और पेन (PEN) नाम भी तो इसी प्रकार पड़े हैं। इण्डो-योरोपियन का भी तो हिन्दी के मनीषियों ने 'भारोपीय' ही अनुवाद किया है। यह काल ही विचित्र है, इस काल का विचित्र नाम—प्रसुमन काल—ही क्यों न स्वीकृत हो ?

: २ :

जीवन की भूमि और कविता

साहित्य मानव-संस्कृति के प्राणों की चेतना है। वह एक ओर मनुष्य-जीवन के भौतिक पक्ष से बँधा हुआ है और दूसरी ओर उसका सूत्र आत्मा के तारों के साथ भी जुड़ा हुआ है। वह मनुष्य के भावों और विचारों का सच्चा आलेखन है। वह हृदय की भावना है और मस्तिष्क की चिन्ता भी। वह राजनीति समाजनीति से और धर्मनीति से सदैव अनुप्राणित होता है। राजनीति में वह चलता है, राजनीति उसकी गति है, समाज-नीति में वह पलता है, समाजनीति उसकी मति है, धर्मनीति में वह ढलता है, धर्मनीति उसकी रति है।

भौतिक पक्ष

मानव समाज के विकास क्रम में पहले 'काम' का फिर धर्म का और फिर अर्थ, का प्रभुत्व रहा है। 'मोक्ष' का क्रम इसके पश्चात् आता है, आदिम स्थिति में समाज 'काम' से परिचालित रहता है। धर्म-अर्थ-निरपेक्ष कामनाएँ उसे प्रेरित करती हैं। विकास की दूसरी स्थिति में 'धर्म' जीवन का शास्ता हो जाता है। संसार के इतिहास मे 'धर्म' ने महान् क्रान्तियाँ की हैं। यूरोप में हुये धार्मिक विप्लवों से इतिहास परिचित है। धर्म के झण्डे के नीचे लोमहर्षक रक्तपात हुए हैं और साम्राज्यों में उथल

हुआ है। भारत में बौद्ध और ब्राह्मण धर्म और उसके अनन्तर हिन्दू और इसलाम धर्म के संघर्ष इतिहास के सत्य हैं। भारत में आज भी धर्म की चेतना 'पाकिस्तान' का प्रश्न उठा रही है। यह समाज के पिछड़े हुए होने की ओर इंगित है। 'अर्थ' में भूमि, राज्य और धन सब भौतिक सम्पत्ति समाविष्ट है। भारत अर्थराज्य की ओर बढ़ रहा है। रूस 'अर्थराज्य' की स्थिति में है। 'मोक्ष' की ओर अभी तक पृथ्वी पर कोई समाज नहीं पहुँचा।

भारत की जातीय चेतना भी इसी प्रकार परिवर्तनों में से ढलती आई है। पृथ्वीराज से लेकर शिवाजी तक की जातीयता आज हिन्दू जातीयता प्रतीत होती है। पृथ्वीराज और प्रताप, जातीय चेतना और गुरु गोविन्दसिंह, दयानन्द और सावरकर उसी जातीय चेतना के स्पन्दन हैं। यह जातीयता की चेतना कांग्रेस की स्थापना तक खींचकर लाई जा सकती है—बीच में होनेवाला १८५७ का विद्रोह हिन्दूविद्रोह, नहीं राष्ट्रीय विद्रोह था। समस्त द्विवेदी-कालीन जीवन जातीयता और राष्ट्रीयता का संक्रान्ति काल है। जातीयता की चेतना ही उसमें अधिक प्रबल है। 'भारत भारती' जातीय प्रभाती है। मैथिलीशरण, रामचरित उपाध्याय, 'दीन', सनेही आदि की कविता में दयानन्द की 'राष्ट्रीयता' है, क्योंकि उसका मन्त्र है—'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान वह गांधी की मानववादी राष्ट्रीयता नहीं है। गांधी ने सबसे पहले भारत को यह विशाल-हृदय राष्ट्रीयता दी। गांधीजी ने साम्प्रदायिक घोषणा, खिलाफत आन्दोलन आदि के समय भारत को शुद्ध मानववाद के पथ पर चलाया।

भारतीय राजनीति सदैव विदेशी सत्ता से सञ्चालित रही। सत्तावन का विप्लव राष्ट्र के आंशिक विद्रोह का चिह्न था। अठा-

राष्ट्रीय चेतना की प्रगति

रह सौ पचासी ईसवी में कांग्रेस की स्थापना के समय विद्रोह की वह भावना भी न रह गई थी। केवल शासनाधिकारों पर ही हमारा आग्रह रहा। वही आग्रह धीरे धीरे 'होमरूल', औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वाधीनता के आग्रह में रूपान्तरित और पर्यवसित होता गया है। यही आग्रह १६२१ से ४२ तक के आन्दोलनों—असहयोग, सत्याग्रह (व्यक्तिगत और सामूहिक) और स्वतन्त्रता के 'अन्तिम संघर्ष' के रूप ग्रहण करता रहा है। १६४२ से भारत-राष्ट्र की माँग' पूर्ण मुक्ति की हो गई है—'भारत छोड़ो' अब उसका जयघोष है और उसका माग है विद्रोह—१६४२ हमारा 'खुला विद्रोह' था। इस काल की कविता राष्ट्रीयता के इसी जागरण का स्पन्दन रही है।

भारतीय समाज में पूँजीवाद पर खड़े हुए अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रताप से सन् ५७ के पश्चात् कई वर्ग स्थापित हो गये—(१) सामन्त और पूँजीपतिवर्ग (२) शिक्षित-मध्यवर्ग (३) श्रमिक और कृषकवर्ग को सदैव शोषित और पीड़ित किया है। भारतेन्दु काल में इस वर्ग में से किसान पर कवि की दृष्टि उनके प्रति आर्द्र ही है। उसमें उन्हें अनुप्राणित करने की प्रेरणा नहीं है। भारतेन्दु काल की 'भारत दुर्दशा' निरन्तर बढ़ती गई है और द्विवेदी काल तक का कवि उसको दुःख भरे हृदय से अनुभव करता रहा है। इसी बीच यदि शिक्षित-वर्ग द्वारा कांग्रेस के मञ्च से राष्ट्रीय अधिकारों की माँग न हुई होती, तो सम्भवतः किसानों का नेतृत्व करने वाली शक्ति प्रकट हुई होती। भारतीय-राजनीति के उच्च शिक्षित वर्ग के हाथ में आजाने से किसानों के शोषण की समस्या जनता की आँखों से ओझल हो गई है। यदि किसान के ऊपर कोई मान्यता रही है तो केवल स्निग्ध-सहानु-

भूति के ही रूप में प्रकट हुई है। गांधीजी के राजनीतिक मञ्च पर आते ही पहली बार किसानों की ओर समूचे राष्ट्र का ध्यान

किसान   गया है और किसान दुर्बलता नहीं, वरन् एक

एक शक्ति   शक्ति के रूप में पहचाना गया है। चम्पारण, खेड़ा, बारडोली, बोरसद किसानों के ही बल के प्रतीक हैं। इस प्रकार मध्यवर्ग का आन्दोलन जन-शक्ति को साथ लेकर चलने लगा। भारत के कृषि-प्रधान देश होने के कारण किसान ही आन्दोलनों की रीढ़ रहे। किसानों के पीड़न और शोषण को उनके जीवन और जागरण को इस काल के कवि ने कथाओं में गाया है।

गांधीजी के राष्ट्ररचना के अनेक तत्त्व ग्राम, आर्थिक स्वावलम्बन (खादी, चरखा, स्त्री-शिक्षा आदि) इस काल की कविता में जब-तब मुखरित होते रहे हैं। हमारी अर्थनीति का जो स्वरूप गांधीजी ने प्रस्तुत किया है वह गांधीवादी काव्य 'साकेत' में प्रतिबिम्बित हुआ है। राजा का प्रजा से सम्बन्ध राष्ट्र का परराष्ट्र से सबन्ध, परराष्ट्र के अनुक्रमण के समय राष्ट्र का धर्म, राष्ट्रसत्ता के लिए हिंसा अथवा अहिंसा ? आदि आदि आज की राजनीति के ज्वलन्त प्रश्नोंने इस काल के कवि को व्यथित किया है और उसने अपने काव्य में इनका उत्तर देना चाहा है।

राजनीतिक जगत में गांधीजी ने मानव-प्रेम (अहिंसा) को जीवन का मंत्र बनाने का पदार्थ-पाठ दिया। गांधी के अहिंसा-शास्त्र में 'शत्रु' नाम मिट गया। व्यावहारिकता के लिए 'अहिंसावाद'   'विपक्षी' शब्द स्वीकार किया गया। विपक्षी से घृणा नहीं प्रेम, उसके प्रति सक्रिय नहीं, निष्क्रिय प्रतिरोध, उसपर

बल-प्रयोग नहीं, त्याग और कष्टसहन द्वारा उसका हृदय-परिवर्तन यह अहिंसा का गांधी-दर्शन बना। रक्त-पान के बदले रक्त-दान, सशस्त्र विद्रोह के बदले अहिंसक सत्याग्रह—युद्धनीति के साधन स्वीकृत हुए। कारागार कृष्णमन्दिर बने और सत्याग्रही उसके पुजारी, भारत-राष्ट्र की स्वतन्त्रता का युद्ध अहिंसात्मक युद्ध हुआ।

गांधीजी की अहिंसा 'सत्य' का साधन है। उनकी राजनीति तो उनके मुक्ति मार्ग की एक मञ्जिल है। तुलसी और कबीर, तुकाराम और नरसी, रस्किन और टालस्टाय गांधीजी के जीवन के पथ-प्रदर्शक थे। भूतहितवाद और मानववाद की आधार-'सर्वोदयवाद' भूमि पर उन्होंने अपने अहिंसक रामराज्य और 'मानववाद' सर्वोदयवाद का विकास किया, जिसमें सब राष्ट्रों, वर्णों, जातियों, और वर्गों का सामूहिक उत्थान निहित है। संसार को यह नवीन संदेश देकर गांधी विश्वविभूति और महा-मानव बने। पूर्व और पश्चिम के मनीषियों ने उन्हें नवीन अमिताभ के रूप में चित्रित किया। कर्मवीर से कर्मयोगी और महात्मा से सन्त पद उन्होंने अर्जित किया। भारतराष्ट्र उन्हीं के अंगुलिनिर्देश पर अपना मार्ग बनाता आया है। इस काल की राष्ट्रीय कविता गांधी के सर्वोदयवाद और मानववाद से अनुप्राणित है; वह गांधी युग की कविता है।

नैतिक पक्ष

अपने पूँजीवादी उद्देश्यों के लिए विदेशी सत्ता ने जो साम्राज्यवादी और साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए जो पूँजीवादी (आर्थिक) शोषण किया, उससे वस्तुजगत् अनेक हाहाकारों और क्रन्दनों से भर गया, दीनता और दरिद्रता का ताण्डव नित्य की घटना होगया। इस शोषित-वर्ग के प्रति सहानुभूति जाग्रत हुई कहीं सौम्यरूप में, कहीं उग्ररूप में। कभी पद्य-कहानियों में और रूपकों में और कभी काव्यों और गीतियों में हृदय की सहानुभूति प्रकट हुई और कभी शोषक के प्रति आक्रोश और विद्रोह की ध्वनि। समाज के आर्थिक शोषण के सजीव फल—भिक्षुक, कृषक, श्रमिकवर्ग के प्रति कवियों का अन्तस् आर्द्र हुआ। भूख और रुदन, स्वेद और श्रम, आह और कराह कविता में मुखरित हुए।

राजनीति में जिस प्रकार समता, स्वतन्त्रता और सौहार्द की माँग है, उसी की प्रतिध्वनि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी पहुँची

समानाधिकार की पुकार

और समाज के युग-युग के क्रूर-बन्धन, जिनमें जीवन की समस्त क्षमताएँ और वासनाएँ किसी न किसी रूप में दबी हुई थीं, तोड़ने की पुकार हुई। पारिवारिक जीवन में 'नारी' और सामाजिक जीवन में 'अछूत', 'कृषक' और 'मजदूर' के समानाधिकार का स्वर उठा। वर्तमान् विधि-विधान से असन्तोष, उसके प्रति विद्रोह और भविष्य के निर्माण का संकेत कवियों ने अपनी कविताओं में भरा। यूरोप में पश्चिमी और पूर्वी अञ्चलों में जो जन क्रान्तियाँ होती रहीं, उन्हें भारतीय जनता देखती रही और उन्हीं के सहारे अपना भावी स्वप्न रचती रही। रूस में श्रमिकों ने क्रान्ति की और स्वप्न-स्रष्टा कवि श्रमिकों के मन में क्रान्ति के

बीज बोने लगे। आर्थिक विषमता पर दैवी वरदान के रूप में 'समाजवाद' और 'समष्टिवाद' का चित्र दिखाई दिया और हिंदी कवियों ने भी उसके जयघोष में स्वर मिलाया। सौम्य कण्ठों ने त्याग और उत्सर्ग की प्रशस्तियाँ गाईं, उग्रकण्ठों ने विरोध, विद्रोह और विप्लव जगाया। ये दोनों विरोधी प्रक्रियायें भिन्न होकर भी एक ही बीज के दो अंकुर हैं। दलित, पराजित, शोषित, उत्पीड़ित वस्तुजगत को नष्ट-भ्रष्ट कर देने की बाह्य प्रेरणा उत्पन्न हुई और जीवन के आन्तरिक (Subjective) और व्यक्तिगत पक्ष की ओर से असफल व्यक्ति के अवचेतन और उपचेतन की छाया भी उसमें मिली और फलतः कविता में ज्वाला प्रकट हुई और एक प्रकार का निष्क्रिय आक्रोश, निष्क्रिय रोष और असन्तोष दिखानेवाला 'ध्वंसवाद', 'प्रलयवाद', 'विप्लव-वाद', 'अग्निवाद' प्रकट हुआ।

वैयक्तिक स्वतन्त्रता

आज के क्षणों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भावना उग्र है। राजनीति में इसने 'समानाधिकार' का स्वर दिया है और समाज-नीति मे 'स्वच्छन्द आचरण' का। एक चित्र के ये दो पक्ष हैं। समाज से निरपेक्ष व्यक्ति का भी एक संसार है और उसका अधिकार उसके पास अक्षुण्ण रहे, यह आकांक्षा उसमें जाग्रत हुई। अपनी आशाओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं और आवश्यकताओं का व्यक्ति स्वयं प्राथमिक और अन्तिम निर्णायक है, यह वृत्ति अमङ्गलकारिणी है और काव्य में इसका कुप्रभाव पड़े बिना न रह सका। वैयक्तिक स्वतन्त्रता नैतिक विधानों की पोषक होकर ही शुभ हो सकती है, अनैतिक रीति-नीति समाज में उच्छृ-ङ्खलता बन जाती है और उस पर प्रतिबन्ध की आवश्यकता

होती हैं। जहाँ तक आत्मबोध, स्वाभिमान और आत्मचेतना का सम्बन्ध है यह व्यक्तिवाद श्रेय है, जहाँ यह उच्छृङ्खलता, अनैतिकता, अश्लीलता को छूता है वहाँ हेय।

समाज-सापेक्ष नैतिकता के भी मान धीरे-धीरे बदलते जारहे हैं। एक ओर 'पुण्य पुरातन' नैतिक और धार्मिक आचारों का स्मरण और आग्रह और दूसरी ओर 'जग के जड़ बन्धन' को ध्वंस-भ्रंश करने की कामना इस संक्रान्तिकालीन स्थिति के ही परिचायक हैं। पश्चिमी (अंग्रेजी) शिक्षा के सहारे पश्चिमी सभ्यता के नैतिकता और धार्मिकता के मानदण्ड यहाँ आये और हमारी मनोभूमि में प्रविष्ट हुए। परम्परागत नीतिविधान से बौद्धिक असन्तोष इसमें फूट पड़ा। यही बौद्धिक असन्तोष 'छायावाद-रहस्यवाद', 'राष्ट्रवाद' और 'प्रगतिवाद' की धाराओं में घुलता-मिलता दिखाई दिया।

नैतिक मानदण्ड

चिर-प्रतिष्ठित भारतीय संस्कृति से विच्छिन्न संस्कृति के संसर्ग से हमारे 'जग के जड़ बन्धन' भस्मसात् होने से रूढ़िवादिता तो नष्ट-भ्रष्ट हुई परन्तु जीवन दूसरी गर्हित प्रणालियों में बह निकला। पुरुष और स्त्री के कामबन्धनों से समाज अविच्छिन्नरूप से सम्बद्ध है। संस्कृति और सभ्यता ने युगों से विकास की ओर बढ़ते हुए जिन बन्धनों को माना उन्हीं की संज्ञा नैतिकता है, उन्हीं का नाम परिणय (विवाह) है, उन्हीं बन्धनों के तारतम्य और सामञ्जस्य ने स्नेह, वात्सल्य, प्रीति, प्रणय और प्रेम को भिन्न-भिन्न रङ्ग दिया है। स्वतन्त्रता—वैयक्तिक हो अथवा सामूहिक—उच्छृङ्खलता तो क्या 'स्वच्छन्दता' से भी अत्यन्त दूर है।

पश्चिम के स्वच्छन्द जीवन के आकर्षक रूप ने भारतीय शिक्षित-वर्ग को आकर्षित किया और 'स्वतन्त्रता' के नाम पर अनैतिकता के अनेक मार्ग खुले।

अनियन्त्रित आचार-व्यवहार अन्ततः सामूहिक और सार्वभौम विशृंखलता में ही प्रतिफलित हो सकता था। पश्चिमी प्रकाश का यह दुष्प्रभाव तो हमें निस्संकोच स्वीकार करना होगा। उचित मर्यादाओं के साथ हमारी विचार-धारा बदलती, तो यह विरूपता न आने पाती। भक्ति का मंदिरव्यापी रूप हमने छोड़ कर मानवव्यापी कर लिया, यह तो संकुचितता से विस्तार की ओर ही जाना हुआ, विवाहों के 'कन्यादान' और 'पाणिग्रहण' अनुष्ठान को बहिष्कृत करके 'स्वयम्वर' और 'जयमाला' को अङ्गीकृत किया यह भी एक प्रकाश की दिशा थी, परन्तु पैशाचविवाह गन्धर्व-विवाह और आसुर-विवाह तथा 'प्रेम-परिणय' और 'परित्याग' के प्रचलन ने समाज को 'स्वर्ग' बना दिया हो ऐसा मानना आत्मवञ्चना होगी सहशिक्षा, सहचरण, सहजीवन स्वस्थ परिस्थितियों के बीच मे कल्याणकर होंगे और अस्वस्थ परिस्थितियों में अकल्याणकर। प्रेम जहाँ तक मन की शाश्वत और चिरन्तन वृत्ति रहता है वह 'सत्य' का प्रतिनिधि, आत्मा का बल और पौरुष बना रहता है। उसके आगे 'उदयास्त का राज्य' भी नगण्य है; तब वह अभिनन्दनीय बन जाता है, परन्तु जब वह मन की अस्वस्थ और कुत्सित वासना का प्रतीक होता है तो वही हमारी आत्मा की दुर्बलता और कायरता बन जाता है, तब उसके लिए हमें लज्जित होना पड़ता है।

जीवन के यथार्थ चित्रण ने लज्जा के समस्त आवरण उतार कर फेंक दिये और वह नग्नता की सीमा तक पहुँचा। कला को

नीति-निरपेक्ष और 'स्वान्तः सुखाय' बतलाकर इसकी दुहाई दी गई। वस्तुतः कला 'सौंदर्य-बोध की अभिव्यक्ति' है, परन्तु सौंदर्य स्वयं एक शिव-सापेक्ष वस्तु है। सुन्दर-असुन्दर भी आन्तरिक और बाह्य, विषयगत और विषयीगत परिस्थितियों से निरूपित होता है। आन्तरिक परिस्थिति में अनुभावक का संस्कार, सौंदर्य-बोध की कोटि, मनःस्थिति-जन्य संवेदना परिगणित होती हैं और बाह्य परिस्थिति में नैतिकता का मापदण्ड, वस्तु का शिवत्व आदि समाविष्ट हैं। दोनों के समन्वय और सन्तुलन से 'सुन्दर' की स्थापना है।

आध्यात्मिक पक्ष

धर्म हमारे 'अभ्युदय' और 'निश्रेयस' का साधन है—'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म'—यह मानते हुए भी उसे मंदिर मस्जिद, राम और रहीम, पूजा और नमाज आध्यात्मिक-भावना में सीमित मानते रहने से, उसके मर्म-पक्ष को उपेक्षित करके कर्म-पक्ष पर अधिक आग्रह रखने से, विश्रृंखलता और विरूपता हुई। भारत में हिन्दू-मुसलमानों में कितनी बार भयङ्कर दंगे हुए और राष्ट्र-हृदय सिहर उठा। राष्ट्र के नियन्ता ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता को राष्ट्रीय धर्म की संज्ञा देकर उसके लिए प्राणों का भी बलि देना स्वीकार किया और राष्ट्रचना के इस पुण्यकार्य में कवि ने अपना कलात्मक योग दिया।

भक्ति का रूढ़ स्वरूप नई सभ्यता के प्रकाश में तिरोहित हो रहा था। रवीन्द्रनाथ ने 'वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय'

वैराग्य-साधन से मुक्ति। वह मेरी नहीं है।।—की चिन्ताधारा प्रवर्तित की और 'नैवेद्य' की यह उक्ति चरितार्थ हुई—

असंख्य बन्धन माझे महानन्द मय
लभिब मुक्तिर स्वाद।.........

ईश्वर का रहस्यात्मक आलोक में चिरप्रेमी के रूप में दर्शन हुआ या दलित-पीड़ित मानवता में—

जेथाय थाके सबार अधम दीनेर हते दीन
सेइखाने जे चरण तोमार राजे
सबार पिछे, सबार निचे सब हारादेर माझे।
('गीताञ्जलि')

अब भक्ति का कर्म-पक्ष उपेक्षित होकर मर्म-पक्ष, भावपक्ष, ही अङ्गीकृत हुआ। इस काल की अनेक रहस्यवादी और राष्ट्रीय रचनाओं में भक्ति की यही नूतन भावना घुली-मिली दिखाई देती है।

रवीन्द्र और गांधी की आध्यात्मिकता

१६१४-१५ से भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर गांधी-नक्षत्र का उदय हुआ और उसने कुछ ही वर्षों में अपने वाणी, विचार और आचार से भारतीय जीवन को आच्छादित कर लिया। गांधी केवल राजनीति में ही नये दर्शन के मन्त्रदाता नहीं हुए वरन् समाज-नीति और आध्यात्मिक जगत् में भी 'गुरु' बने। वे सर्वांग-सम्पूर्ण जीवन के विधाता हुए। महात्मा गांधी के मानववाद का, जो वैष्णव भक्ति में से फूटा था (वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे—

नरसो महता), प्रभाव हिन्दी कविता की आत्मा में प्रविष्ट हुआ और भक्तिपरक कविता की सृष्टि हुई। इस भक्तिपरक कविता की चिन्ता-धारा तुलसी या मीरा की भाव-पद्धति पर न चलकर कबीर और जायसी की भावभूमि पर चली क्योंकि नवीन पीढ़ी के बुद्धिवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ईश्वर का सगुण रूप अन्तर्द्धान होकर निर्गुण और निराकार बन गया। वंगभूमि में रवीन्द्रनाथ की कविता ने वैष्णव सन्तों की धार्मिक चेतना से स्फूर्ति ग्रहण की थी और वे चण्डीदास की भाव-सरणि पर चले थे। उनकी 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' में चण्डीदास की ही आत्मा बोलती है। वही चिन्ता-धारा अंग्रेजी कविता के योरोपीय भाव-व्यंजना के माध्यम से एक विलक्षण आध्यात्मिक रूप लेकर प्रकट हुई जो एक ओर मानववादी भूमि को स्पर्श करती थी तो दूसरी ओर अज्ञेय, अरूप, शक्ति की अलौकिक भूमि को। इस भावना में प्रणय की सी उत्कटता थी परन्तु शब्दावली परिवर्तित थी। इस प्रकार की धार्मिक भक्तिभाव वाली आध्यात्मिक कविता कबीर के अधिक निकट पहुँची। गांधी और रवींद्र दोनों की आध्यात्मिकता यहाँ मिलकर एक होगई।

द्विवेदीकाल में भी भक्तिपरक कविता का अभाव नहीं रहा। परन्तु उस भक्ति-भावना का स्वरूप दूसरा था। प्रारम्भ में जिस समय भारतीय जीवन में स्वामी दयानन्द आदि ने धार्मिक-सामाजिक क्रान्ति का बीज बोया, उस समय जाति ने अपने शताब्दियों के रूढ़िवादी विचारों को छिन्नभिन्न करना प्रारम्भ किया। मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, पूजा-पाठ आदि धार्मिक प्रवृत्तियों का जाग्रत मस्तिष्क ने विरोध किया। पश्चिम के वैज्ञानिक भौतिक बुद्धिवाद ने इस मानसिक क्रांति में पूर्ण योग दिया।

: ३ :

व्यक्ति और बन्धन

आन्तरिक और वाह्य जीवन में स्वच्छन्दता और स्वतंत्रता की प्रेरणा के कारण इस काल की कविता में तीन प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं—(१) व्यक्ति का बन्धनों से विद्रोह (२) सूक्ष्म का स्थूल से विद्रोह और (३) स्थूल का सूक्ष्म से विद्रोह।

(१)

अमित्र काव्य : स्वच्छन्द छन्द

द्विवेदीजी ने हिन्दी कविता का संस्कार शास्त्रीय (Classical) विधानों से किया था। हिन्दी कविता-साहित्य को दीन और दुर्बल पाकर उन्होंने संस्कृत के अनन्त काव्यकोष की ओर अंगुलि-निर्देश किया था। उनके वृत्त के कवि उत्साहपूर्वक उधर गये और पौराणिक काव्य हिन्दी में आया। बंगभाषा के काव्यों की ओर भी उन्हीं की प्रेरणा से हिन्दी के कवियों ने देखा और नवीनचन्द्र, बंकिम माइकेल मधुसूदनदत्त, द्विजेंद्र और रवीन्द्र हिन्दी में आये। जिस प्रकार अर्थ और भाव में वे पुरातन की ओर मुड़े थे उसी प्रकार छन्द में भी, (केवल भाषा में वे नवीन की ओर बढ़े)। उनका यह पुरातन-प्रेम, छन्द-विधान की दृष्टि से, स्वतंत्रता की प्रेरणा का परिचायक है। 'चले हुए शब्दों में कविता करने और तुक, अनुप्रास आदि ढूँढने से कवियों के विचार-स्वातंत्र्य में बाधा आती है।—" शब्द भी उसी स्वतंत्र प्रकृति के द्योतक हैं। परंतु स्वतंत्र प्रकृति का पर्यवसान और परिणति अन्त में पुरातन पथ में हो, यह एक विचित्र

बात थी। अन्यथा वर्णिक वृत्तमें मात्रिक से अधिक कठिन और कठोर बंधन है। उस महान् व्यक्ति का यह विद्रोह सबसे पहले रूढ़िगत छन्द-बन्धन से हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने परम्परागत मात्रिक छंद लिखते आरहे कवियों को संस्कृत के वर्णिक छन्दों (वर्ण वृत्तों) की ओर प्रेरित किया था। उसमें उनकी शास्त्रानुयायी (Classical) रुचि ही प्रेरक शक्ति थी, निरे विद्रोह की प्रवृत्ति नहीं, किन्तु इस काल के कवि ने आगे जाकर वर्तमान के बन्धनों से ऊबकर उनको छिन्न-भिन्न करके नूतन मार्ग निकाले। द्विवेदी-काल में जो नवीन छन्द-विधान हुआ, वह पुरातन छन्द-विधान का नूतन उत्थान ही था। 'प्रियप्रवास' में 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव', 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध' आदि संस्कृत के महान् काव्यों के ही वर्ण वृत्त हिन्दी भाषा में ढले हैं। नये वर्णिकों का आविष्कार उस काल में नहीं हुआ। हाँ, फारसी के छंद शास्त्र का संस्कार लेकर हरिऔध जी ने हिन्दी कविता में अतुकान्त मात्रिक को अवश्य ढाला : 'है पड़ा मैदान कोसों का अभी'। उसमें छन्द का एक परायापन रहा—हरिऔध जी के चौपदे इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। हिन्दी के अपने छन्दों को अतुकांत रूप इस काल में मिला।

छंद-बंधन से विद्रोह

(क) मात्रावृत्त (भिन्नतुकान्त मात्रिक)

मात्रिक छन्दों में अन्त्यानुप्रास का परम्परागत विधान तोड़ने का श्रेय है श्री गिरिधरशर्मा 'नवरत्न' को। सबसे पहली भिन्न-तुकान्त मात्रिक कविता शर्मा जी की 'सती सावित्री' (१९१३ ई०) थी—

गरज बाग यह अति सुन्दर था, इसमें ही था गौरी-मन्दिर,
सावित्री कर भक्ति चित्त से, प्रतिदिन हित पढ़ती थी जग का।

'प्रसाद' की पहली भिन्नतुकान्त कविता थी 'भरत'—

हिमगिरि का उत्तुंग शृंग है सामने
खड़ा बताता है भारत के गर्व को
पड़ती इस पर जब माला रवि-रश्मि की
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में

('कानन-कुसुम्' : 'प्रसाद')

इक्कीस मात्राओं के इस 'अरिल्ल' छन्द में 'प्रसाद' जी ने अनेक प्रयोग किये थे—'शिल्प सौंदर्य', 'वीर बालक', 'भावसागर' 'श्रीकृष्ण जयती'। इसी छन्द में 'करुणालय' गीतिरूपक (Opera) और 'महाराणा का महत्त्व' (काव्य) उन्होंने १६१३—१४ ई० में लिखे थे। 'इसके लेखक को भिन्नतुकान्त कविता लिखने की जब रुचि हुई तो उसी समय यह प्रश्न उसके मन में उपस्थित हुआ था कि इसके लिए कोई खास छन्द होना आवश्यक है। क्योंकि तुकान्तविहीन कविता में वर्ण-विन्यास का प्रवाह और श्रुति के अनुकूल गति का होना आवश्यक है।' 'प्रसाद' जी के 'प्रेम पथिक' काव्य में तीस मात्राओं का 'ताटंक' छन्द तुकांतविहीन होकर आया है : तुकांतविहीन मात्रिक होने के कारण ऐसे छन्दों को मात्रावृत्त भी कहा गया था—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना,
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

'निशीथनदी' में २४ मात्राओं का रोला छन्द प्रयुक्त हुआ है। 'अरिल्ल', ताटंक और रोला के इन तुकांतविहीन प्रयोगों के पश्चात हिन्दी के दूसरे कवियों ने भी इस भिन्नतुकांत कविता को अपनाया। पं० रूपनारायण पांडेय ने 'तारा' और 'राजारानी' रूपकों के अनुवादों में 'प्रसाद' के 'अरिल्ल' को ही अनुकृत किया।

राय कृष्णदास ने 'प्रेमपथिक' के ३० मात्राओं के छन्द को 'पंकज' कविता में उतारा। मात्रावृत्त का एक रूप सियारामशरण द्वारा प्रयुक्त हुआ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने 'ग्रन्थि' (एक प्रेमकहानी) में इसी नये छन्द ('पीयूषवर्ष'= १९ मात्राएँ, अंत में लघु-गुरु) को अतुकान्त रूप में प्रस्तुत करके आशा दिखाई थी कि 'ग्रन्थि के प्रेमियों के सन्मुख मैं भविष्य मे अतुकांत अंगों की अधिक सुगठित प्रतिमा प्रस्तुत करने की आशा रखता हूँ।' 'ग्रन्थि' (१९२०) में पूर्ववर्ती काव्यों से अधिक माधुर्य और रस है, छन्द ही वह 'पीयूषवर्षी' है ! :

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो, तुम गगन का
चन्द्रिके ! चूमो तरङ्गों के अधर,
उडुगणो ! गाओ, पवन-वीणा बजा !

(ख) गणवृत्त : भिन्नतुकान्त वर्णिक

मात्रिक छन्दों के बिलकुल विपरीत वर्णिक छन्दों मे तुकान्त का विधान नहीं रहा है। गणवृत्तों मे 'प्रियप्रवास' हिन्दी का सर्व प्रथम और सर्वश्रेष्ठ भिन्नतुकान्त महाकाव्य प्रसिद्ध है। द्विवेदी काल के अनेक कवियों ने वर्णिक छन्दों को भी तुकान्त के बन्धन में बाँध दिया था। अतुकान्त वर्णवृत्तों मे छोटी छोटी सैकड़ों स्फुट कृतियाँ तो द्विवेदीकालीन कवियों की प्रकट हुईं। परन्तु इतना विशाल प्रयत्न कोई न कर सका था।

इस काल में अवश्य 'सिद्धार्थ' जैसा महाकाव्य अनूपशर्मा ने 'प्रियप्रवास' की धारा में प्रस्तुत किया।

(ग) वर्ण वृत्त

पं० गिरिधरशर्मा ने अतुकान्त वर्णवृत्त का श्रीगणेश किया था-'मेरे पंख मुरदार', । मैथिलीशरणगुप्त ने 'विकट भट', 'वीराङ्गना' आदि काव्यों में जिस अतुकान्त का प्रयोग किया है वह हिन्दी के मनहरण या घनाक्षरी दण्डक का उत्तरार्थ चरण है :

ओठों से हटाके रिक्त स्वर्ण-सुरा पात्र को
सहसा विजयसिंह राजा जोधपुर के
पोकरणवाले सरदार देवीसिंह से
बोले दरबार खास में कि—'देवीसिंहजी !
कोई यदि रूठ जाय मुझ से तो क्या करे ?'

गुप्तजी को इस अतुकान्त पर स्वामित्व प्राप्त है—इस छन्द में उनकी सफलतम कृति 'मेघनादवध' है। श्रीसियारामशरण ने भी 'उन्मुक्त' काव्य का प्रारम्भिक अंश इसी वृत्त में लिखा है।

(घ) मुक्तछन्द

इन सब अमित्र (अतुकान्त) काव्यों में बन्धन से विद्रोह होते हुए भी किसी न किसी प्रकार का बन्धन शेष है, चाहे वह गण का हो, चाहे मात्रा का, चाहे वर्णों का। गणवृत्त में गणों के क्रम का बन्धन रहता है, मात्रावृत्त में मात्रा की गणना का और वर्णवृत्त में वर्णों की गणना का। परन्तु छन्द को पूर्ण मुक्ति दी कविवर 'निराला' ने। 'मुक्तछन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है।' उनके इन छन्दों का प्रवाह तो उन्हें 'छन्द' सिद्ध करता है परन्तु किसी प्रकार (मात्रा, गण या वर्ण) का

बन्धन न होना 'मुक्त'। इन मुक्तछन्दों में किसी भी छन्द की लय हो सकती है, किन्तु उसका—मात्रा, गण या वर्ण का—बन्धन न होगा। उनमें प्रास (तुक) हो भी सकता है, नहीं भी, पंक्तियाँ बराबर भी हो सकती हैं, छोटी-बड़ी भी :

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह, (१६)
अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू, (२०)
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह (२७)
गजगामिनि वह पथ तेरा संकीर्ण, (१६)
—कण्टकाकीर्ण। (८)

इस मुक्तछन्द में 'रोला' की लय है, परन्तु मात्राओं की विषमता है। 'चाह', 'राह' 'संकीर्ण', 'कण्टकाकीर्ण' की तुकें मिलाने से छन्द में माधुर्य का समावेश हो गया है। उनकी 'सन्ध्या-सुन्दरी' कविता सरसी, सार, ताटंक, वीर (जिनमें लय-साम्य है) की लय (गति) में है :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।

(सन्ध्या सुन्दरी)

दिवसावसान-आसमान, समय-मेघमय, सुन्दरी-परी और संध्या-सुन्दरी के अनुप्रासों द्वारा सौन्दर्य-सृष्टि की गई है। इस प्रकार छन्द के (१) मात्रा-गण या वर्ण और (२) लय इन दो उपकरणों में से केवल एक उपकरण का त्याग किया गया है; तीसरे वैकल्पिक उपकरण (तुक) को पादान्त में नहीं तो पादान्तरंग में नियोजित किया गया है।

श्री सियारामशरण गुप्त मुक्तछन्द के सिद्धहस्त कवि हैं। उन्होंने मनहरण वर्णवृत्त की लय पर मुक्तछन्द लिखे हैं। मनहरण में जैसे सम के पीछे सम वर्णों और विषम के पीछे विषम वर्णों के आने का क्रम है, वैसे इनमें भी आया है और अन्त्यानुप्रास को नहीं छोड़ा है :

थे सुदूर तुम हे उदार धुनी,
तुमने पुकार सुनी,
बन्दिनी स्वतन्त्रता है क्रूरमुखी कारा में;
नित्य गतिशीला प्राणधारा में
आकर अड़ी है जलशून्य मरुस्थलता;
सत्य की तरलता
शुष्क धरित्री में अवलुण्ठित है,
शृंखलित कण्ठगत कुंठित है।

('बापू')

उनके मुक्तछन्द काव्य 'आर्द्रा (१९२५-२७), 'मृण्मयी', (१९३४-३६) और 'बापू' (१९३७) हैं। 'उन्मुक्त' (१९४०) में उन्होंने मुक्तछन्द छोड़कर 'विकटभट', 'वीरांगना' 'सिद्धराज', और 'मेघनाद वध' के मुक्त वृत्त को ग्रहण किया है।

श्री सोहनलाल द्विवेदी ने 'निराला' द्वारा प्रतिष्ठित मुक्तछन्द को अत्यन्त कलात्मक पूर्णता दी। कवि की निर्बन्ध भावना अपनी अभिव्यक्ति के लिए छन्दबन्ध न ग्रहण करे, तो उसे बदले में गेयता, ध्वन्यार्थव्यञ्जना, भावानुसारी आरोह-

अवरोह, अन्तर्गत अनुप्रास आदि की पूर्ण योजना तो करनी ही चाहिए। एक बंधन दूर करने पर कवि का दायित्व बढ़ जाता है और द्विवेदीजी ने 'वासवदत्ता' के मुक्तछन्दों में इसे पूर्णरूप से निभाया है। 'वासवदत्ता' हिन्दी में मुक्तछन्द-रचना का विजयस्तम्भ है। उससे मुक्तछन्द का द्वितीय उत्थान प्रारंभ हुआ। मुक्त छंद के माधुर्य की एक झलक है—

सुषमा की प्रतिमा
एक तरुणी दिवागना-सी
कवि-कल्पना सी
विधि की अनूप रचना-सी
सुन्दरी प्रणय-अभिलाषा-सी
मादक मदिरा सी
मोहक इन्द्रधनु- सी...

('वासवदत्ता')

त्रिलोक-सुन्दरी उर्वशी का सौंदर्य चित्रित और ध्वनित देखिए और सुनिए:

उर्वशी त्रिलोक-सुन्दरी,
सुन्दरी ज्यों विभावरी
सजकर नव हीरहार
पुष्पहार
अंग-अंग अगराग,
केसर, मृगमद, पराग,
मस्तक कुंकुम सुहाग,
अरुण चरण,
नूपुर ध्वनि,

बजती शत किंकिणी
बजती-सी आगमनी,
मृदु मृदु मधु झंकार
झंकृत सी करती चर अचर के निखिल तार

('उर्वशी')

"वासवदत्ता" के प्रकाशन के पश्चात् हिन्दी में मुक्तछन्द का प्रवाह जैसे उन्मुक्त हो गया और गिरिजाकुमार माथुर, निरंकारदेव 'सेवक', 'अञ्चल', 'अश्क', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', रांगेय राघव आदि ने मुक्त कविताएँ लिखीं और आज भी लिखी जारही हैं छन्द मुक्त होने से कविता की गेयता पर बड़ा आघात पहुँचा। रससिद्ध कवियों ने सानुप्रास पदावली, विशिष्ट लय और आन्तरिक तुक द्वारा उस माधुर्य को बनाये भी रक्खा है, परन्तु प्रायः ऐसी कविताएँ गद्यात्मक (गद्यवत् prosaic) होती जारही हैं। इसकी प्रतिक्रिया भी हो रही है। 'निराला' जो भारतेन्दुकालीन कवियों की भाँति आज एक नई दिशा में जारहे हैं उर्दू की गजलनुमा शायरी हिन्दी में लाने; परन्तु इससे हिन्दी को कोई आशा नहीं होती, क्योंकि निरालाजी की यह कविता हिन्दी की न हो सकेगी निरालाजी भले ही उर्दू के हो जायें।

'प्रेम-वाद'

प्रेम का समन्वय मनुष्य के अन्तःकरण से है। वह एक शाश्वत वासना है, परन्तु उसपर समाज की नैतिकता का नियन्त्रण रहता है। व्यक्ति में निर्बन्धता आने के साथ प्रेम की रूढ़

धारणा कदर्थित हुई, नैतिकता उसके लिए बंधन बनी, और जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में पश्चिम में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है, उसी प्रकार प्रेम और प्रणय के संसार में नैतिकता का कोई स्थान नहीं माना गया। सामाजिक-नैतिक बन्धनों के प्रति विद्रोह और विप्लव की विस्फोटक भावना इस काल के प्रेमगीतों में मुखरित हुई। 'प्रेम' को उदात्त, सात्विक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे लोकसेवा और लोकमंगल में पर्यवसित तो श्री रामनरेश त्रिपाठी ही कर सके ('मिलन', और 'पथिक' 'स्वप्न' में), 'प्रसाद' ने 'प्रेमपथिक' और 'पन्त' ने 'ग्रन्थि' में निराश और असफल प्रेम से स्वस्थ समझौता किया।

प्रेम-पिपासा 'एक भारतीय आत्मा' (माखनलाल चतुर्वेदी) की इस अलब्ध, अभुक्त प्रेम के प्रति कामनाभरी, प्रार्थनाभरी आँखें खुली हुई हैं :

> किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका ? तुझे झाँकना पाप हुआ,
> आग लगे,—वरदान निगोड़ा मुझपर आकर शाप हुआ।
>
> ('हिमकिरीटिनी')

जेल का प्रवास प्रेम की मार्मिकता को, विरह की पीड़ा को बढ़ा देता है, वह इसमें अपनी तरलता लेकर घुलमिल गया है, इस लिए वह विश्लेषण से परे है; परन्तु 'नवीन' (बालकृष्ण शर्मा) की प्रेमपिपासा तो नैतिक मर्यादाओं के प्रति कभी दुर्बल, कभी सबल चुनौती बन गई है :

> यों भुज भर कर हिये लगाना है क्या कोई पाप ?
> ललचाते अधरों का चुम्बन क्या है पाप-कलाप ?
>
> ('कुकुम')

का॑ [illegible] प्रणयानुराग का प्रतीक बन गया है, राष्ट्रीयता [illegible] चढ़ादी गई है। 'झरोखेवाली' की ओर [illegible] जीवन के सूनेपन में जाती होगी, जीवन के जागरूक क्षणों में कभी-कभी हिमकिरीटिनी माता भी याद आजाती होगी—

अरी झरोखे की रानी,

कभी कभी तो देखलिया कर इस निरीह की ओर,

इस तेरे नवनिर्मित वन्दी-गृह के पट की ओर—

('कुंकुम')

सुभद्राकुमारी की तो बालपन से राधा ही आराध्य रही हैं,

'मुझे बतादो माननि राधे। प्रीति-रीति वह न्यारी।

अपनी कविताओं में उन्होंने प्रणय-भावना को स्वाभाविक वाणी दी है। कई स्थलों पर प्रेमोन्माद और प्रेमोल्लास के चित्र सजीव हो उठे हैं :

प्रेमोन्मत्त होगई, मैंने उन्हें प्रेम निज दिखलाया।

उसी समय बदले में उनसे एक प्रेम-चुम्बन पाया।

मानिनी नायिका तो काव्य ने बहुत देखी थी, यहाँ मानी नायक 'प्रियतम' से मनुहार है :

बहुत दिनों तक हुई प्रतीक्षा अब रूखा व्यवहार न हो।

अजी बोल तो लिया करो तुम, चाहे मुझ पर प्यार न हो।

[illegible] प्रियतम स्वकीय ही हो सकता है, क्योंकि कविताओं में अपना ही प्रेमपूर्ण जीवन गाया है;

परन्तु प्रेम-काव्य के इस नवोत्थान में हमें ... हिन्द कविता में फिर परकीया नायिका दीख पड़ी :

'कौन देश से आवेंगे प्रिय ?'
हँस हँस कहती होंगी सखियाँ
घेर तुम्हे आँगन में बैठीं
आमी चीर उछाल बिजलियाँ;
तुम्हें खीझ फिर कभी हँसी बरबस आ जाती होगी !
(नरेन्द्र)

अरे, वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकंपित मृदु उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृग पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता में सी मरी अजान,
लाज की छुई मुई सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

वाली पन्त की 'भावी पत्नी के प्रति' की गई स्वप्न-कामना चरितार्थ न हुई और न कवि 'नवीन' को कदाचित् 'झरोखे की रानी' का प्रेम-परिणय प्राप्त हुआ और इसलिए उनकी यह पिपासा चाहे क्षम्य हो। 'अञ्चल', नरेंद्र आदि के काव्य में तो निरावरण कामुक चित्र हैं। इसे 'स्पष्टवादिता' (मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता) कहा जा । है, 'मनोवेगों का रेचन' (Catharsis of Emotions) कहा जाना ... ग्रन्थियों का सुलझन (Dissolution of Complexes) ... है और कवि की सचाई (Sincerity) को साधुवाद भी

दिया जाता है, परन्तु यह स्थापना शुद्ध भारतीय नहीं है; उन्मुक्त प्रेम और भोगवाद अभारतीय हैं। जहाँ तक अभिव्यञ्जना का प्रश्न है उसमें सच्चाई है, परन्तु जहाँ कविता-कला की 'समाज-हित' की कसौटी पर परख होता है, वहाँ यह कब ठहरेगी ?

उन्मुक्त प्रेम : 'भोगवाद'

उन्मुक्त प्रेम हिन्दी कविता में प्रेमगीतों में आया। इस उन्मुक्त प्रेम में 'भोग' की उत्कटता स्पष्ट थी। ऐंद्रिय प्रेम (वासना) के ये चटकीले चित्र किसी शयनागार का मण्डन कर सकते हैं:

(१) तुम मुग्धा थी अति भावप्रवण उकसे थे अँबियों से उरोज,
तुमने अधरो पर अधर धरे, मैंने कोमल वपु भरा गोद।
('प्रथम मिलन' : पंत)

(२) पिये अभी मधुराधर चुम्बन, गात-गात गूंथे आलिंगन,
सुने अभो अभिलाषी अन्तर मृदुल उरोजों का मृदु कम्पन
('प्रभातफेरी' : नरेन्द्र)

(३) इस प्रेरित, लोलित गति-गति में, जब झूम झमकता विसुध गात।
गोरी बाहों में कस प्रिय को करदूँ चुम्बन से सुरा-स्नात।
('अपराजिता' : अञ्चल)

वासनाजन्य प्रेम के उन्मुक्त व्यापार ने 'मधुशाला' में अपना क्रीडांगन खोजा :

आज सजीव बनालो प्रेयसि अपने अधरों का प्याला,
भरलो, भरलो, भरलो इसमें यौवन-मधुरस की हाला,

और लगा मेरे अ से भूल हटाना तुम आओ,
अथक बनूँ मैं पीनेवाला खुले प्रणय की मधुशाला।

('मधुशाला' : 'बच्चन')

प्रेम की पावन और उदात्त मनोभावना में 'वासना' का पुट देखकर 'अश्लीलता' की पुकार हुई; 'बच्चन' ने प्रत्याख्यान किया—

कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा!
सृष्टि के आरम्भ में मैंने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्यवाले दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम संध्या के अरुण दृग चूमकर मैंने सुलाये,
तारिका-कलि से सुसज्जित नव निशा के बाल चूमे,
वायु के रसमय अधर पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा!

('कवि की वासना' : 'बच्चन')

प्रेम : एक चिरंतन वृत्ति—'काम'

'प्रसाद', 'दिनकर', द्विवेदी (सोहनलाल) पन्त और 'प्रेमी' के 'प्रेम का स्वरूप उदात्त है, वह जीवन की शाश्वत वृत्ति बनकर, शक्ति बनकर आया है। वह 'कामायनी' का काम है; विनोद का साधन, मानव का सहचर और कृतिमय जीवन :

मैं काम रहा सहचर उनका उनके विनोद का साधन था;
हँसता था और हँसाता था उनका मैं कृतिमय जीवन था।

(काम : 'कामायनी')

दिनकर का 'प्रेम' आद्ध नारीश्वर का अमृत है किसके साह-चर्य से वे नीलकण्ठ (विषपायी) बन सकते हैं। प्रेम के राम में समस्त अचेतन विश्व आनन्दविभोर हैं :

सनातन महानन्द में आज बाँसुरी-कंकन एकाकार
बहा जारहा अचेतन विश्व रास की मुरली उठी पुकार

('रासकी मुरली' : 'दिनकर')

सोहनलाल द्विवेदी का हृदय प्रणय के लिए उतना ही खुला है, जितना प्रलय के लिए। प्रेम भी एक वीरता है :

युद्ध करेंगे, प्रेम करेंगे,
क्रूर बनेंगे और सदय भी,
प्रलय रहेगा और प्रणय भी !

('चित्रा')

प्रेमी के कवि के लिए भी 'बाँसुरी' (प्रेम) ही शंख (युद्ध) के स्वर में भी बोलती है :

प्रेम और रण, शंख-बाँसुरी दोनों हैं इसकी वाणी में।
चूमो इसके अधर बाँसुरी ! मोहन बसते इस प्राणी में।

('बंशी' : प्रेमी)

आज के इस युग में जन-रुचि की भ्रष्टता स्पष्ट है—चल-चित्रों, कहानियों, उपन्यासों में उसकी परितुष्टि की जाती है। कविता में भी यह भ्रष्टता आई और इस सर्वप्राणी प्रवाह में जो कवि अपना शिर ऊँचा किये रहे वे श्रद्धा के पात्र हैं।

'निराशावाद', : 'भाग्यवाद' : 'वेदनावाद'

भारतीय तत्त्वज्ञान तथा दर्शन ने जहाँ जीव को श्रेयार्थी, परमार्थी बनाया है वहाँ मनुष्य को निराशावादी भी बना दिया है। जीवन की क्षणभंगुरता का भाव हमारे रक्त में घुल-मिल गया है और हमें यौवन में कङ्काल, प्रासादों में खण्डहर, वसन्त में पतझड़, कालिमा में रुधिर, जीवन में मृत्यु दिखाई देने लगी है :

(१) अखिल यौवन के रंग उभार, हड्डियों के हिलते कङ्काल;
(२ आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार, उलूकों के कल भग्न विहार!
(३) वही मधुऋतु की गुञ्जित डाल, सिहर उठती-जीवन है भार!
(४ रुधिर के हैं जगती के प्रात, चितानल के ये सायंकाल;
(५) खोलता इधर जन्म लोचन, मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;

('परिवर्तन' : पन्त)

भगवतीचरण वर्म्मा ने 'परिवर्तन' की ही प्रतिध्वनि में 'नूरजहाँ की कब्र पर' निराशावादी रुदन किया।

दार्शनिक चिन्ता ने हमारे मधुर 'जीवन-संगीत' को अवसाद की मूर्च्छना से भर दिया। जीवन की नश्वरता में सृष्टि की सब मोहक-मादक वस्तुएँ 'सर्वनाश का घर' बन गईं :

रूपराशि पर गर्व न करना जीवन ही नश्वर है
छवि के इसी शुभ्र उपवन में सर्वनाश का घर है।

('जीवन-संगीत' : 'दिनकर')

वस्तुजगत स्वप्नों का देश है, जीवन एक पहेली है, 'जीवन के छोटे समुद्र में वही प्रलय की ज्वाला', 'चार दिन सुखद चाँदनी

रात' और फिर अन्धकार अज्ञात।' 'मिलन के पल केवल दो चार' विरह के कल्प अपार!' 'कहाँ नश्वर जगती में शांति!' 'सृष्टि का ही तात्पर्य अशांति' 'रुधिर के हैं जगती के प्रात' 'चिन्तानल के ये सायंकाल', 'शान्ति सुख है उस पार!' की चिन्तासरणि ने हमें पलायनवादी या फिर भाग्यवादी बना दिया, हम अपनी निराशा और पीड़ा, व्यथा और वेदना को प्यार करने लगे :

मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में!!
चिन्ता क्या है हे निर्मम! बुझ जाये दीपक मेरा;
होजायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा!
("नीहार' : महादेवी)

महादेवी तो 'नीहार' में पीड़ा और वेदना के ही राज में रहती हैं, कभी स्वयं उस पार जाना चाहती हैं—कौन पहुँचा देगा उस पार? और कभी अपने नाविक को इस पार बुला लेने के लिए रूठी हुई हैं। पन्त की 'ग्रन्थि' वेदना की गहरी छाया मानस पर छोड़ती है—

वेदना ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परम पद
वेदना ही का मनोहर रूप है,
वेदना ही का स्वतन्त्र विनोद है।

'परिवर्तन' से यह निराशावाद की झंकृति उठी थी जो उस काल की अनेक गीतियों में मुखरित हुई थी। 'नीहार' (महादेवी) के गीत तथा 'मधुकण' (भगवतीचरण) और 'चित्ररेखा' (कुमार)

की कविताएँ पूर्णतया वेदना में रँगी हुई हैं। समस्त बहिर्जगत कवि को अन्तर्जगत् की पीड़ा में डूबा दिखाई देता था :

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा! (महादेवी)

यह पीड़ा तबतक चलती रही, जबतक उमरखैयाम की हाला की 'मस्ती' (मादकता) ने इस को भुला न दिया। महादेवी ने 'नश्वरता' से समझौता करके अपने मन को आश्वस्त कर लिया है :

न रहता भौरों का आह्वान, नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होतीं अन्तर्धान, चला जाता प्यारा ऋतुराज;
असम्भव है चिर-सम्मेलन,
न भूलो क्षणभंगुर जीवन!

'कुमार' की 'चित्ररेखा' में भी श्वास-प्रश्वास दुख की गति हैं, हृदय का स्पन्दन वेदना का प्रहार है :

कितने दुख बनकर विकल साँस भरते हैं मुझमें बार-बार,
वेदना हृदय बन तड़प रही, रह, रहकर करती है प्रहार,
('चित्ररेखा')

भगवतीचरण वर्मा 'मैं देख रहा यह मानवता कितनी निर्बल कितनी अनित्य!' कहकर अपनी विवशता में नियति (भाग्य) से हार मान बैठते हैं :

अब असह अबल अभिलाषा का है सबल नियति से संघर्षण,
आगे बढ़ने का अमिट नियम, पग पीछे पड़ते हैं प्रतिक्षण,
('प्रेमसंगीत')

इसी वस्तुजगत् के संघर्ष ने, कोलाहल ने, पराजय ने, प्राणों को 'अनन्त की ओर' उन्मुख किया है, 'अनन्त के पथ पर' चलाया है और नाविक का अवलम्ब लिया है :

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे ।

('प्रसाद')

क्योंकि अकेले उस पार कैसे कोई जाये ?—

हाथ में लेकर जर्जर वीन इन्हीं बिखरे तारों को जोर !
लिये कैसे पीड़ा का भार देख आऊँ अनन्त की ओर ?

—महादेवी

वर्मात्रय (महादेवी, 'कुमार' और भगवतीचरण) की कविताओं में निराशावाद की गहरी छाया है । हृदय के चिरअवसाद को, निराशावाद को भुलाया उमरखैयाम की मस्ती ने । जीवन की कठिनाइयों, आपत्तियों, संकटों में 'प्याला' ही शरणदाता हुआ :

किन्तु जब पर्वत पड़ा आ शीश पर मैं सह न पाया,
जब उठा हो भार जीवन, तब लगाया होठ प्याला !
व्यर्थ कर दिन-रात निंदा विश्व ने जिह्वा थकाई,
था बहाना एक मन-बहलाव का मधुपान मेरा !
पूछता जग है निराशा से भरा क्यों गान मेरा ?

—'बच्चन'

परन्तु जिन्होंने यथार्थ जीवन की प्रताड़नाओं के आगे शिर न झुका कर अपनी दार्शनिक चिंता द्वारा उनका मूल्यांकन किया वे हैं सुमित्रानन्दन पन्त :

अलभ है इष्ट अतः अनमोल । साधना ही जीवन का मोल ।

'यही तो है असार संसार, सृजन, सिंचन, संहार'

कह कर पंत ने भी निराशा, जड़ता, नियति के आगे नत होकर अभावों में अरण्य-चीत्कार नहीं किया—'वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार !' उनकी प्रज्ञा ने भावना पर विजय पाई और उन्होंने इस

जगत् को 'परिवर्तन' में देखा और परिवर्तन ही को 'प्रगति' माना :

म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्म-बलिदान, जगत् केवल आदान-प्रदान !

'परिवर्तन ही प्रगति है'—उनकी कविता की भी यही रेखा है। वेदना का सदैव उन्होंने मूल्य माना; उसे आत्मविकास (Sublimation) और संस्कार की साधना समझा :

वेदना ही में तपकर प्राण दमक दिखलाते स्वर्ण हुलास !
तरसते हैं हम आठों याम, इसीसे सुख अति सरस प्रकाम;
झेलते निशिदिन का संग्राम, इसीसे जय अभिराम;

वस्तुतः वेदना का यह उदात्तीकरण और उससे आनेवाला दुःखवाद दोनों मूलतः व्यक्ति की भौतिक - आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक - व्यक्तिगत, नैतिक, दार्शनिक पराजय ही हैं। भारत के दुःखवादी दर्शन ने कविता को वेदना के गहरे रंग में रँगा है, भौतिक कष्टों और अवसादों ने कविता के ताने-बाने को भी निराशा का बना दिया है। जीवन की सच्ची झाँकी 'बच्चन' की इन पंक्तियों में है :

एक मधुवन बीच विचरित दूसरा पग स्थित-मरुस्थल,
एक में जीवन-सुधारस दूसरे कर में हलाहल,

और इसी कारण हमारे सारे दार्शनिक चिन्तन का एक ही नाम है 'दुःखवाद'।

व्यक्तिवाद और यथार्थवाद

अन्तर्मुख होकर इस काल के अनेक कवियों ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को वाणी दी है। जीवन के अनेक अंगों में उन्हें जो पद पद पर आघात-प्रत्याघात सहन करने पड़े उनकी

मुद्रा उनकी कविता में आई। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं हरिकृष्ण 'प्रेमी', 'बच्चन', भगवतीचरण, नरेन्द्र, इलाचन्द्र। वह अनुभूति कहीं व्यक्ति की ही सीमा में आबद्ध है, तो कहीं व्यापक बनकर, साधारणीकृत रूप पा गई है; क्योंकि वस्तुतः आज का व्यक्ति समाज का अविच्छिन्न और अभिन्न अङ्ग है। नियति-चक्र का क्रूर आवर्तन दुर्बल मानव प्राणी को प्रताड़ित करता और जीवन 'अरमानों की समाधि' 'अभिलाषाओं की आहुति', 'आशाओं का बलिदान' और 'आहों का भैरव राग' बन जाता है। प्यार उपेक्षित होकर असफलता का भार रह जाता है :

हम भिखमंगों की दुनिया में स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले,
हम एक निशानी सी उर पर ले असफलता का भार चले,
हम मान-रहित अपमान-रहित जी भरकर खुलकर खेल चुके,
हम हँसते हँसते आज यहाँ प्राणों की बाजी हार चले!

'प्रेमी' की कविता में स्वानुभूत मर्मव्यथा साकार होगई है :

स्नेहमयी, क्या हुआ तुम्हें जो मुझसे कहती 'गीत सुनाओ,
वीणा की झङ्कारों को भी घायल दिल का दर्द पिलाओ।'
व्यथा हृदय की तुमसे वाले, छिपी हुई क्या बतलाओ?
फिर क्यों कहती हो 'पीडा का पर्दा प्रियतम आज उठाओ।'

—भगवती चरण)

उनके व्यक्तिगत आघात गीतों की कड़ियाँ बन गये हैं :

मुझको जिस दिन जगत मारने भर कर लाया विष का प्याला,
उस दिन मुझमें अमर नशा बन झूम उठा जीवन मतवाला।

'प्रेमी' की भाँति 'बच्चन' का दुःख भी व्यक्तिगत है :

जग पूछ रहा उनको जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ।

'निशा-निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' में इसी निराशा और पीड़ा की गहरी छाया है :

मिलता था बेमोल मुझे सुख : पर मैंने उससे फेरा मुख,
मैं खरीद बैठा पीड़ा को यौवन के चिरसंचित धन से!
मैंने खेल किया जीवन से—

'मेरा तन भूखा, मन भूखा'–कवि के प्राणों की पुकार है। इस दुःख और पीड़ा की तुलना में मरण में 'सुख' है—'आओ सो जायें, मर जायें!'

कसक, वेदना और अतृप्ति से भरा हुआ जीवन भगवती बाबू की इन पंक्तियों में बोल उठा है :

आमन्त्रित हैं यहाँ कसक से क्रीड़ाये करनेवाले,
हृदय-रक्त से निज वैभव के प्यालों को भरनेवाले,
जीवन की अतृप्त तृष्णा से तड़प तड़प मरनेवाले,
अंधकार के महाउदधि में अंधों से तरनेवाले।

(मेरी आग)

जीवन-संघर्ष का यथार्थ चित्र इस पंक्तियों में मुखर हो गया है।

अब असह अबल अभिलाषा का है सबल नियति से संघर्षण!
आगे बढ़ने का अमिट नियम, पग पीछे पड़ते हैं प्रति क्षण!
मैं एक दया का पात्र अरे, मैं नही रंच स्वाधीन प्रिये!
हो गया विवशता की गति में बँधकर हूँ मैं गतिहीन प्रिये!

(एकाकी : भगवतीचरण)

जीवन में आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक अतृप्ति आज के युग में सर्वत्र दिखाई दे रही है। मानवीय कामनाओं का पार नहीं है,

अतृप्ति की रेखा

परन्तु जीवन की परवशता उन्हें विफल होते देखना चाहती है। इसी भावी असफलता की आशंका से कवि 'जो है' उसके प्रति अत्यन्त अनुरक्त-आसक्त है :

पीने दे पीने दे ओ, यौवन मदिरा का प्याला!
मत याद दिलाना कल की, कल है कल आनेवाला।
है आज उमंगों का युग तेरी मादक मधुशाला!
पीने दे जी भर रूपसि अपने पराग की हाला!
लेकर अतृप्त तृष्णा को आया हूँ मैं दीवाना!
सीखा ही नहीं वहाँ है थक जाना या छक जाना!
यह प्यास नहीं बुझने की पी लेने दो मनमाना!

('मधुकण' : भगवतीचरण)

यह अतृप्ति प्रतिक्रिया में विस्फोट बन जाती है:

'जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

'नवीन' की प्रेम-भरी रसभरी कविताओं में भी अतृप्ति की अकथ कहानी मौन-मुखर है :

दीप-रहित जीवन-रजनी में।
भटक रहा कब से सजनी, मैं।
भूलगया हूँ अपनी नगरी,
कुहू व्याप्त है सारी डगरी!
अपनी दीपशिखा की किरणें आने दो उस पथ की ओर—
जहाँ भ्रांत सा ढूँढ रहा हूँ प्रतिमे, तव अंचल का छोर!

अपनी मानवीय दुर्बलताओं के प्रति कवि लज्जित नहीं है। वह अपनी पराजय को भुलाने के लिए विलास और उन्माद (साक़ी

और सुरा) चाहता है—इस दुर्बलता को दिखाकर वह जन-सहानुभूति जोतना चाहता है, छिपाकर, 'साधु' बनकर' साधुवाद लेना नहीं—

मै छिपना जानता तो जग मुझे साधू समझता।

—'बच्चन'

अपनी पराजय के, असफलता के गीत गाने में उसे संकोच नहीं—उसे यह आत्मबोध है कि उसके ये गीत क्षयी युवक के गीत हैं। यदि 'जीवन और संघर्ष के बोझे से टूटे, युद्ध से निचुड़े और चुसे अन्धविश्वासी पराजित और निराश मानव की अंतिम विजय के गीत न गाकर वह बहक भी गया है तो उसने स्वीकार किया है कि वहाँ मेरी दुर्बलता है—जीवन के क्षयी रोमान्स के प्रति अवांछनीय आसक्ति है।'*

यथार्थ जीवन को सर्वव्यापी पराजय ने हमारे मानस में करुणा की एक धारा प्रवाहित की है। भारत का चिरप्रतिष्ठित तत्त्वज्ञान भी करुणा-जन्य है। शताब्दियों से भीतर-भीतर उठते और घुमड़ते हुए क्षोभ और निःश्वास के बादल सामाजिक विषमता, आर्थिक आघात और दासता के प्रहार से आँसू में बरस पड़े हैं। कभी अपनी विवशता और दैन्य पर और कभी समाज के शोषित-पीड़ित की दुरवस्था पर कवि की हृदयानुभूति सजल हुई है। अपने जीवन और मरण के आघातों में आज के कवि को विश्वात्मा की सहानुभूति चाहिए—

अरे कहीं देखा है तुमने मुझे प्यार करनेवाले को!
मेरी आँखों में आकर फिर आँसू बन ढरने वाले को!!
निष्ठुर खेलों पर जो अपने रहा देखता सुख के सपने,

*'किरण बेला' की भूमिका में अञ्चल।

आज लगा है क्या वह कँपने देख मौन मरनेवाले को ?
('लहर' : प्रसाद)

'परिवर्तन' कवि के लिए जगत् का एक मात्र तत्त्वज्ञान' है :

तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियन्त्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद-मर्दित,
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमायें खण्डित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिरसंचित !
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात उत्पात, अमंगल
वह्नि बाढ़, भूकंप तुम्हारे विपुल सैन्य दल !
(परिवर्तन : पन्त)

कवि रुदन में निमग्न है जैसे कवि का गान हृदय के रुदन का ही दूसरा नाम हो—

मैं रोया इसको तुम कहते हो गाना !
मैं फूट पड़ा तुम कहते छन्द बनाना !
—'बच्चन'

उसके हृदय में मर्मस्पर्शी व्यथा और ओठों पर उसकी कथा है :

घायल मर्म सताया प्राणी, काँटे कोई चीज नहीं ।
ममता का अंकुर फूटे अब हिय में ऐसा बीज नहीं ।
स्वप्नभंग सुख का मुँह काला मेंहदी के बदले छाले ।
इस अवसर पर दिल क्या चाहे बादल ये काले-काले ।
नहीं दुपहरी, नहीं चाँदनी, आज कत्ल की रात घनी ।
छेड़ न श्याम बुला न मोहन, प्रीत उलट आघात बनी ।

हमारे चिंतनवादी कवियों ने मानव को करुणा का काव्य और जीवन को करुणा की कथा कहा है :

जीवन ही करुण कथा है।
शब्दों में सुन्दरता है, अर्थों में भरी व्यथा है!
('रहस्य' : 'कुमार')

आज के मानव के जीवन में यौवन है, यौवन में उन्माद भी है, किन्तु उन्माद में अवसाद है :

मैं यौवन का उन्माद लिये फिरता हूँ!
उन्मादों में अवसाद लिये फिरता हूँ!
('आत्मपरिचय' : बच्चन)

बन्दी मानव बन्धन की जड़ता ही को जीवन मान बैठा है—

बाहर स्वतंत्रता का स्पंदन : मुझे असह उसका आवाहन!
मुझ कंगले को मत दिखला वह दुस्सह स्वप्न अमोल!
ओ रिपु, मेरे बन्दीगृह की तू खिड़की मत खोल!
—'अज्ञेय'

मानव-जीवन मृत्यु की झाँकी है, विजय की स्मृति पराजय का गीत है—

आज विजय की याद दिलाना पराजयों पर रोना है।
—उदयशंकर भट्ट

परन्तु जागरूक कवि का चिन्तन इसी अन्धकार में आशा की उज्ज्वल रेखा देखता है :

आज देह भी उपादेय है, आज गरल मेरा जीवन है।
आज प्राण की विकल मूर्च्छना नये काव्य का आवाहन है।
आज धूल में बीज मिलाना कलि के कल्पद्रुम का फल है।
आज जगत् की उथल-पुथल में छिपा हमारा सुन्दर कल है।
—उदयशंकर भट्ट

ऐसे वेदना-गीत से 'एक भारतीय आत्मा' का अनुरोध स्तुत्य है

आह, गा उठे हेमाञ्चल पर तेरी हुई पुकार —
बनने दे तेरी कराह को बरसों की हुंकार !
और जवानी को चढ़नेदे बलि के मीठे द्वार ,
सागर के धुलते चरणों से उठे प्रश्न इस बार—
अंतस्तल से अतल-वितल को क्यों न बेध जाते हो ?
अजी वेदना-गीत, गगन को क्यों न छेद जाते हो ?
उस दिन ? जिस दिन महानाश की धमकी सुन पाते हो,
कम्पन के तागे में गूँथे से क्यों लहराते हो ?

—'एक भारतीय आत्मा'

शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति

संसार की विषमता के प्रति अब तक के कवि की दृष्टि उन्मुख न थी। उसे उन्होंने देखकर केवल एक निष्क्रिय निश्वास छोड़ा था। अब कविता के आगे एक प्रश्न था—'कस्मै देवाय' ? 'कस्मै देवाय' का उत्तर दिया सच्चे राष्ट्रवादी कवि श्री 'दिनकर' 'नवीन' और सोहनलाल द्विवेदी ने। शोषित-पीड़ित की दुर्दशा ने पहले सहानुभूति जगाई—

भूखे नंगे दीनबन्धुओं पर लख अत्याचार।
दीनबन्धु की आँखों से फूटी करुणा की धार।
धोदे भारत का कलङ्क तेरी आँखों का पानी।
लिख दे यह बलिदान हमारी प्रायश्चित्त-कहानी।

और फिर विद्रोह और विप्लव—

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,

युवती के लज्जा-वसन बेच जब व्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों को अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण !

('विपथगा' : दिनकर)

कृषक और मजदूर, नारी और प्रजा आज के शोषितवर्ग हैं। भूमि-पतियों और पूँजीपतियों ने तथा पतियों और नर-पतियों ने सदैव इनको उत्पीड़ित किया है। कवि का हृदय कृषकों के उत्पीड़न की व्यथा-कथा से स्पन्दित है :

जिनके हाथों में हल-बक्खर जिनके हाथों में घन है।
जिनके हाथों में हँसिया है वे भूखे हैं, निर्धन हैं।

('कस्त्वं कोऽहम्' ? : 'नवीन')

यह वैभव-विलास और समृद्धि जिनके रक्त से सिञ्चित है उन्हीं के रक्त का शोषण आज का कवि देखकर सिहर उठता है :

(१) आहें उठी दीन कृषकों की मजदूरों की तड़प पुकारें,
अरी गरीबों के लोहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें।
वैभव की दीवानी दिल्ली : कृषक-मेध की रानी दिल्ली।

('हुङ्कार' : दिनकर)

(२) देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय-शोणित की धारें।
और उठी जातीं उनपर ही वैभव की ऊँची दीवारें।

('कस्मै देवाय' : दिनकर)

सोहन लाल द्विवेदी का 'किसान' राज्य-साम्राज्य, किले-दुर्ग गढ़-प्राकार धुरन्धर है—

ये बड़े बड़े साम्राज्य-राज युग-युग से आते चले आज,
ये सिंहासन, ये तख्त-ताज, ये क़िले-दुर्ग-गढ शस्त्र साज,

वह तेरी हड्डी पर किसान ! वह तेरी पसली पर किसान !
वह तेरी आँतों पर किसान ! नस की ताँतों पर रे. किसान !
('भैरवी')

ऐसे किसानों के कंकालों पर दानवता का तांडव देखकर मानवता 'आकुल-व्याकुल है;

कंकालों का रक्त-पान कर आज अमित आँखे हैं लाल।
दलितों की आशा-अभिलाषा, कुचल-कुचलकर हुई निहाल।
दीन झोपड़ी को विलोक कर विलासिता मुसकाती है।
दानवता का ताण्डव लख कर मानवता अकुलाती है।
('अपनी कविता से':'शक्र')

श्रमजीवियों के रक्त तर्पण को भी कवि नहीं भूला है और नहीं भूला है उनकी नग्नता—

महल बनानेवाले रानी, जीवन भर धरती पर लेटे।
उनकी अर्द्धांगिनियाँ अपने तन में अपनी लाज समेटें ॥
इनमें इतना कपड़ा बुनता यह दुनिया सारी ढक जाये।
फिर भी उसे बनानेवाले अपनी देह नहीं ढक पाये।

समाज का वैषम्य:

[एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है कंगाली,
एक देह पर एक न चिथड़ा एक स्वर्ण के गहनोंवाली।]

देखकर उसने अपनी जीवन-सहचरी का आह्वान किया है:

चलो क्रांति का जीवन भरदें इन युग-जर्जर कंकालों में,
चलो सुखों की साध जगादें फिर इन नंगों-कंगालों में।
('क्रांति का आमंत्रण' : 'प्रलयवीणा')

वह ऐसे नवयुग का आकांक्षी है

हे मानव कबतक मेटोगे यह निर्मम महाभयंकरता,
बन रहा आज मानव देखो मानव का ही भक्षण-कर्ता।

है दुनिया बहुत पुरानी यह रच डालो दुनिया एक नई,
जिसमें सर ऊँचा कर विचरें इस दुनिया में बेताज कई!

—'नवीन'

नारी के शोषण और पीड़न में पुरुषवर्ग ने अपना उल्लास देखा है, और नारी ने पुरुष के उल्लास में ही अपनी गरिमा—

पुरुषों की ही आँखों से नित देख देख अपना तन,
पुरुषों के ही भावों से अपने प्रतिभर अपना मन!
लो अपनी ही चितवन से वह हो उठती है लज्जित,
अपने ही भीतर छिप-छिप जग से हो गई तिरोहित!
मानव की चिर सहधर्मिणि युग-युग से मुख अवगुण्ठित,
स्थापित वह घर के भीतर है दीप-शिखा सी कंपित।

('युग वाणी' : पन्त)

परन्तु कवि ने नारी को मुक्त करने के लिए पुरुष को उद्बुद्ध किया है,

उसे मानवी का न गौरव दे पूर्ण स्वत्व दो नूतन
उसका मुख जग का प्रकाश हो उठे अन्ध अवगुंठन,
खोलो हे मेखला युगों से कटि-प्रदेश से तन से
अमर प्रेम ही बन्धन उसका वह पवित्र हो मन से!

('नर की छाया' : पन्त)

प्रजापीड़क राजाओं को कवि की चुनौती है :

जिनके प्रपुष्ट कन्धों पर हैं साम्राज्य तुम्हारे आज टिके,
उनका यश-मानलाज सब कुछ है आज तुम्हारे हाथ बिके,
तुम चूस प्रजा का रक्त-मास शोषण कर हृष्ट प्रपुष्ट बने !
उनके लोहू से रंगते हो तुम अपने वैभव के सपने !!

('राजाओं के प्रति' : सुधीन्द्र)

अछूतों के प्रति युग-युग के पाप-ताप से कविहृदय सिहर उठा है और इसकी आँखें लाल हो उठी हैं-

अरे चमार न होते तेरे पग में छाले पड़ते ।
भंगी होते नहीं घरों में कीड़े पड़ते सड़ते ।।

('धर्म' : शंखना)

जिस नैतिक आर्थिक, राजनैतिक शोषण से समाज का कोई वर्ग कराह रहा है उसको कवि, युग का कवि, न देखे यह कैसे हो सकता था ? इस काल का कवि जनता का शोषित-पीड़ित जनता के विद्रोह का कवि है ।

'दुःखवाद' की प्रतिक्रियाएँ

मनुष्य-जीवन में विषाद की चित्र-विचित्र रेखाएँ मिली हैं । जीवन संघर्ष में घिरा है : 'आर्थिक जीवन में क्षुधा और तृप्ति में संघर्ष है, राजनीतिक जीवन में दासता और स्वतंत्रता में और आर्थिक जीवन में शोषक और शोषित में संघर्ष है, नैतिक जीवन में 'काम' और 'वासना' में संघर्ष है—असफल श्रम, (मजदूर) असफल क्रांति (पराजित देश) और असफल प्रेम (विफल प्रेम) आज की कविता में सजीव और साकार हो उठे हैं । (१) प्रेम की पराजय को छायावादी धारा ने 'अध्यात्मवाद' में

मिला दिया है (२) राजनीति की पराजय को प्रेम की धारा ने 'प्रलयवाद' में छिपा दिया है (३) आर्थिक पराजय को राष्ट्रीयता की धारा ने 'विध्वंसवाद' मे पर्यवसित कर दिया है। इस प्रकार आज की कविता में भिन्न-भिन्न धाराओं का परस्पर सङ्गम दिखाई देता है। कौनसी तरंग किस धारा की है इसे पहचानना कठिन हो गया है। प्रथम प्रकार का मिश्रण महादेवी, पन्त, प्रसाद की कविता में है, दूसरे प्रकार का नवीन, 'दिनकर', सुधीन्द्र और तीसरे प्रकार का 'प्रेमा', 'अंचल' उदयशंकर भट्ट आदि की गीतियों में प्रस्फुटित हुआ है। इसी को यों भी कह सकते हैं कि आज का दुःखवादी गीतिकाव्य काम (sex), उदर और अधिकार की क्षुधा से पीड़ित है।

प्रसाद पन्त, महादेवी में दुःख का भाव रहस्यात्मक संकेत लेकर आध्यात्मिक साधना बन गया। महादेवी ने देखा कि जीवन ही दुःख की छाया है जहाँ कलियाँ रोते-रोते मुरझा जाती हैं

> मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो।
> मेरे गीले पलक छुओ मत मुरझाई कलियाँ देखो।
>
> ('नीरजा')

पर, रुदन में ही उन्हें जीवन की सार्थकता मिलगई और जीवन की समस्त पराजय को उन्होंने चिर विजय बना लिया उसे 'चिरप्रेमी' को निवेदित करके। ('एक हार में शत-शत जय') पन्त ने अपने प्रेम-विरह की वेदना को शक्ति में पर्यवसित किया है—

वेदना !–कितना विशद यह रूप है !
यह अँधेरे हृदय की दीपक–शिखा ।
रूप की अन्तिम छटा औ विश्व की–
अगम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि सी
('ग्रंथि')

और अपने सुखी की होने की घोषणा करदी है—
किन्तु मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोहर विपिन में ।
('ग्रन्थि')

'प्रसाद' ने उसे विश्वकल्याण में ओतप्रोत कर दिया है —
(१) घने प्रेम तरु तले
बैठ छाँह लो भव-आतप से तापित और जले !
('स्कन्दगुप्त')

निर्मम जाती को तेरा मंगलमय मिले उजाला,
इस जलते हुए हृदय को कल्याणी शीतल ज्वाला ।
(आँसू : 'प्रसाद')

शरीरी विरह को आध्यात्मिक रंग देकर इन कवियों ने अपनी ज्वाला को शीतल चन्दन बना लिया है ।

राजनीति के क्षेत्र में पराजित सेनानी 'दिनकर' और 'नवीन' क्रांति और प्रलय के लिए द्वार खोलने के लिए उद्विग्न हैं—
(१) कह दे शंकर से आज करें वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार;
सारे भारत में गूँज उठे 'हर-हर बम' का फिर महोच्चार !
('हिमालय' : दिनकर)

(२) प्राणों के लाले पड़ जावें, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार नभ में छा जाए !
('विप्लव गायन' : नवीन)

वाणी और विचारों में क्रांति भी कवि ने आमंत्रित की है :

परिवर्तन का, क्रांति-प्रलय का, गूँज उठे सब ओर घोर स्वर
देख दृष्टि हुंकार श्रवण कर अन्ध गन्धवह-मंडल काँपे
जो अपने ध्वंसक स्वर से माँ, प्राण-प्राण में आग लगा दे।
माँ वाणी, मेरी वाणी की वीणा में वह राग जगा दे !
('शंखनाद' : सुधीन्द्र)

(१) जो मिट जाते हैं चरणों के नीचे आकर कीट-पतंगे।
आसमान के नीचे रहते कठिन शीत में भूखे नंगे।
बे-घरबार; राह पर बैठे, अन्धे लूले, लँगड़े, पंगे।
आज उन्हीं में समझ रहे हैं दुनिया वाले हमें लफंगे।
('अग्नि-गान' : प्रेमी)

(२) भूखे शिशुओं की चीत्कारें सोख रहीं नयनों का पानी,
सूखी निचुड़ी चुसी हड्डियाँ करतीं विप्लव की अगवानी,
मुट्ठी भर दानों की तृष्णा महाक्रांति की आग लगाती,
आज क्षुधा इन कंकालों की सोये ज्वालामुखी जगाती।
(किरणबेला : 'अंचल')

आर्थिक (भौतिक) आघातों की प्रताड़ना से जिन कवियों की कविता में 'अग्निवाद' और 'ध्वंसवाद' आया है, उनमें 'प्रेमी' 'उज्ज्वल', उदयशंकर भट्ट आदि गिने जा सकते हैं।

: ४ :

राष्ट्रवाद और क्रांतिवाद

अठारहसौ सत्तावन का, भारत की सामन्तवादी सत्ताओं का विद्रोह विफल होगया था :

झाँसी, झाँसी, दिल्ली, पूना हार गये, टूटी तलवार।
वीर मराठों, सिक्ख, गोरखो और पठानों का था वार।

—सुभद्राकुमा..

कांग्रेस अनेक मञ्जिलें पार करती हुई—भारतीयों के 'जन्मसिद्ध अधिकार'—'स्वतन्त्रता' की ओर बढ़ चली थी। हिंसा और शस्त्र की क्रान्ति को छोड़कर भारतीय राजनीति ने अहिंसात्मक और शान्तिमय उपायों को अपना लिया था :

हम हिंसा का भाव त्यागकर विजयी, वीर अशोक बने।
काम करेंगे वही कि जिससे लोक और परलोक बने।

—सुभद्राकुमारी

भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त जैसी आतङ्कवादी शक्तियाँ यद्यपि जब-तब पुनः खड़ी होती रहीं किन्तु भारतीय मानस में अब 'अहिंसा' का शतदल विकसित हो चुका था। भारत का राष्ट्रवाद (Nationalism) अन्य राष्ट्रों की भाँति उग्र नहीं हुआ है। सबसे पहले वह अन्तर्मुख राष्ट्रवाद है। वह राष्ट्र के समाज की

रचना में विश्वासी है। उस समाज-रचना की आधार-शिलाएँ हैं—समता, सहयोग, सौहार्द्र। रवीन्द्रनाथ ने अपने एक गीत में आदर्श-स्वतन्त्र राष्ट्र का एक चित्र दिया है :

भारतीय राष्ट्रवाद

चित्त जेथा भयशून्य, उच्च जेथा शिर,
ज्ञान जेथा मुक्त, जेथा गृहेर प्राचीर
आपन प्रांगण तले दिवस-शर्वरी,
वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि'
जेथा वाक्य हृदयेर उत्समुख ह'ते
उच्छ्वसिया उठे, जेथा निर्बारित स्रोते
देशे देशे दिशे दिशे कर्मधारा धाय
अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय।
जेथा तुच्छ आचारेर मरुवालुराशि
विचारेर स्रोतःपथ फेले नाइ ग्रासि',
पौरुषेरे करेनि शतधा; नित्य जेथा
तुमि सर्व्व कर्म्म चिंता आनन्देर नेता,—
निज हस्ते निर्दय आघात करि पितः
भारतेरे सेइ स्वर्गे कर जागरित।

('नैवेद्य' : रवीन्द्रनाथ)

—जहाँ चित्त भयशून्य है, जहाँ मस्तक उच्च है और जहाँ ज्ञान मुक्त है, जहाँ गृह की प्राचीर आँगन में दिन-रात वसुन्धरा के क्षुद्र खण्ड नहीं कर देते,

—जहाँ वचन हृदय-उत्स से परिस्फुट और उच्छ्वसित होते हों, जहाँ कर्मधारा प्रत्येक दिशा में और प्रत्येक स्थल में निर्वारित स्रोत में बहती हो और सहस्रविध चरितार्थ होती हो।

—जहाँ तुच्छ आचारों को मरु-राशि विचारों के स्रोत-पथ को ग्रस्त न कर लेती हो,

—जहाँ तुम सब कर्मों और चिन्ताओं और आनन्दों का नेतृत्व करते हो,

—अपने हाथों से निर्दय आघात करके, हे पिता! उसी (स्वतन्त्रता के) स्वर्ग में भारत को जगादो!

भारत-देश एक राष्ट्र बना : आर्य्य-अनार्य्य, हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, पारसी, क्रिस्तान सबका पावन संगम और तीर्थ :

हेथाय आर्य, हेथा अनार्य हेथाय द्राविड़, चीन—
शक हून-दल पाठान मोगल एक देहे होलो लीन।
पश्चिमे आजि खुलियाछे द्वार : सेथा हते सबे आने उपहार,
दिवे आर निवे, मिलावे मिलिवे जावे ना फिरे।
एइ भारतेर महा-मानवेर सागर तीरे।
('गीताञ्जलि' : रवीन्द्रनाथ)

और सबने मिलकर उसे एक कण्ठहार पहनाया।—

अहरह तव आह्वान प्रचारित सुनि तव उदार वाणी,
हिन्दु, बौद्ध, सिख, जैन, पारसिक, मुसलमान, खिस्तानी,
पूरब पश्चिम आसे, तव सिंहासन पासे,
प्रेमहार हय गाँथा!
('भारत भाग्य विधाता' : रवीन्द्रनाथ)

हिन्दी में एक ओर ऐसी सर्वजनवन्दनीया भारतभूमि की प्रशस्तियाँ लिखी गईं, उसके अतीत का गौरवोज्वल रूप अङ्कित किया गया, दूसरी ओर उसकी वर्तमान् अधोगति और पराधीनता के अश्रुसिञ्चित करुण चित्र चित्रित हुए, तीसरी ओर आक्रामक, शोषक, पीड़क शक्ति के प्रति रोष और आक्रोश व्यक्त हुआ और चौथी ओर एक आदर्श समाज और राष्ट्र की कल्पना की प्रतिष्ठा की गई।

प्रशस्तियाँ और उद्बोधन

श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल आदि ने भारत-गीतों की जो परम्परा छोड़ी वह इस काल में कलामय गीतियों के रूप में प्रकट हुई। 'प्रसाद', 'पन्त' और निराला की गीतियाँ राष्ट्र-गीत बनने योग्य हैं। 'प्रसाद' का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' एक स्वप्नों का देश है क्षितिज के पार मेघों के पीछे छिपा हुआ सा: अरुण यह मधुमय देश हमारा!

> जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
> सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर-
> छिटका जीवन-हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
> लघु सुरधनु से पङ्ख पसारे कोमल मलय-समीर सहारे
> उड़ते खग जिस ओर मुहँ किये समझ नीड़ निज प्यारा।

('चन्द्रगुप्त': प्रसाद)

'निराला' की गीति में 'वन्देमातरम्' की-सी प्रकृति-सुषमा के साथ भारतमाता के उस मानवीय रूप की अर्चना भी है, जिसके पदतल का पूजन सागर का जल लंका के शतदल से करता है, गंगा जिसका धवल कंठहार है, हिमालय शुभ्र मुकुट और 'ओंकार' श्वास :

भारति जय विजय करे !
कनक-शस्य-कमल धरे !

लङ्का पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल स्तव कर बहुअर्थ भरे ।
तरु तृण वन लता वसन अञ्चल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण धवल धार हार गले ।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार शतमुख-शतरव-मुखरे ।

('गीतिका' : निराला)

पन्त का 'राष्ट्रगान' सार्वजनीन न होकर विशिष्ट वर्ग का राष्ट्रगान है, उसमें भारतीय जनता की श्रमजीवियों का ही स्वरूप मिला है अतः उसमें सार्वभौम भावना प्रतिध्वनित नहीं हो सकी :

गगनचुम्बि विजयी तिरंगध्वज इन्द्रचापमत् हे,
कोटि कोटि हम श्रमजीवीसुत संभ्रमयुत नत हे

उसमें 'वन्देमातरम्' की भाँति मलयपवन, शरदिन्दु, कुसुमित उपवन, शस्यश्री आदि का अभिनन्दन होते हुए भी, 'सत्य' और 'अहिंसा' के मानववादी स्वर होते हुए भी—

[अहिंसास्त्र जन का मनुजोचित चिर अप्रतिहत हे !
बल के विमुख, सत्य के सम्मुख हम श्रद्धानत हे !]

रूसी लाल झण्डे की झलक दिखा दी गई है :

किरण केलि रत रक्त विजय-ध्वज युगप्रभातमत् हे !

और केवल श्रमिक-कृषक जनों को ही वर्गमुक्त बनाया गया है :

वर्गमुक्त हम श्रमिक कृषक जन चिरशरणागत हे !

जबतक भारत में 'समष्टिवाद' न हो तबतक के लिए इसे 'कम्यूनिस्ट पार्टी' का ही 'राष्ट्रगान' रहना होगा। हाँ, उनकी 'भारतमाता' गीति की भारतमाता आज की दीना-हीना-पराधीना है। 'सुजला सुफला मलयजशीतला, शस्यश्यामला' होकर भी 'राहुग्रसित शरदेंदु हासिनी' है; 'नतमस्तक तरुतल निवासिनी' है :

तीस कोटि सन्तान नग्नतन
अर्धक्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़ असभ्य अशिक्षित निर्धन,
नतमस्तक तरुतलनिवासिनी
भारतमाता ग्रामवासिनी!

जिस दिन भारत 'वन्देमातरम्' गीत के अनुरूप बन जायगा, उसी दिन का राष्ट्रगान हमारा राष्ट्रगान होना चाहिए।

राष्ट्र के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त का 'मेरा देश' उनके एक स्वर्गिक स्वप्न का चित्र है :

है तेरी कृति में विक्रांति,
भरी प्रकृति में अविचल शांति!
फटक नहीं सकती है भ्रांति,
आँखों में है अक्षय क्रांति,

आत्मा में है अज अखिलेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

अतीत के वीरों का प्रशस्ति-गान भी इस राष्ट्रीय भावना का एक उन्मेष है। यह परम्परा द्विवेदी-कालीन 'मौर्य्यविजय', (सियारामशरण) से 'भारतभारती' में होती हुई 'वीरपञ्चरत्न'

('दीन') में चली आरही थी। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी स्वच्छन्द कल्पना द्वारा कल्पित देशवीरों को अपनी कथा का नायक बनाया था—मिलन, 'पथिक' और 'स्वप्न' में। 'प्रसाद' जी ने उसी काल में 'महाराणा का महत्त्व' लिखकर महाराणा प्रताप को श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई थी। इस काल में 'निराला' का कवि प्रसुप्त भारतीयता को जगाता है—

जागो फिर एक बार !
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती है द्वार—

यौवन मद में उन्मत्त तरुण रक्त को इस सशक्त कवि ने उद्बोध दिया है—

उगे अरुणाचल में रवि
आई भारती-रति कवि-कण्ठ में
क्षण क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति-पट,
गया दिन, आई रात,
गई रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने ही हजार—
जागो फिर एक बार !

('परिमल')

राठौड़ पृथ्वीराज के राणा प्रतापके लिखे हुए पत्र के वे ज्वलन्त अक्षर आज भी अमर हैं :

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागै जगदातार, पोहरे राणप्रतापसी ॥

मैथिलीशरण गुप्त ने पत्र को जो आधुनिक रूप दिया था, वह भी अत्यन्त ओजस्वी था :

ऊँघे हैं और हिन्दू, अकबर तम की है महाराज धानी
देखी है आपमें ही सहज सुजगता है स्वधर्माभिमानी
सोता है देश सारा मुगल नृपति का ओढ़ के एक वस्त्र
ऐसे में दे रहे हैं जग वर पहरा आपही सिद्ध शस्त्र ।
('पत्रावली')

'निराला' जी ने भी मिर्जा राजा सवाई जयसिंह के प्रति 'महाराज शिवाजी का पत्र' हमें दिया है, जिसमें कवि की जातीय-राष्ट्रीय भावना का उच्छ्वास व्यक्त हुआ है :

सुना है मैंने तुम
सेना से पाट दक्षिणापथ को
आये हो मुझपर चढाई कर,
जय-श्री जयसिंह !
मोगल सिंहासन के—
औरंग के पैरों के नीचे तुम रक्खोगे,
काढ देना चाहते हो दक्षिण के प्राण
मोगलों को तुम जीवदान,
काढ़ हिन्दुओं का हृदय, सदय ऐसे ।

निरालाजी के इस पत्र में हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दू सभ्यता का ही स्वर प्रमुख है—

याद रहे बरबाद जाता है हिन्दू धर्म, हिन्दुस्तान !

उनके 'जागो फिर एक बार' से गुरु गोविन्दसिंह को जगाने में भी यही भावना मुखर है।

रामकुमार वर्म्मा के कविहृदय में भी स्वदेश के उन हिन्दू वीरों—राजपूत क्षत्रियों—के प्रति पूजा की भावना है, जिसका उपहार है "चित्तौड़ की चिता'। कवि 'दिनकर' का हृदय आज के सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय है, जिसकी 'हुंकार' और 'रेणुका' ने भारत भू की विभूतियों के प्रति श्रद्धा व मस्तक झुकाया है। इस भारत-पुत्र के हृदय में 'हिमालय'

साकार, दिव्य गौरव विराट
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल।

के रूप में साकार प्रतिष्ठित है, जो भारत का सीमापति है, प्रहरी है, जिसके घर में कितनी ही द्रुपदाएँ अपमानित और कितनी ही पद्मिनियाँ भस्मीभूत हुई हैं, जिसके राजस्थान और प्रताप, जिसके अवध और राम, वृन्दा और घनश्याम, मगध और चन्द्रगुप्त-अशोक, कपिलवस्तु और बुद्धदेव, वैशाली और महावीर, मिथिला और विद्यापति आज नामशेष से अतीत की स्मृति सजग कर रहे हैं। ऐसे ही दूसरे राष्ट्रधर्मी कवि हैं श्री सोहन-लाल द्विवेदी, जिनकी 'भैरवी' राष्ट्रभारत को जागरण-वेला की भैरवी है। बैरी से लोहा लेने के लिए कवि राणाप्रताप को जगाता है:

मेरे प्रताप, तुम फूट पड़ो मेरे आँसू की धारों से
मेरे प्रताप, तुम गूँज उठो मेरी संतप्त पुकारों से;
मेरे प्रताप, तुम बिखर पड़ो मेरे उत्पीड़न भारों से,
मेरे प्रताप, तुम निखर पड़ो मेरे बलि के उपहारों से!

('राणाप्रताप के प्रति')

देश और समाज के लिए जीवन उत्सर्ग करनेवाले गांधी, जवाहरलाल, मालवीय, सुभाष और कस्तूर बा जैसे वीरों और वीरांगनों के प्रति कवि सदैव नतशिर रहा है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास की एक ज्वलन्त उल्का है। उसके क्षणिक प्रकाश को सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी 'झाँसी की रानी' वीरगीति में दिखाया। ५७ के विद्रोह की यह चित्ररेखा अपने आप में एक काव्य है :

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की क़ीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मनमें ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी !

कवयित्री ने झाँसी की रानी की स्मृति इसलिए जगाई है

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी !

विजातीय और विदेशीय आततायी शक्ति से लोहा लेने के लिए जिन स्वाभिमानी वीर-वीरांगनाओं ने अपने रक्त का दान दिया है, उनमें राणा प्रताप, झाँसी की रानी, दुर्गावती, चित्तौड़ की पद्मिनी शीर्षस्थानीय हैं। राष्ट्रीय कवियों ने अपनी भावना को इनकी प्रशस्तियों में देकर कृतार्थ किया है। श्यामनारायण पाण्डेय का 'हल्दीघाटी' काव्य प्रताप की शौर्य-गाथा है और 'जौहर' (सुधींद्र) पद्मिनी के उत्सर्ग की कहानी। 'हल्दीघाटी' के कवि की लेखनी ने भी 'जौहर' दिखाया है। उदयशंकर भट्ट का

'तक्षशिला' काव्य आर्य सभ्यता के सुदूर स्वर्णकाल की एक-स्मृति सजग कर देता है।

ऐसे वीरोदात्त नायकों में महात्मा गांधी मूर्द्धन्य हैं, जिनके चरणों में सुमित्रानन्दन पन्त, भारतीय आत्मा, सियारामशरण गुप्त, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी जैसे सिद्ध-प्रसिद्ध कवियों ने ही नहीं असंख्य अज्ञात कवियों ने अपनी श्रद्धा की अञ्जलियाँ चढ़ाई हैं। पन्त में 'बापू के प्रति' पूजाभाव है जो बुद्धिमूलक है, अन्धश्रद्धाप्रेरित नहीं, क्योंकि बापू मानव की नग्न पशुता के उद्धारक हैं; उसे मानवता में पर्यवसित करने वाले हैं :

जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर चेतना, अहिंसा नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया तुमने मानवता का सरोज!

वे घृणा के ऊपर प्रेम की विजय हैं, 'विश्वानुरक्त' हैं, सर्वस्व त्यागी हैं, अन्धकारमग्न राष्ट्र के प्रकाशदाता हैं, 'मानवी कला के सूत्रधार' हैं, यन्त्राभिभूत युग में मानव के परित्राता हैं, जग-जीवन के सूत्रधार हैं, अन्तरशासन के राम राजा हैं, वन्दिनी मानवता को मुक्त करनेवाले कृष्ण हैं।

साम्राज्यवाद था कंस वन्दिनी मानवता पशुबलाक्रान्त
शृङ्खला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद शक्ति-भ्रान्त,
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त कान्त,
जनशोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नतपद प्रणत-शान्त!

कवि को प्रत्यय है कि उनके द्वारा निर्मित अमर आधार पर भावी की संस्कृति समासीन होगी, नवयुग का निर्माण होगा, और मानवता की रचना होगी :

तुम मांस, तुम्ही हो रक्त-अस्थि, निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य ! तुम्हारा निःस्व त्याग है विश्वभोग का वर साधन ।
इस भस्मकाम तन की रजसे जग पूर्णकाम नव जग-जीवन
बीनेगा सत्य-अहिंसा के ताने-बानों से मानवपन !

'नवीन' के 'गुरुदेव गांधी' बलिपन्थी और 'क्षुरस्यधारा पथ-गामी' हैं—

हे क्षुरस्य धारा-पथगामी, हे जगमोहन, जय-जय हे !
युद्धवीर हे रुद्रपीर हे, नीतिविद्रोहन जय-जय हे !
अनय-विजय हे अभय-निलय हे, सदय हृदय पापक्षय हे !
हे कृतान्त से कालकूट तुम, जीवन-दायक मधुपय हे !

सोहनलाल द्विवेदी के हृदय में बापू के प्रति भक्ति-भाव है । अर्जुन के विराटमूर्ति कृष्ण की भाँति उनका गांधी कोटिचरण, कोटिबाहु, कोटिमूर्ति और कोटिरूप है, क्योंकि:

चल पड़े जिधर दो डग मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि गड़ गये कोटि दृग उसी ओर,

वह युगवाणी है, युगनिर्माता है, युगावतार है :

तुम बोल उठे, युग बोल उठा, तुम मौन बने युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे कर संचित, युगकर्म जगा युगधर्म तना,
युग परिवर्तक युगसंस्थापक, युगसञ्चालक हे युगाधार !
युगनिर्माता, युगमूर्ति ! तुम्हें युग-युग तक युग का नमस्कार !
('भैरवी')

प्रसाद मयी भाषा में अर्थगौरव की गरिमा इस 'नमस्कार' में है । सियारामशरण का 'बापू' अत्यन्त उदात्त भावमय, अर्थगंभीर

प्रशोत्त काव्य है। वह एक अद्भुत कलश है; बापू की कल्पना एक विराट् पुरुष, विश्वविभूति के रूप में बापू में हुई है...

छोटे-से क्षितिज हे,
वसुधा के निज हे,
वसुधा तुम्हारे बीच स्वर्ग में समुन्नत है
स्वर्ग वसुधा में समागत है,
आकर तुम्हारे नये संगम में
लघु अवतीर्ण है महत्तम में।

सुभद्राकुमारी, 'एक भारतीय आत्मा' नवीन 'दिनकर' और सोहनलाल द्विवेदी ने अपने अनेक गीतों में भारत के चरणों में अश्रुओं का अर्घ्य चढ़ाया है। पराधीन और परतन्त्र वातावरण में कवि को व्यथा और वेदना का ताण्डव दिखाई देता है—

हाथ काँपता, हृदय धड़कता है मेरी भारी आवाज।
अब भी चौंकाता है जलियाँवाले का वह गोलन्दाज।

बहनें कई सिसकती हैं हा ! सिसक न उनकी मिट पाई।
लाज गँवाई गाली पाई तिसपर भी गोली खाई।
डर है कहीं न मार्शल लॉ का फिर से पड़ जाये घेरा।
ऐसे समय द्रौपदी जैसा कृष्ण सहारा है तेरा।

— सुभद्राकुमारी

वे वसन्त को भी इस करुणा और शोक से रँगना चाहती हैं—

कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर,
कलियाँ उनके लिए चढ़ाना थोड़ी लाकर।

आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं,
अपने प्रिय परिवार-देश से भिन्न हुए हैं;
कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना,
करके उनको याद अश्रु के ओस बहाना,
आओ प्रिय ऋतुराज ! किन्तु धीरे से आना।
यह है शोकस्थान यहाँ मत शोर मचाना।

('जलियाँवाला बाग में बसन्त')

'एक भारतीय आत्मा' की इन पंक्तियों में कारागार के हृदय का ही नहीं समस्त भारत-देश का एक दयनीय चित्र उद्भासित है—

जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना।
जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है!

('कैदी और कोकिला')

'नवीन' के 'पराजय-गीत' में एक पराजित राष्ट्र-सेनानी का यथार्थ चित्र है—

आज खड्ग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ।
विजय-पताका झुकी हुई है लक्ष्यभ्रष्ट यह तीर हुआ।
वर्दी फटी, हृदय घायल, मुख पर कालिख क्या वेश बना।
आँखें सकुच रहीं कायरता के पङ्किल में देश सना।
पर पराजित ओ रणचण्डी के कुपूत हट जा, हट जा!
अभी समय है कह दे माँ मेदिनी जरा फट जा, फट जा!

('पराजय गीत')

'दिनकर' के हृदय में देश की वर्तमान व्यथा से मर्मांतक पीड़ा कसक रही है—

उस पुण्य भूमि पर आज तपी रे आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे डस रहे चतुर्दिक विविध व्याल
कितनी मणियाँ लुट गईं ? मिटा कितना मेरा वैभव अशेष
तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर वीरान हुआ प्यारा स्वदेश !
कितनी द्रुपदा के बाल खुले कितनी कलियों का अन्त हुआ !
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ कितने दिन ज्वाल-वसन्त हुआ !

('हिमालय के प्रति')

(ख) त्याग बलिदान और उत्सर्ग

१८५७, १८८५, १९०६, १९१९, १७२१, १९३०, भारतीय राष्ट्र की स्वाधीनता-यात्रा में मील के पत्थर (Mile-stones) हैं। राष्ट्रीय कविता में इन वर्षों के आन्दोलनों की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती रही हैं। ऐसी राष्ट्रीयता को अपनी बाँसुरी की फूँक बनाने वाले प्रमुख कवियों में सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा), नवीन, 'दिनकर' सोहनलाल द्विवेदी के नाम शीर्ष-स्थानीय हैं। इनमें सुभद्राकुमारी और 'एक भारती आत्मा' त्याग और उत्सर्ग के कवि हैं।

—सुभद्रा कुमारी चौहान—

प्रेम, शैशव और राष्ट्रीयता सुभद्राकुमारी चौहान की कविता की तीन ही प्रेरणाएँ हैं। कांग्रेस, राष्ट्रीयता गांधी के नेतृत्व में, असहयोग और सत्याग्रह का शङ्खनाद कर चुकी थी। असहयोग और सत्याग्रह राष्ट्र की स्वाधीनता के दो साधन थे। कांग्रेस, राष्ट्र के लिए मुक्ति-दात्री है—और गांधी मुक्ति-मंत्र के प्रदाता।

भारत-माँ की बेड़ी काटने की ज्वलन्त तड़प उनकी कविता का दूसरा नाम है—

सबल पुरुष यदि भीरु बने तो हमको दे वरदान सखी !
अबलाएँ उठ पड़े देश में करें युद्ध घमसान, सखी !
देखें फिर इस जगती-तल में होगी कैसे हार सखी !
भारत-माँ की बेड़ी कटे होवे बेडा पार सखी ! $

असहयोगी और सत्याग्रही का आत्मिक बल उसमें हुंकार उठाता है—

दो विजये, वह आत्मिक बल दो वह हुंकार मचाने दो !
अपनी निर्बल आवाज़ों से दुनिया को दहलाने दो !
'जय स्वतंत्रिणी भारत-माँ'-यों कहकर मुकुट लगाने दो !
हमें नहीं इस भू मण्डल को माँ पर बलि बलि जाने दो ।§

परतन्त्र राष्ट्र का प्रत्येक त्यौहार, विजयादशमी; दीपावली, होली, राखी राष्ट्रीय कवि के लिए एक नव-नूतन सन्देश वाहक है ! बहिन सुभद्रा की कविता में एक नारी-सुलभ सजल मर्मव्यथा है—

मैं हूँ बहन किंतु भाई नहीं है,
नहीं है खुशी पर रुलाई नहीं है।
मेरा बन्धु माँ की पुकारों को सुनकर
के तैयार हो जेलखाने गया है
छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को
वह जालिम के घर में से लाने गया है। ||

$-§ 'विजयादशमी' ('कुल') || 'राखी की चुनौती' (मुकुल—)

सुभद्रा की कविता में राखी और हथकड़ी, गांधी और मोहन (कृष्ण) एकाकार हो गये हैं :

आते हो भाई ! पुनः पूछती हूँ—
कि माता के बन्धन की है लाज तुमको ?
तो बन्दी बनो, देखो बन्धन है कैसा,
चुनौती यह राखी की है आज तुमको ।*

गांधी की अहिंसा का पौरुष और आत्मोत्सर्ग का अपरिमेय बल उसमें अभिनंदित हुआ है—

ढीठ सिपाही की हथकड़ियाँ दमन-नीति के वे कानून ।
डरा नहीं सकते हैं हमको यदपि बहाते प्रतिदिन खून ।
हम हिंसा का भाव त्याग कर विजयी वीर अशोक बनें ।
काम करेंगे वही कि जिसमें लोक और परलोक बनें ।

परन्तु उसमें आत्मदमन और संयम की प्रेरणा भी है :

है इतना उत्साह कि डर है हम उन्मत्त न बन जावें ।
है इतना विश्वास कि भय है हम गर्विष्ठ न कहलावें ।
इतना बल है प्रबल कहीं हम अत्याचार न कर डालें ।
यही सोच-संकोच कहीं मर्यादा पार न कर डालें !

सुभद्राकुमारी की कविता आत्मानुभूति की कविता है। वह जीवन के क्रोड़ में रहकर कविता रचती हैं अतः उसमें यथार्थ जीवन के अनेक चित्र हैं।

---

*—'राखी की चुनौती' ('मुकुल')

—'एक भारतीय आत्मा'—

'मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।'

'एक भारतीय आत्मा' का जीवन इन पंक्तियों में निहित है। राष्ट्र-दैवत का वह आराधक है, राष्ट्रमन्दिर का वह पुजारी है—

'हाय, राष्ट्रमन्दिर में जाकर तुमने पत्थर का प्रभु खोजा!'

उसकी आँख मातृभूमि से नक्षत्रों तक रेखा खींचती है, दमन की यातना उसे साधना है, बलिदान उसकी आत्मा का ओज है और उसकी कल्पना आराधिका है—

मैं बलि का गान सुनाती हूँ प्रभु के पथ का बनकर फकीर।

वह 'बलि-धारा-पन्थी' है, कष्टों के उपकरण से 'मरण त्यौहार' मनाता है,

मातृभूमि-हित के कष्टों का राज्य पुनः पाऊँ सविवेक,
सिंहासन मिलने के पहले क्या यह करती हो अभिषेक?
आता है स्वातन्त्र्य-देवता उनके चरण धुलाने में,
सिखा रही हो साथी होऊँ, अविरल अश्रु बहाने में।

('आँसू')

राष्ट्रदेवता 'हिमकिरीटिनी' की उपासना में वह अपने हृदय का रक्त, प्राणों का अर्घ्य चढ़ाता है:

'हिमकिरीटिनि' ने मँगाये हैं सखी तव प्राण।'

उनकी कविता राष्ट्र-देवता की पूजा है। उनके हृदय में बसा वृन्दावन उनके चर्म-चक्षु के आगे 'हिमकिरीटिनी' का शृंगार धारण करके आता है और तब उनकी समस्त आराधना और उपासना

कारावास और सूलों की तपस्या तथा मरण की साधना बन जाती है :

'रुधिर होजाय अरे बेस्वाद, लाडला मरण-ज्वार जो न हो।'

'बलिदान' इस योद्धा और क्रान्तिकारी, भक्त और प्रेमी के जीवन का संबल है। वही उसका 'नैवेद्य' है!

जब सिपाही उठें, सेनानी उठे ललकार,
मातृबन्धन-मुक्ति का जिस दिन बने त्यौहार,
जब कि जन-पथ लाल हो, हो किसी की तलवार,
आयगा सिर काटने उस दिवस मालाकार।

('हिमकिरीटिनी')

वह राष्ट्र की स्वाधीनता में संग्राम का एक सैनिक है, जो कहता है :

बोल अरे सेनापति मेरे! मन की घुण्डी खोल,
जल-थल-नभ हिल-डुल जाने दे, तू किञ्चित मत डोल!
दे हथियार या कि मत दे तू पर तू कर हुंकार,
ज्ञातों को मत अज्ञातों को तू इस बार पुकार!
धीरज रोग, प्रतीक्षा, चिन्ता, सपने बनें तबाही,
कह 'तैयार'! द्वार खुलने दे, मैं हूँ एक सिपाही!

('सिपाही')

उनकी कविताएँ राष्ट्रीय प्रगति की पगध्वनियाँ हैं जिनमें 'मुँह-बन्दी', 'भारत रक्षा', 'रौलट-बिल', और 'जलियाँवाला बाग' हैं—

मैं 'मुँहबन्दी' का हार हिये,
'मतलिखो' कठिन कङ्कण धारे,
'भारत-रक्षा' के शूलों की

पाँवों में बेड़ी झनकारे!
'हथियार न लो' की हथकड़ियाँ,
रौलट का हिय में घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा,
कहती थी, आँचल लाल किये!

माखनलाल की कविता मे अनुभूति की वास्तविकता है। उसके पग शून्य में नहीं, मिट्टी की धरती पर हैं। इसीलिए उसमें प्रभविष्णुता है। दमन की ज्वाला में कवि ने वेदना की अनुभूति पाई है, परतंत्र देश की यातना में कवि ने व्यथा की निर्झरिणी खोजी है। इसीलिए माखनलाल की कविता में रस में डुबाने की क्षमता-ममता है।

स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक के रूप में कवि ने कृष्ण-मन्दिर की यात्रा की है। १९३० के सत्याग्रह के समय लिखी गई उनकी 'कैदी और कोकिला' कविता कारावास का मार्मिकतम चित्र है:

बन्दी सोती हैं, है घर घर श्वासो का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है लोहे के दरवाजों का,
बूटों का, या सन्त्री की आवाजों का,
या गिननेवाले करते हा हा कार!
गिनती करते हैं—एक, दो, तीन चार!
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा! मधुर क्यों गाने आई आली!

क्या हुई बावली ? अर्द्ध रात्रि को चीखी कोकिल बोलो तो।

किस दावानल की ज्वालाएँ हैं दीखी ? कोकिल बोलो तो।*

कवि के हृदय की ज्वाला अश्रुसिक्त होकर कैदी की इस आर्त्त-वाणी में घुल गई है :

क्या ? देख न सकती जंजीरों का गहना ?

हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना,

कोल्हू का चर्रक चूँ ?—जीवन की तान,

गिट्टी पर लिखे अँगुलियों ने क्या गान ?

हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,

खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूआ।

दिन में करुणा क्यों जगे, रुलानेवाली ?

इसलिए रात मे गज़ब ढा रही आली ?

इस शान्त समय मे, अन्धकार को बेध, रो रही हो क्यों ? कोकिल बोलो तो।

चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति बो रही क्यों हो ? कोकिल बोलो तो !||

'युग का आकर्षण अपने परमतत्व से अस्तित्व का पतन है।' प्रश्नोपनिषद की इस उक्ति की आलोचना में कवि ने कहा है—'यह यदि कवि के युग-मोह पर नुकताचीनी है, तो अवतारवाद पर इसे कड़वी आलोचना कहना पड़ेगा। किन्तु युग का गायक, युग के परिवर्तनों को आँखें मूँदकर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नहीं रख सकता।'

---

* || 'कैदी और कोकिला' ('हिमकिरीटिनी')

वैष्णव भक्त और राष्ट्रसेवी की अनुभूतियाँ 'एक भारतीय आत्मा' में एकाकार हुई हैं। कवि-हृदय राष्ट्रदेवत के चरणों में प्रवाहित है; राष्ट्र और भगवान् 'एक भारतीय आत्मा' के लिए एक ही वस्तु के दो नाम हैं :

उठा दो वे चारों कर कंज देश को लो छिगुनी पर तान,
और मै करने को चल पड़ूँ तुम्हारी युगल मूर्ति का ध्यान !

लोकमान्य तिलक में उन्होंने 'वसुदा के मोहन' का रूप देखा है :

(१) दुखियों के जीवन लौट पड़ो : मेरे घनगर्जन लौट पड़ो।
जसुदा के मोहन लौट पड़ो, सित कालीमर्दन लौट पडो !†

(२ अगणित कंसों ने सम्मुख सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया।‖

साँवलियाँ की सुधि में

'हाँ, उस छलियाँ को, साँवलियाँ को, टेर लगे, धीरे-धीरे',

गाते गाते भी वे नहीं भूलते कि

तरुलता सींखचे, शिला-खण्ड दीवार,
गहरी सरिता है बन्द यहाँ का द्वार,
बोले मयूर जंजीर उठी झनकार,
चीते की बोली, पहरे का हुशियार!
मै आज कहाँ हूँ, जान रहा हूँ बैठ यहाँ धीरे, धीरे !‡

सारा भारत-राष्ट्र उनके लिए 'कंस का बन्दी' है! इसलिए उसके हृदय की रस-धारा 'कालिन्दी' है : 'काले अन्तस्थल से छूटी कालिन्दी की धार!' उनकी आत्मा आराध्य के प्राणों पर लहरानेवाली 'नर्मदा' है!—

†—‖ तिलक ('हिमकिरीटिनी') ‡ 'धीरे धीरे' ('हिमकिरीटिनी')

जिस दिन रत्नाकर की लहरें उनके चरण भिगोने आये,
जिस दिन शैल-शिखरियाँ उनको रजत-मुकुट पहनाने आवें,
लोग कहें, मैं चढ़ न सकूँगी—बोझीली; प्रण करती हूँ सखि !
मैं नर्मदा बनी उनके प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि !*

(हिमकिरीटिनी)

इसी भक्ति और आध्यात्म की भावना से आलोचकों ने उन्हें रहस्यवाद कहा है, परन्तु माखनलालजी जीवन के सभी उपकरणों को लेकर कविता की राह से अध्यात्म की ओर जाते हैं। वे 'शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त और विचारों के क्रांतिकारी हैं।' परन्तु उनके भीतर के योद्धा विचारक प्रेमी और भक्त सब के सब एक ही लक्ष्य की ओर चलते हैं और चलते हैं साधना की आग में पिघल सभी कवि हो जाते हैं। जीवन की गो को दुहकर अपनी साधना की आँच में उसे तपा कर, वक्रोक्ति का 'जामन' देकर उसे उन्होंने भावना की मथानी में मथा है और उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कविता माखन जैसी कोमल, मधुर और पवित्र हो गई है।

—सोहनलाल द्विवेदी—

राष्ट्र की वन्दना और अर्चना के गायकों में सोहनलाल द्विवेदी अप्रितम हैं। उनके स्वर में एक उदात्तसंस्कृति है जो उनके प्रत्येक छन्द-बन्ध में मुखर हो उठती है। इस कवि की कविता राष्ट्र की 'भैरवी' है—इसका छन्द राष्ट्र देवता का 'पूजागीत' है हृदय के तारों पर वह वन्दिनी मा की शृंखला तोड़ने को स्वर उठाता है :

* तिलक ('हिमकिरीटिनी' 'धीरे धीरे' ('हिमकिरीटिनी')

जब हृदय का तार बोले, शृंखला के बन्द खोले
हों जहाँ बलि शीश अगणित एक शिर मेरा मिलालो ।

'सोहनलाल की व्यथा का उद्गम राष्ट्र से होता है, उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक तथा विधायक होती है।' जननी-जन्मभूमि की कड़ियों से उसके प्राण उद्वेलित हो उठे हैं और उन्होंने अपनी कविता को राष्ट्र की जागरण-वेला की 'भैरवी' और अपनी अर्चना को 'पूजागीत' बना लिया है। अर्द्धशताब्दी से भारत-राष्ट्र की भूमि पर जो जीवन जागरण, बल और बलिदान की पुण्य साधना हो रही है सोहनलाल की कविता उसकी जीवित चित्र-लेखा है। खादी गीत, और ग्राम-गीत, प्रयाण-गीत और अभियान-गीत किसानों और मजदूरों के उद्बोधनों और उद्घोषों, दाण्डी-मार्च और त्रिपुरी-जुलूस के पदाघातों से वह मुखरित और निनादित है; उसमें भारत-माता की हथकड़ियों बेड़ियों की झनझनाहट है, अभिमान करती हुई विजय वाहिनियों के शंख विषाणों की गर्जना है, बलिदानियों और शहीदों की पूजा के अक्षत हैं। वर्तमान युग के भारत के राष्ट्रीय जीवन की गति-विधि उसकी कविता में साकार हुई है। सोहनलालजी वन के कवि हैं—

छेड़ अपनी रागिनी तू, चित्त प्राणोंन्मादिनी तू,
दग्ध जीवन के क्षणों को स्निग्ध नव मकरन्द कर दे।
('पूजा-गीत')

वे जागृति के गायक हैं :

जाग! प्रलयंकर भयंकर। जाग त्रिनयन! जाग शंकर!
भस्म हो अभिशाप युग का मुक्त हो गति रुद्ध जीवन।
जाग! जनगण! ('पूजा-गीत')

वे बल के लेखक हैं :

भुजदण्डों के लौह दंड में वज्र शक्ति जग रही आज है,
जिसके वक्षस्थल में बल है उसके सिर पर सदा ताज है।
('युगाधार')

वे बलिदान के चित्रकार हैं :

प्राण और प्रण की बाजी का लगा है फेरा,
उतरेंगी तेरी कड़ियाँ या उतरेगा सिर मेरा !
('युगाधार')

राष्ट्रीय जीवन का परिपूर्ण संस्पर्श सोहनलाल द्विवेदी की कविता में है। जिस हृदय से वह आविर्भूत हुई है वह राष्ट्रभावना में ओतप्रोत है और राष्ट्र और युग के प्रति कवि सच्चा है। और कवि के प्रति उसकी कविता।

(ग) विद्रोह और विस्फोट की कविता

राष्ट्रीय भावना में विद्रोह और विस्फोट इसी काल की **कविता** से दिखाई देता है। सौम्यता के स्थान पर उसकी प्रतिक्रिया में आनेवाली एक उग्रता इस काल की विशेषता है।

'नवीन' (बालकृष्ण शर्मा)

राष्ट्रीय भावना और कर्म में नवीन' जी 'एक भारतीय आत्मा' के सहचारी, अनुज हैं। भारतीय आत्मा की भाँति 'नवीन' राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक हैं और राष्ट्रीय वीणा के वादक हैं—जिसके स्वरों पर उन्होंने बन्दी जीवन के, सैनिक-जीवन के अनेक राग गाये हैं। सत्याग्रही (गणेशशंकर विद्यार्थी) की विदाई में वे गाते हैं :

"ताला , कुंजी , लालटेन , जँगला , बेड़ी ये सब हैं ठीक;"
खींच चुकी है नौकरशाही अपने सर्वनाश की लीक।
'चक्कर' से रोटी आवेगी, 'डब्बू' भर आवेगी दाल;
तू शकटार बना है—पापी नन्दवंश का जीवित काल।
तेरी चक्की के ये गेहूँ पिसते हैं—पिसजाने दे;
चक्की पिसवानेवालों को मिट्टी मे मिस जाने दे।*

और इसी प्रकार 'कैदी का स्वागत' भी करते हैं—

माँ ने किया पुकार, बढ़ा तू चढा हुआ कुरबान।
हमने देखा तुझे टहलते सिकचों के दरम्यान।
हाथों में थी मूँज कभी बैठा चक्की पर गाते।
कंबल बिछा ओढ कम्बल दिन बिता दिये मदमाते।
बहुत दिनों के बिछुडे प्यारे अंतर हिय से सटजा।
आज रिहाई हुई दौड़ या मोहना गले लिपट जा। $

"कविने १९२० के सत्याग्रह की पराजय पर 'पराजय गीत' लिखा—

आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ,
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ।
वर्दी फटी, हृदय घायल, मुख पर कालिख क्या वेश बना ?
आँखे सकुच रही, कायरता के पङ्कल से देश सना,
अरे, पराजित, ओ! रणचण्डी के कपूत, हटजा हटजा,
अभी समय है, कह दे माँ मेदिनी, जरा फटजा, फटजा।
हन्त! पराजय-गीत आज क्या द्रुपद-सुता का चीर हुआ ?

---

* 'जाने पर' ('कुंकुम')　$ 'क़ैदी का स्वागत'

खिचता ही आता है जब से खाली यह तूणीर हुआ।
('पराजय-गीत')

परन्तु 'नवीन' वस्तुत: विद्रोह के कवि हैं: 'पराजय गीत' के स्वर में भी विजय का एक अन्तर्हित हुङ्कार सुनाई पड़ता है। पराजय और उत्पीडन के आघात कवि के मानी हृदय में एक क्रुद्ध ज्वाला जगा देते हैं और तब 'नवीन' एक पदाहत फणी की भाँति फुङ्कार उठते हैं—

धुआँ उठे, पाखण्ड जले, हियखण्ड भुने देखे त्रिपुरारी,
अरी धधक उठ, धक धक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी!

'नवीन' जीवन में एक उष्णता, एक उत्ताप, एक उद्वेग, एक विस्फोट, एक विप्लव के उपासक हैं—उन्हें जीवन की जड़ता, अकर्मण्यता, सुलग सुलग कर जलना, सिसकना, रुचिकर नहीं। कवि से भी वे अग्नि और विप्लव की वाणी माँगते हैं—

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।
बरसे आग, जलद जल जायें, भस्मसात् भूधर हो जाएँ,
पाप-पुण्य सदसद्भावों की धूल उड़ उठे दायें बायें,
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारक वृन्द विचल हो जायें,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जये।

इस प्रलय में वे सर्वनाश चाहते हैं—बन्धन का, जड़ता का, गतानुगतिकता का :

माता की छाती का मधुरसमय पय कालकूट होजाये,
आँखों का पानी सूखे, हाँ, वह खून की घूँट होजाये,

एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाये,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित होजाये,
और दूसरी ओर कम्पादेने वाला गर्जन उठ धाये।
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये!

उन्हें वह विश्व-विधान नहीं चाहिए जो जड़ता का पोषक हो,
वह शान्ति नहीं चाहिए जो श्मशान की हो :

नियम और उपनियम के ये बन्धन टूक टूक हो जाएँ।
विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो गाएँ।
शान्ति-दंड टूटे, उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए!
उसकी श्वासोच्छ्वास-दाहिका जग के प्रांगण में छहराये!
नाश! नाश!! हाँ, महानाश!!! की प्रलयंकरी आँख खुलजाए,
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे अंग अंग झुलसाए।

और कवि को अपने अनल-गायन में प्रतीति है :

जीवन में जंजीर पड़ी खनखन करती है मोहक स्वर से,
'बरसों की साथिन हूँ—तोड़ोगे क्या तुम अपने इस कर से?'
अन्दर आग छिपी है, इसे भड़क उठने दो एक बार अब,
ज्वालामुखी शांत है, इसे कड़क उठने दो एक बार अब;
दहल जाय दिल, पैर लड़खड़ाये, कँप जाय कलेजा उनका;
सर चक्कर खाने लग जाये, टूटे बन्धन शासन-गुण का,
नाश स्वयं कह उठे कड़ककर निज गंभीर कर्कश से स्वर मे—
'रुद्ध गीत की क्षुब्ध तान है निकला मेरे अन्तरतर से।'

'नवीन' के इस संगीत में विप्लव की भैरव रागिनी है। उद्बुध और जाग्रत जीवन का दर्प और रोष भरा हुंकार 'नवीन' की कविता में पहली बार पुनाई दिया।

इस विद्रोही कवि का विद्रोह निष्क्रिय प्रतिरोध ही नहीं है वह सक्रिय विरोध के रूप में प्रस्फुट हुआ है। देशभक्ति और राष्ट्रवाद की सौम्य भावना का ही उग्र रूप उसमें पाया जाता है। 'नवीन' की कविता से हिन्दी मे 'क्रान्ति' और विप्लव' का स्वर उठता है। वे हिन्दी कविता मे 'क्रातिवाद' के अग्रदूत हैं।

क्रान्तिवाद के अग्रदूत

क्रांतिवादी कवि अन्तरंग और बहिरंग जीवन के दोनों पक्षों पर दृष्टि-निक्षेप करता है। वह राष्ट्र की सीमा-रेखा के बाहर भी अपनी भावना की परिधि फैलाता है। विश्व भर में वह एक नवीन राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था (Order) चाहता है—जिसमें शोषित-पीड़ित न हों, जहाँ मानवता अपमानित न हो। पीड़ित मानवता उनके हृदय में विप्लव का विस्फोट जगाती है। 'नवीन' के क्रान्तिवाद का मूल है समाज की व्यापक हिंसा :

> हे मानव कबतक मेटोगे-यह निर्मम महाभयंकरता ?
> बन रहा आज मानव देखो मानव ही का भक्षण-कर्त्ता।

और इसीलिए मानव के प्रति उसका एक मात्र सन्देश है—

> है दुनिया बहुत पुरानी यह रच डालो दुनिया एक नई,
> जिसमें सिर ऊँचा कर विचरें इस दुनिया के बेताज कई।

('कस्त्वं ? कोहम्' ?)

मानव की आज से बुभुक्षा में वे समाज की रुग्णता और जर्णता देखते हैं : इससे उनमें एक विद्रोह का विस्फोट उठता है—

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को,
उस दिन सोचा आग क्यों न लगा दूँ आग आज इस दुनिया भर को!
यह भी सोचा, क्यों न टेटुआ घोंटा स्वयं जगपति का ?
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।

* * * * *

ओ भिखमंगे, अरे पतित तू ओ मजलूम, अरे चिर दोहित,
तू अखण्ड भंडार शक्ति का, जाग अरे निद्रा-सम्मोहित;
प्राणों को तड़पानेवाली हुङ्कारों से जल-थल भर दे;
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित फलीता धर दे।

('जूठे पत्ते')

शोषित वर्गों की ओर कवि की आँखें खुली हुई हैं; और उनकी भावना सिहर उठती है—

जिनके हाथों में हलबक्खर-जिनके हाथों में धन है।
जिनके हाथों में हँसिया है वे भूखे हैं, निर्धन हैं!

'नवीन' की यह क्रांतिवादी कविता उस सीमा-रेखा पर पहुँचती है जहाँ से 'साम्यवाद' (समष्टिवाद) का संसार आरंभ हो जाता है। परंतु उनका समष्टिवादी दृष्टिकोण माँगा हुआ नहीं है क्योंकि यह कवि अपनी कविता पर हँसिया और हथौड़े की छाप नहीं देना चाहता। गांधी और आज के युग के प्रमुख विचारकों का स्वर ही उसकी वाणी में मुखर हुआ है।

—'दिनकर' रामधारीसिंह—

'दिनकर' राष्ट्रीयता के उद्यान में कूकनेवाला अनलवर्षी

कोकिल है। यदि किसी ज्वालामुखी के तरल, उष्ण और विस्फोटक लावा का गीत में बाँध दिया जाय तो उसका नाम होगा 'दिनकर' की कविता। 'रेणुका' का—पृथ्वी का सन्देहग्राहक 'दिनकर' जब प्रकट हुआ तब उसकी आँखों ने केवल तीस वसन्त देखे थे। परन्तु उसने अपनी यौवन-सुलभ कल्पना को अलकाविहारिणी न बनाकर पृथ्वी पर बुलाया है:

व्योम-कुञ्ज की पारी अयि कल्पने,
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं!
उड़ न सकते हम तुम्हारे स्वप्न तक,
शक्ति है तो आ बसा अलका यहीं।
धरती की ओर इसे खींचने वाली डोरी है-
धूल से तरुणी-तरुण हम रो रहे,
छेदना का शीश पर गुरु भार है।

वह अलका से उतर आया और अपने कलेजे के भीतर भीषण उत्ताप की ज्वाला छिपाये वह मिथिला का अनलवर्षी कोकिल खंडहरों की धूल में कूकने लगा। फूल में ओस के आँसू बहाते हुए रोनेवाले आकाश की मर्मव्यथा की दवा विगत वैभव की चिता की धूल में खोजने लगा:

जिस व्यथा से रो रहा आकाश यह
ओस के आँसू बहाकर फूल मे
ढूँढ़ती उसकी दवा मेरी कला
विश्व वैभव की चिता की धूल में

और खंडहरों में बैठकर सुनसान में सिसकियाँ भरने लगा—

कूदती असहाय मेरी कल्पना
'हर हर बम' का फिर महोच्चार।

कब्र में सोये हुओं के ध्यान मे
खँडहरों मे बैठ भरती सिसकियाँ
विरहिणी कविता सदा सुनसान मे।

उस कोकिल की हूक एक ओर जितनी हृदय वेधी है :

उस पुण्य भूमि पर आज तपी।
रे आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
डंस रहे चतुर्दिक विविध व्याल

× × ×

कितनी द्रुपदा के बाल खुले
कितनी कलियों का अन्त हुआ
कह हृदय खोल चित्तौर यहाँ
कितने दिन ज्वाला वसन्त हुआ

× × ×

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी
तू पूछ कहाँ इसने खोईं
अपनी अनन्त निधियाँ सारी।

उतना ही दूसरी ओर उसका भैरव हुंकार प्राणोत्तेजक भी है :

कहदे शङ्कर से आज करें
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार
सारे भारत मे गूँज उठे
हर हर बम का फिर महोच्चार।

ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैलराट् ! हुङ्कार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

इसी कुहा को फाड़ने और प्रमाद को भगाने के लिए कवि ने चाँदी का उज्ज्वल शङ्ख उठाया है :

फेंकता हूँ लो तोड़ मरोड़ अरी निष्ठुरे बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शङ्ख फूँकता हूँ भैरव हुङ्कार।

इस 'हुङ्कार' का जन्म उसके हृदय की गहरी व्यथा से हुआ है उसी व्यथा से जो वैशाली के भग्नावशेष, मिथिला के भिखारी-वेश, चित्तौर का ज्वाल-वसन्त और कलियों का अन्त देखकर सिसकी भर भर कर सिहर उठी थी—

विद्युत की इस चकाचौंध में देख. दीप की लौ रोती है.
अरी. हृदय को थाम. महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है.
देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय-शोणित की धारें
बनती ही उनपर जाती हैं वैभव की ऊँची दीवारें

दलितों के इस शोषण को देखकर उसने क्रांतिधात्री कविता का आह्वान किया है :

क्रातिधात्रि कविते ! जागे उठ आडम्बर में आग लगादे
पतन, पाप, पाखंड जलें जग में ऐसी ज्वाला सुलगादे

इसीलिए उसने मुरलीधर से लास की नहीं, शङ्कर से 'ताण्डव' की प्रार्थना की है :

नाचो अग्निखंड भर स्वर में फूँक फूँक ज्वाला अम्बर में
अनिल-कोष, द्रुमदल, जल-थल में अभय विश्व के उर-अन्तर में

गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो   लगे आग इस आडम्बर में
वैभव के उच्चाभिमान में   अहंकार के उच्चशिखर में
रचदो फिर से इसे विधाता,   तुम शिव, सत्य और सुन्दर

नाचो हे नाचो नटवर !

देश के आर्थिक शोषण से कवि ने अपने विद्रोह और विस्फोट की प्रेरणा पाई है। भूखे बच्चों की दूध की पुकार उसे विद्रोही करती है—

कब्र कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है,
दूध दूध की कदम कदम पर सारी रात सदा होती है,
दूध दूध ओ वत्स, मन्दिरों में बहरे पाषाण कहाँ है,
दूध दूध तारे बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ है ?

कृषक मेध, नरमेध के प्रति 'दिनकर' की कविता एक भीषण प्रत्याख्यान है।

(१) देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें,
बनती ही जाती हैं उनपर वैभव की ऊँची दीवारें।

('कस्मै देवाय')

(२) आहें उठीं दीन कृषकों की-मजदूरों की तड़प-पुकारें।
भरी गरीबी के लोहू पर खड़ी हुईं तेरी दीवारें।
वैभव की दीवानी दिल्ली : कृषकमेध की रानी दिल्ली !

('नई दिल्ली के प्रति')

'पूँजीवाद' और उसकी सन्तति 'साम्राज्यवाद' के प्रति कवि की वाणी अग्निवाण बन गई है : साम्राज्यवादी युद्धों की भर्त्सना में कवि उबल उठता है :

रणांत विषम रागिनी मरण की आज विकट हिंसा-उत्सव में !
दबे हुए अभिशाप मनुज के उगने लगे पुन. इ । भ ५ ग ।

शोणित से रंग रही शुभ्रपट संस्कृति निठुर लिये करवालें।
जला रही निज सिंह पौर पर दलित दीन का अस्थि-मशालें।
आर्य-अनार्य, जर्मन-यहूदी संघर्ष पर उसकी करुणा प्रवाहित है—
राइन-तट पर खिली सभ्यता हिटलर खड़ा कौन बोले ?
सस्ता खून यहूदी का है नाज़ी निज स्वस्तिक धोले !

'दिनकर' की कविता भारतीय राजनीति को पार कर अन्तर्राष्ट्रीय भावलोक में पहुँची है। उसने राष्ट्रों के उत्पीड़न को देखा है, मानवजाति का शोषण देखा है और सार्वभौम क्रान्ति का आह्वान किया है।

विश्वव्यापी शोषण और पीड़न के ताण्डव का अन्त करने के लिए ही कवि अपने नूपुरों से झनन-झनन करती हुई विश्व-नर्तकी 'विपथगा' क्रांति की आगमनी बजाता है, उस क्रांति की जिसके कालसर्पिणी के शतफनों का छत्रमुकुट है जो चिरकुमारिका है (किसी को वरण नहीं करती,) जो रुधिर का शीतल चन्दन भाल पर लगाती है जो चिता-धूम के अन्धकार का काजल आँखों में आँजती है, जो संहार की लपटों का परिधान पहनकर छूम छनन नाचती है :

मेरे मस्तक पर छत्र मुकुट वसु काल सर्पिणी के शतफन,
मुझ चिरकुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर चन्दन,
आँजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्धतिमिर अंजन,
संहार-लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम छनन।

('विपथगा')

और उसकी क्रांति आती कब है ?

वैभव के बल से जब समाज के पाप पुण्य बन जाते हैं,
धनहीन पुण्य को स्पर्श नहीं ईश्वर भी जब कर पाते हैं,

दुर्जय मानव को शास्त्र देवचरणों की धूल बताते हैं,
पाखण्ड, पाप, व्यभिचार धर्म से पुष्टि पेय जब पाते हैं।

वह विपथगामिनी क्रान्ति स्वयं अपनी दिशा और अपनी तिथि नहीं जानती। इतना जानती है कि जिस दिन वह मिट्टी के मानवों में धरती पर जाग उठती है, आकाश में क्रोध से आग लगा देती है, आँख मूँद कर भूकम्प मचाने लगती है और वैभवशाली राजप्रासादों, मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों के शीर्ष और विजयस्तम्भों के शिखर टूट टूट कर गिरने लगते हैं:

मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात किस रोज किधर से आऊँगी
मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध अम्बर में आग लगाऊँगी
आँखें अपनी कर बन्द देश में जब भूकम्प मचाऊँगी
किसका टूटेगा शृङ्ग न जाने किसका महल गिराऊँगी।

क्रांति का ऐसा सजीव और मूर्त चित्र आलेखित करनेवाला 'दिनकर' 'युगधर्म का हुंकार' है लोकप्रिय है। उसकी वाणी में 'शक्ति' है और लेखनी मे विस्फोटक ज्वाला।

'दिनकर' का यह उग्र राष्ट्रवाद 'प्रगतिवाद' नाम से पुकारा जावे तो भी हमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि 'दिनकर' का प्रगतिवाद पश्चिम की आँधी में उड़कर आया हुआ पत्ता नहीं है वह तो 'राष्ट्रवाद' के प्राणों में से फूटी हुई रस की धारा है। हूक और हुंकार, आँसू और आग, प्रेम और पौरुष 'दिनकर' की वाणी में एकत्र हुए हैं। उसके स्वर में जितनी उत्कट भारत-देश की भक्ति है, उतनी ही प्रखर विस्फोट और विद्रोह की ज्वाला है, जितनी ही दाहक विद्रोह की ज्वाला है, उतनी ही सौम्य रस की निर्झरिणी है जो 'रसवन्ती' में फूट निकली है।

(घ) राजनीतिक आदर्श : गांधीवादी आधार

गांधी जी का स्वराज्य लोक-भाषा में 'रामराज्य' है और रामराज्य की उनकी कल्पना गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के अनुसार है, जिसमें प्रेम का, ममता का राज्य है, जहाँ भौतिक ही नहीं दैहिक और दैविक ताप भी नहीं हैं—

रामराज्य : अहिंसक स्वराज्य

> बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।
> दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहि काहुहिं व्यापा ॥
> सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहि शास्त्र सम्मत श्रुति-रीती ॥
>
> ('रामचरितमानस')

रामराज्य प्रेम, समत्व और आनन्द का राज्य है। खड़ी बोली के 'रामचरित मानस'—'साकेत' के रामराज्य में भी उच्च नीच वर्ग नहीं होंगे। उसमें से महारानी सीता भी वनवासियों में एकीभूत होंगी।

> ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओ,
>
> × × ×
>
> मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ।
>
> ('साकेत')

गांधीजी का समाज अहिंसक होगा, जिसमें पश्चिम का भौतिकवाद शोषण न करेगा। कोई नग्न और क्षुधित न होगा; खादी और चर्खा के रचनात्मक कार्य दीनों के दारिद्र्य की रामबाण औषधि होंगे;

तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में। [1]

उस रामराज्य में राजा प्रजा का ट्रस्टी, संरक्षक, पिता होगा, उत्पीड़क नहीं। राज्य प्रजा की थाती मात्र होगा। वह सर्वजन-राज्य होगा, वह वस्तुत: स्वराज्य होगा, सबको शासन-अनुशासन रखना होगा, स्वयं राजा को भी :

शासन सब पर है इसे न कोई भूले
शासक पर भी, वह भी न फूल कर झूले।' [2]

इस प्रकार रामराज्य का तन्त्र, प्रजा का तन्त्र होगा, वह अधिकार-सुनियन्त्रित होगा :

'निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को
सब की सुविधा का भार किन्तु शासन को।

जनता के बन्धन मुक्ति के ही साधक होंगे, अराजकता के नहीं—

जनपद के बन्धन मुक्ति-हेतु हैं सब के
यदि नियम न हों उच्छिन्न सभी हों कब के ?

अर्थनीति

गांधीजी जब धनिकों को अपने धन को जनहितार्थ व्यय करने के लिए कहते हैं तब रोग की चिकित्सा करते हैं, जब अपरिग्रह का पाठ पढ़ाते हैं जो रोग का कारण है तो रोग की रोक की ओर संकेत करते हैं। संसार में वर्ग-युद्ध का कारण एक की हीनता और दूसरे सम्पन्नता है क्योंकि स्वर्ण (जो अर्थ

१–२–३–४–'साकेत' :　　मैथिलीशरण गुप्त

का प्रतीक है) एक वर्ग के पास रहने पर ही अनर्थ का कारण होता है :-

हाँ, तब अनर्थ के बीज अर्थ बोता है,
जब एक वर्ग में मुष्टि बद्ध होता है, [1]

और इस अपरिग्रह का परिणाम है 'शोषण':

जो संग्रह करके त्याग नहीं करता है,
वह दस्यु लोकःधन लूट-लूट धरता है। [2]

समष्टि के लिए उत्सर्ग ही सब वर्ग-युद्धों की रामबाण ओषधि है।—'हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी'। परन्तु यदि कोई रावण अपनी सोने की लंका बनाता जावे और पाशव शक्ति को नियोजित करके शोषण के पश्चात् आक्रमण (साम्राज्यवाद) की ओर अग्रसर हो तो उस सोने की लंका को ही भस्म होना चाहिए :

अब क्या है बस, वीर, बाण से छूटो-छूटो,
सोने की उस शत्रु-पुरी लंका को लूटो।' [3]

परन्तु गांधी-गुरु की पूत-पावन वाणी उर्मिला में बोल उठती है—

....नहीं नहीं पापी का सोना
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना। [4]

गांधीवाद के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में राजा-प्रजा का आदर्श सम्बन्ध प्रतिष्ठित हुआ है। राजा अपने राजा-तन्त्र न्याय्य अधिकारों के अनुचित उपभोग से पीड़क बनता है और प्रजा के दुख में दुख और सुख में सुख मानने से वरेण्य बन जाता है; जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी

१-२-३-४ 'साकेत'

सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।' तुलसी द्वारा दिया हुआ यह मंत्र (Motto) प्रत्येक राजा का होना चाहिए। राज्य राजा की भोग्य वस्तु नहीं, उनकी थाती धरोहर है, वह प्रजा की संपत्ति का 'ट्रस्टी' है, लोक सेवक भरत के शब्दों में :

"तात, राज्य नहीं किसी का वित्त,
वह उन्हीं के सौख्य-शान्ति-निमित्त—
स्वबलि देते हैं उसे जो पात्र;
नियत शासक लोक-सेवक मात्र!" १

इस आदर्श से च्युत होने पर 'राज्य' राजा का भोग बन जाने पर राजद्रोह ही धर्म हो जाना चाहिए :

राज्य को यदि हम बनालें भोग,
तो बनेगा वह प्रजा का रोग
फिर कहूँ मै क्यों न उटकर ओह!
आज मेरा धर्म राज-द्रोह!

× ×

राज्य में दायित्व का ही भार
सब प्रजा का वह व्यवस्थागार! २

यह न हो, तो फिर 'क्रांति' ही इष्ट है—राजपद—राजत्व का अन्त होकर प्रजातन्त्र की स्थापना हो :

वह प्रलोभन हो किसी के हेतु,
तो उचित है क्रांति का ही केतु,

× ×

"राज पदही क्यों न अब हटजाय?
लोभ मद का मूल ही कट जाय।

१, २. 'साकेत'

कर सके कोई न दर्प न दम्भ,
सब जगत में हो नया आरम्भ।
विगत हों नरपति, रहें नर मात्र,
और जो जिस कार्य के हों पात्र
वे रहें उसपर समान नियुक्त
सब जियें ज्यों एक ही कुलभुक्त !"

प्रजातन्त्र की यह कल्पना समष्टिवाद की ही ओर इंगित करती है।

जब परराष्ट्र का आक्रमण होता है तो राष्ट्र की राष्ट्रीयता की भावना की सच्ची परीक्षा होती है, तब राष्ट्र की भिन्नताओं में एकता दिखाई देती है, तब देश के हिमालय, विन्ध्या, गंगा और यमुना देशभक्ति के प्रेरक बन जाते हैं; कुल और वंश, देवी और देवताओं के 'नाम' वीर योद्धाओं को अनुप्राणित करते हैं—

विन्ध्य-हिमालय-भाल भला ! झुक जाय न धीरो !
चन्द्र-सूर्य-कुल-कीर्ति-कला रुक जाय न वीरो !
चढ़कर उतर न जाय, सुनो, कुल-मौक्तिक मानी,
गंगा-यमुना-सिन्धु और सरयू का पानी।

परन्तु गांधी की अहिंसा की परीक्षा होती है, सङ्कट के समय, विजय के प्रलोभनों के बीच में। तब 'साकेत' कार गांधी की वाणी में बोलता है:

पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा,
जिसका अर्थ हो दण्ड और इति दया-तितिक्षा।

अन्तर्राष्ट्रीय भावभूमि में यही मानववाद है। उसका फलितार्थ यह हुआ कि सब देश (राष्ट्र) परस्पर मित्र हैं; किसी देश की राष्ट्रीयता का धर्म दूसरे देश पर आक्रमण करना नहीं हो सकता। गांधी की राष्ट्रीयता दूसरे देश की पराजय नहीं चाहती। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीयता ही सच्ची राष्ट्रीयता है। 'साकेत' का कवि इसी भावना को रामभक्त विभीषण के कण्ठ में मुखरित करता है:

मानववाद

'तात, देश की रक्षा का ही कहता हूँ मै उचित उपाय,
पर वह मेरा देश नही जो करे दूसरों पर अन्याय।

रावण को यदि हम प्रतीक (Type) मान लें तो यह उक्ति आज के समस्त आक्रमणकारियों (हिटलर, मुसोलिनी, तोजो) के प्रति हो सकती है। विश्वबन्धुत्व की ही उदात्त भावना विभीषण की इस वाणी में बोलती है:

एक देश क्या अखिल विश्व का तात, चाहता हूँ मैं त्राण!

गांधी ने अपने देश के उष्ण रक्त का प्रतिनिधित्व करते हुए अनेक बार कहा कि यह अहिंसा कायर की अहिंसा नहीं है, वीर की है। आततायी विदेशी सत्ता के अत्याचार का विरोध करने के लिये शस्त्र भी उठाना पड़े तो क्षम्य है। जापान और जर्मनी के आक्रमण की घटना पर कांग्रेस यही करती। (अगस्त १६४२ के) 'भारत छोड़ो' जयघोष में यही ललकार सन्निहित है:

भरत खण्ड का द्वार विश्व के लिए खुला है,
भुक्ति-मुक्ति का योग जहाँ पर मिला जुला है।
पर जो इधर अनाचार करने आवे,
नरकों में भी ठौर न पाकर पछतावेंगे।

गांधीजी के 'विश्वमानवतावाद' के होते हुए भी कभी-कभी जिस प्रकार भारतराष्ट्र का मर्दित वीरन्दर्भ क्रुद्ध और उद्बुद्ध हो उठता है, उसी प्रकार भरत अपनी 'साधुता' की विगर्हणा करता हुआ आक्रोश से कड़क उठता है :

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु-पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।
बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करके!—

वह अपने जड़ी भूत जीवन की लज्जा को रिपु-रक्त से धोना चाहता है :

अनुज, मुझे रिपु रक्त चाहिए, डूब मरूं मैं!
मेटूं अपने जड़ी भूत जीवन की लज्जा,
उठो इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा।

विदेश एक सीमा तक मित्र है, परन्तु जब दूसरे देश के धन-जन के लिए जब वह नारी जाति का अपमान करता है, दूसरे की भूमि पर आकर कुल लक्ष्मी का हरण करता है, तब बिरले ही लोग ऐसे होंगे जो गांधी की भाँति 'करो या मरो' कहेंगे। कौन जाने इस 'करो' का क्या अर्थ है, तब क्या सामान्य जनता करो का अर्थ 'मारो' नहीं लगा लेगी?—निश्चय, 'हमको उन्हें मारना या मरना तब तो जनता के उद्गार कुछ ऐसे होंगे :

पैर धरे इस पुण्य भूमि पर पामर पापी,
कुल लक्ष्मी का हरण करे वे सहज सुरापी,
भरलो उनका रुधिर, करो अपनों का तर्पण,
मांस जटायु-समान जनों को करदो अर्पण!

गांधी-युग के सामान्य मानव की दुर्बलताओं और महामानव की उच्चताओं का चित्रण 'साकेत' में है और वही गांधीयुग की सच्ची रूपरेखा है।

आदर्श समाज : मार्क्सवादी आधार

यूरोप में रूसी क्रांति और समाजवाद-समष्टिवाद की प्रतिष्ठा ने संसार के विचार-जगत् में अद्भुत क्रांति की है। रूस के समष्टिवाद ने संसार के आगे एक आदर्श रक्खा है और उसपर मुग्ध होकर कवि-मानस ने अपनी कल्पना का जगत् बनाया है। वह जगत् वर्ग-हीन समाज है।

उस वर्गहीन, शोषणहीन 'आदर्श संस्कृति' का एक चित्र है :

ज्ञान वृद्ध निष्क्रिय न जहाँ मानव मन,
मृत आदर्श न बन्धन सक्रिय जीवन,
रूढ़ि-रीतियाँ जहाँ न हों आराधित।
श्रेणि-वर्ग में मानव नहीं विभाजित!
धन-बल से हो जहाँ न जन-श्रम-शोषण,
पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन!
ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित,
नव मानव-संस्कृति-किरणों नव ज्योतित!
('युगवाणी' : पन्त)

गांधी की भाषा में जो 'सर्वोदय' है, मार्क्स की भाषा में वही 'समष्टिवाद' है, परन्तु 'समष्टिवाद' में नैतिकता, सदाचार और धर्म के मापदण्ड भिन्न हैं।

गांधीवाद अहिंसा और सत्य की साधना से व्यष्टि के जीवन को आदर्श बनाना चाहता है और मार्क्सवाद भौतिकवाद के आधार पर समष्टि के जीवन को प्रगतिशील। पन्त ने गांधी और मार्क्स दोनों विचारकों के दर्शन का मन्थन करके नवनीत निकाला है :

गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नवमान !
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नवसंस्कृति, नवप्राण !
मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन-विकास की 'साम्य' योजना है अतिवाद।

('युगवाणी' : पन्त)

'युगवाणी' में पन्त ने साम्यवाद (समष्टिवाद) की आरती की है जैसे 'साकेत' में मैथिलीशरण ने गांधीवाद की। गुप्तजी ने 'साकेत' में अतीत की भूमिका पर आज की विचार-धारा प्रतिष्ठित की है, पन्त ने 'युगवाणी' में आज के चित्राधार पर भविष्य की चित्ररेखा खींची है।

: ५ :

छाया-लोक और रहस्य-दर्शन

'द्विवेदी-काल' की सन्ध्या में जब हिन्दी कविता के वैतालिक और चारण धीरे-धीरे कर्मक्षेत्र के योद्धा और धर्मभूमि के यात्री बनते हुए थककर रुक जाने वाले थे, तब क्षितिज पर ऐसे नव नक्षत्रों का उदय हो या, जो मर्म-लोक का आलोक लाये थे। उनकी कवि-प्रतिभा के गर्भ से, प्राचीन पंडितों के शब्दों में 'नई कविता' ने जन्म लिया था। भाव की दृष्टि से नवीन होने के कारण हिन्दी कविता 'भाषा' और 'अभिव्यंजना' में भी 'नवीन' ही हो गई थी।

—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

जिस समय द्विवेदी-वृत्त के कवि लोकभाषा (खड़ीबोली) के मुख पर 'चींटी से लेकर हाथी-पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा-पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र-पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत' के इतिवृत्त जुटा रहे थे, तो भाषा निखरती जा रही थी। राष्ट्रीय नवजागरण के वे कवि देश के लिए, समाज के लिए, लोक के लिए 'कविता' लिखते थे, वह 'बहुजनहिताय' थी। उपदेश-प्रवण 'आदर्श' अथवा इति-वृत्तात्मक यथार्थ, उनकी कविता के दो ही उपजीव्य रह गये थे। लोकपक्ष का चित्र कविता में पराकाष्ठा पा चुका था; परन्तु विधाता की इस सृष्टि में भौतिक, लौकिक जीवन का स्थूल पक्ष ही सब कुछ नहीं है, अतीन्द्रिय और अलौकिक जीवन का सूक्ष्म

रूप भी है। मनुष्य की आँख पलकें खोलकर इन्द्रधनुषी रूप देखती है, परन्तु उन्हें बन्द करके भी न जाने कितने लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करती है। अबतक कवि की कविता 'लोक-रञ्जन' करती रही थी। अतः कविता वर्णनात्मक या उपदेशात्मक होती थी। वह अपनी स्पष्ट भाषा में आँखों-देखी बात सीधी-सादी अभिव्यक्ति में कहती थी। परन्तु ज्योंही उस कविता में यौवन की लहर आई, वह ज्ञातयौवना की भाँति भीतर से स्पन्दित हो उठी और वह स्थिति आगई कि जब वह अपने में ही 'मग्न' रह सके, अपने में डूब सके। उस अपनी अनुभूति को स्वर देने के लिए अब उसने 'भावाकुलभाषा' की सृष्टि की। उसे अब ऐसी वाणी आविष्कृत करनी पड़ी जो भीतर की ग्रन्थियों को खोल सके। उसकी आन्तरिक जिज्ञासा को रूप दे सके। इस प्रकार बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर कविता ने अन्तर्मुखी साधना आरंभ की।

—प्रतिक्रिया : विद्रोह—

क्रिया और प्रतिक्रिया में ही प्रगति है। 'मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है।' कविता को इस समय जो विद्रोह करना था वह था 'सूक्ष्म का स्थूल के प्रति'—'भावप्रधानता' (Subjectivity) का 'वस्तुप्रधानता' (Objectivity) के प्रति।

तो, अब कविता का विषय आत्म-रंजन-आत्मदर्शन हो गया। लोक-घटनाओं, लोकदृश्यों का आकलन आलेखन छोड़कर अब वह आत्मानुभूति, आत्मवेदना और आत्मसंवेदना की ओर मु-

गई। बहिरंग से अन्तरंग की ओर उसकी दिशा हो गई। कवि ने अन्तरंग को चित्रित करना आरंभ किया किन्तु बहिरंग की तूली से और कवि ने बहिरंग को देखा परन्तु अपने अन्तरंग की आँखों से। आत्मानुभूति के क्षेत्र में सूक्ष्म दृष्टि को उतना ही गहन और विराट् जगत् (अन्तर्लोक) मिल गया, जितना जटिल और विशाल विश्व स्थूल दृष्टि को बाहर मिला था। अब कवि के अन्तश्चक्षु खुल गये—वह बाहर से आँख मूँदकर अन्तर्मुख होगया। आत्मानुभूति का सौंदर्य और माधुर्य इतना उत्कट और इतना अनिर्वचनीय था कि दृश्य जगत् के समस्त लौकिक साधन—रूप, रंग और रेखा—उसमें अपना समाधान पा गये।

आत्मानुभूतिपरक कविता

'छायावाद'

जब वस्तुप्रधानता की प्रतिक्रिया में कविता में आत्मानुभूति मुखरित हुई और उसमें कवि की अन्तर्वेदना, जिज्ञासा और कल्पना, भावना और संवेदना नये-नये रंग लेकर झलकी, तो उसे ऋजु (सीधी-सरल) अभिव्यञ्जना न सँभाल सकी और उसको अनुरूप रंग-रूप देने के लिए वक्र-वंकिम व्यंजना, लाक्षणिक विचित्रता और चित्रवती भाषा की शरण लेनी पड़ी। इस वक्र-वंकिम व्यंजना और लाक्षणिक विचित्रतावाली चित्रवती भाषा में स्वभावतः एक प्रकार की दुर्बोधता, दुरूहता आगई। 'इन छाया-चित्रों को बनाने के लिए और भी कुशल चितेरों की आवश्यकता होती है कारण उन चित्रों का आधार छूने या चर्मचक्षु से देखने की वस्तु नहीं।' कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि 'मानव-हृदय में छिपी हुई एकता के आधार पर उसकी संवेदना का रंग

चटाकर न बनाये जायँ तो वे चित्र प्रेत-छाया के समान लगने लगें।' उन दिनों वंग-कविता में 'पुराने ईसाई सन्तों के 'छाया-भास' (Phantasmata) तथा योरपीय काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbotism) के अनुकरण पर' रची जानेवाली कविताएँ (गीतियाँ) 'छाया-वाद' के नाम से प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। हिन्दी में इस प्रकार की रचनाओं की धारा को आते देखकर गतानुगतिकता में पले पंडितों ने उसे 'छायावाद' के स्वनिरूपित अर्थ 'अस्पष्टवाद' में (क्योंकि वे छाया की तरह धूमिल, अस्पष्ट अतः अगम्य थीं) 'छाया'वाद कहकर पुकारा। इस 'छायावाद' की संज्ञा में मीमांसकों और समीक्षकों की हार्दिक अस्वीकृति, अवगणना और भर्त्सना ध्वनित थी।

परन्तु 'छायावाद' नाम चल पड़ा और चल पड़ा। हिन्दी की इस नई कविता ने चुनौती दी कि उसे यह 'पदवी' स्वीकार है— (क्योंकि 'मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वछन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम 'छाया' उपयुक्त था $, क्योंकि उसके प्राकृतिक चित्रणों में कवि की अपनी भावनाओं के सौंदर्य की और भावनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य की छाया है। § क्योंकि उसमें व्यक्त जगत् में अव्यक्त सत्ता की 'छाया' ‡ (प्रतिच्छवि) चित्रित हुई है, क्योंकि उसमें अर्थ की वक्रता से आनेवाली 'छाया' * (विच्छित्ति या लावण्य) की प्रतिष्ठा हुई है।)

$ महादेवी वर्मा का मत दे०—'रश्मि' की भूमिका § सुमित्रानंदन पन्त का मत ('आधुनिक कवि'—२) ‡ रामकुमार वर्मा का मत
* 'प्रसाद' का मत (दे० 'यथार्थवाद और छायावाद')

रवीन्द्रनाथ का साहित्यिक शिष्यत्व करनेवाले कवि ने कहा— "वस्तुगत 'सौन्दर्य' और उसके अन्तर्निहित 'रहस्य' की प्रेरणा ही कविता की जड़ हैं। यहीं 'कविता' से 'अव्यक्त' का सर्वप्रथम सम्मिलन होता है, जो कभी विच्छिन्न नहीं होता। इस रहस्यपूर्ण सौन्दर्य-दर्शन से हमारे हृदय-सागर में जो भाव तरंगें उठती हैं वे प्रायः कल्पनारूपी वायु के वेग से ही ज्ञात होती हैं, क्योंकि 'याथार्थ्य' की साहाय्य-प्राप्ति इस समय उन्हें असम्भव हो उठती है। यही कारण है कि कवितागत भाव प्रायः अस्पष्टता लिए होते हैं। इसी अस्पष्टता का दूसरा नाम 'छायावाद' (mysticism) है।"*

—मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—

हिंदी के मनोवैज्ञानिक समीक्षक श्रीनगेंद्र ने 'छायावाद' की भूमिका का निरूपण करते हुए लिखा है : " पिछले महासमर के उपरान्त यूरोप के जीवन में एक निस्सार खोखलापन आगया था। जीवन के प्रति विश्वास ही नष्ट हो गया था। परन्तु भारत में आर्थिक पराभव के होते हुए भी जीवन में एक स्पन्दन था। भारत की उद्बुद्ध चेतना युद्ध के बाद अनेक आशाएँ लगाये बैठी थीं। उसमें स्वप्नों की चंचलता थी। वास्तव में भारत की आत्मचेतना का यह किशोर काल था जब अनेक इच्छा-अभिलाषाएँ उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही थीं। भविष्य की रूपरेखा नहीं बन पाई थी, परंतु उसके प्रति मन में इच्छा जग गई थी। पश्चिम के स्वच्छन्द विचारों के सम्पर्क से राजनीति और सामाजिक बन्धनों के प्रति असंतोष की भावना मधुर उभार के साथ उठ रही थीं, भले ही उनको

आशा-निराशा के छाया चित्र

* ले० मुकुटधर पाण्डेय ('सरस्वती' : दिसम्बर, १९२१)

तोड़ने का निश्चित विधान अभी मन में नहीं आ रहा था। राजनीति में ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवाद की दृढ़ नैतिकता असन्तोष और विद्रोह की इन भावनाओं को बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नहीं देती थीं। निदान वे अन्तर्मुखी होकर धीरे-धीरे अवचेतन में जाकर बैठ रही थीं, और वहाँ से क्षति पूर्ति के लिए छाया-चित्रों की सृष्टि कर रही थीं। आशा के इन स्वप्नों और निराशा के इन छाया-चित्रों की काव्यगत समष्टि ही छायावाद कहलाई।॥

इसी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अत्यधिक महत्व देकर कुछ आलोचकों ¶ ने छायावाद को जीवन-संघर्ष से पलायन (escapism) तक कह डाला है: "छायावाद किसी सुदूर काल्पनिक जग को खोजने का प्रयास है। अरूप के प्रति उसे विशेष मोह है। जीवन के स्थूल सत्य से उसे अरुचि

पलायन ?

महादेवीजी के शब्दों में यह कह सकते हैं कि जीवन के 'सूक्ष्म' सत्य को वह खोजता है। छायावाद उपयुक्त ही नामकरण हुआ, क्योंकि छाया-जग की चर्चा ही इन कवियों का ध्येय है।" * और "छायावाद संकेतों की भाषा है और उसकी प्रमुख प्रवृत्ति पलायन की भावना है,,। ‡ स्वयं कवि पन्त ने लिखा है: (हिन्दी कविता) "व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर, पलायन के रूप में, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर भीतर-बाहर में, दुख-दुख में, आशा-निराशा और संयोग-वियोग के द्वंद्वों में

॥ 'छायावाद की परिभाषा', : नगेन्द्र ¶ जैसे श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, श्री अज्ञेय * 'छायावाद की रूपरेखा' : प्रकाशचन्द्र गुप्त ‡ वही

सामंजस्य स्थापित करने लगी। ¶

इस स्थापना का विरोध भी हुआ है। आलोचक नगेंद्र ने ही लिखा—"छायावाद में आरंभ से ही जीवन की सामान्य और निकट वास्तविकता के प्रति एक उपेक्षा : एक विमुखता का भाव मिलता है। नवीन चेतना से उद्दीप्त कवि के स्वप्न अपनी अभिव्यक्ति के लिए चञ्चल हो रहे थे, परंतु वास्तविक जीवन में उसके लिए कोई संभावना नहीं थी, अतएव स्वभावत: ही उसकी वृत्ति निकट यथार्थ और स्थूल से विमुख होकर सुदूर, रहस्यमय और सूक्ष्म के प्रति आकृष्ट हो रही थी। भावनाएँ कठोर वर्तमान से कुंठित होकर स्वर्ण अतीत और आदर्श भविष्य में तृप्ति खोजती थीं—ठोस वास्तव से ठोकर खाकर कल्पना और स्वप्न का संसार रचती थीं—कोलाहल के जीवन से भाग कर प्रकृति के चित्रित अञ्चल में शरण लेती थी—स्थूल से सहमकर सूक्ष्म की उपासना करती थीं। आज के आलोचक इसे पलायन कहकर तिरस्कृत करते हैं, परंतु यह वास्तव को वायवी या अतींद्रिय रूप देना ही है—जो मूल रूप में मानसिक कुण्ठाओं पर आश्रित होते हुए भी प्रत्यक्ष रूप में पलायन का रूप नहीं है × × स्वच्छन्द

कुण्ठा का परिणाम

विचारों के आदान से स्वतन्त्र प्रेम के प्रति समाज में आकर्षण बढ़ रहा था, परन्तु सुधार-युग की कठोर नैतिकता से सहमकर वह अपने में ही कुण्ठित रह जाता था। समाज के चेतन मन पर नैतिक आतंक अभी इतना अधिक था कि इस प्रकार की स्वच्छन्द भावनाएँ अभिव्यक्ति नहीं पा सकती थीं। निदान वे अवचेतन (subconscious) में उतरकर वहाँ से अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्त होती रहती थीं।*

¶ पर्यालोचन' (आधुनिक कवि'—२ की भूमिका) : सुमित्रानन्दन पन्त।

* 'छायावाद की परिभषा' : नगेन्द्र

छायावाद का चिन्तन-पक्ष भारत का चिरप्रतिष्ठित अद्वैतवाद है। भारतीय मानस के इस दार्शनिक दृष्टिकोण ने छायावाद के भावलोक को जीवन दिया। महादेवीजी के शब्दों में 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है।' प्रसाद निराला और पन्त, हिन्दी में छायावाद के तीनों प्रतिष्ठाता दार्शनिक भूमिका में पले थे। अभिव्यक्ति की प्रणाली पाकर मानस-संस्कार अज्ञात, अदृश्य रूप से कविता में ढल आते हैं। एक अन्य आलोचक कहते हैं—'हिन्दू जाति के नाना भेदों-प्रभेदों के बीच एक संघटित जातीयता का निर्माण, हिन्दू मुसलिम और ईसाई आदि विभिन्न धर्मानुयायियों में एक अन्तर्व्यापी मानवसूत्र का अनुसन्धान, राष्ट्रों के बीच खाइयां पाटना—महायुद्ध के पश्चात् अपने देश के सामने ये प्रधान प्रश्न थे। देश की स्वतन्त्रता का भी कम प्रधान प्रश्न न था। पर वह जातीय और राष्ट्रीय एकसूत्रता के आधार पर ही हो सकता था और अन्तर्राष्ट्रीय मानव साम्य का एक अंग बनकर ही शोभा पा सकता था। यह सम्मिलन और सामञ्जस्य की भावना भारतीय संस्कृति की चिरदिन की विशेषता रही है, इसलिए महायुद्ध की शांति के पश्चात् ये प्रश्न सामने आते ही वह सांस्कृतिक प्रेरणा जाग उठी और तीव्र वेग से तत्कालीन काव्य और कलाओं में अपनी अभिव्यक्ति चाहने लगी।' $

पश्चिमी (अंग्रेजी) साहित्य से प्रभावित आलोचकों ने 'छायावाद' की प्रवृत्तियों में वहाँ के रिनेसाँ (पुनर्जागरण) और रोमांचवाद (Romanticism) की विशेषताओं से

$ नन्ददुलारे वाजपेयी

आंशिक समानता देखी। अतीत की ओर प्रवृत्ति, एक अतृप्त जिज्ञासा, प्रकृति के प्रति रागानुराग नवीन भावना-कल्पन-नवीना जीवन-दर्शन, नवनिर्माण और विद्रोह आदि प्रवृत्तियों में समान होने पर भी इसके मूल कारणों में विभिन्नता थी। पश्चिम में वह आन्दोलन विजय और विश्वास का परिणाम था, यहाँ, जैसा कुछ समीक्षकों ने साग्रह कहा है, असफल, सत्याग्रह और निराशा का रूपान्तर।

'रिनेसॉ' और रोमाचवाद

छायावाद निश्चय ही एक भावयोग और कला-आन्दोलन था। भावरूप में वह दर्शन और तत्त्वज्ञान तक पहुँचा और कला-रूप में नव-नूतन अलंकरण और अभिव्यञ्जना-पद्धतियों में प्रकट हुआ।

सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति : सूक्ष्म सौंदर्य-बोध की प्रक्रिया

कविता के इतिहासकार की दृष्टि ने देखा है कि कविता की प्रगति प्रत्येक जाति में कुछ निश्चित-निर्धारित अनुक्रमों के अनुसार होती है: पहले स्थूल जीवन से सम्बन्धित इतिवृत्तों की सृष्टि, फिर सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध, फिर सौंदर्य-बोध की चिन्तन में पूर्ण परिणति और अन्ततः निर्जीव अनुकृतियाँ। स्वयम् हिन्दी की कविता-धारा 'वीरगाथाकालीन इतिवृत्त के विषम शिलाखण्डों में से फूटकर, निर्गुण-सगुण भावनाओं की उर्वर भूमि में प्रशान्त, निर्मल और मधुर होती हुई रीतिकालीन रूढ़िवाद के क्षार जल में गतिहीन हो गई।' † एक चक्र पूर्ण हुआ। प्रगति और परिवर्तन का यही क्रम हिन्दी के नवीन रंग-रूप वाले काव्य में भी चरितार्थ होता है। जड़ रीति-काव्य की प्रतिक्रिया लोकभाषा (खड़ी बोली) की भारतेंदु

† 'आधुनिक कवि (१) : महादेवी' की भूमिका।

और द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मक कविता के रूप में हुई थी कविता की प्रगति का अगला सोपान सूक्ष्म सौंदर्य-बोध अब आनेवाला था।

इस सूक्ष्म सौंदर्य-बोध को इतिवृत्तात्मक कविता की स्थूल की प्रतिक्रिया ही कहा जासकता है। आचार्य द्विवेदीजी ने लिखा है: "बाह्य प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अतर्जगत् की ओर दृष्टि-पात करता है। तब साहित्य में कविता का रूप परिवर्तित हो जाता है। कविता का लक्ष्य 'मनुष्य' हो जाता है। संसार से दृष्टि हटाकर कवि व्यक्तिपर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। वह सान्त में अनन्त का दर्शन करता है और भौतिक पिण्ड में असीम ज्योति का आभास पाता है।" वस्तुतः द्विवेदी-कालके चरम बिन्दुपर आते-आते कविताकी इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म 'भावनाएँ विद्रोह कर उठीं।' स्थूल से सूक्ष्म की ओर मानस-लोक की प्रवृत्ति अकारण नहीं थी।

भाव—लोक

कविता की इस अन्तर्मुख प्रकृति, प्रवृत्ति और साधना का स्वयं एक भावलोक है। प्रकृति का चिरचित्रित रूप केवल निष्प्राण-सा रह गया था। प्रकृति और भाव-जगत् कवि का वर्ण्य था अवश्य किन्तु उसके अन्तरंग तक वह नहीं पहुँच पाता था क्योंकि उसकी प्रतिभा प्रज्ञा-प्रेरित थी, अनुभूति प्रेरित नहीं। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर ज्योंही कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया त्योंही मनुष्य के हृदय और प्रकृति का बिम्ब-प्रतिबिम्ब का चिर-सम्बन्ध मूर्च्छा से उठा। प्रकृति में और मनुष्य की सत्ता में तत्त्वतः एक ही

हरिण हरित (तृणों) को छोड़कर रुदन करते हैं और शोक-विधुरे हंस करुण-क्रन्दने।

उसने प्रकृति को अच्युत पुरुष की सौंदर्यशालिनी चिन्मयता माना और उसे प्रशस्ति दी :

> भद्रासि रात्रि चमसोनविष्टो विश्वं गोरूपं युवतिर्बिभर्षि।
> चक्षुष्मति मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्यानक्षत्रएयमुक्था॥

हे रात्रि, तुम कल्याणमयी हो, तुम सब ओर व्याप्त होकर पृथिवी रूप होगई हो। हे चक्षुष्मती, तुमने आकाश के नक्षत्रों से अपने शरीर का शृंगार किया है। वही प्रकृति पद्मावती और रतनसेन की विरह की पीड़ा में द्रवित हुई थी, वही प्रकृति राम के साथ उनके पत्नी-विरह में रोई थी– वही प्रकृति गोपियों के विरह में व्याकुल–विह्वल हो उठी थी और आज वही पुनः कवि-मानव की मानस-भावनाओं में रंजित और अनुरंजित हो उठी। उसमें एक चेतन व्यक्तित्व, एक प्राणमय सत्ता जाग उठी। वह एक महाप्राण का अंग बनकर कवि की भावना, कल्पना और अनुभूति में आई। इस प्रकार 'छायावाद' का यह प्रकृतिवाद भारत का चिरपरिचित भाव-गत सर्ववाद ही है। इस युग के छायावादी कवियों ने प्रकृति के अंग-अंग, अंश-अंश, अणु-अणु को एक ऐसी जीवन्त सत्ता के रूप में अनुभूत किया जो इस विश्व में व्याप्त विराट् असीम-अनन्त सत्ता को व्यक्त दर्शन है।

प्रकृति को विराट् सत्ता का स्फुरण मानते ही, उसमें चेतना की अनुभूति हुई और मानवीयता का स्पन्दन। प्रकृति में मानवीय मानवीकरण क्रिया-व्यापार और मानवीय क्रिया-व्यापारों में प्रकृति के क्रिया-व्यापार आरोपित हुए। प्रकृति मानव के मानवीय

अथवा भावयोग में होता है। भावयोग के आवेश में आ कवि परिधियों के आरोपित बन्धनों को तोड़ देता है और उसकी पहुँच चर्मचक्षुओं से न दीख पड़नेवाले सूक्ष्म स्पन्दन तक हो जाती है।'*

भावपक्ष

—प्रकृतिवाद—

ज्योंही कवि-भावना वस्तुगत सूक्ष्म सौंदर्य की अनुभूति पाने के लिए अन्तर्मुखी हुई उसने एक ऐसे विराट् भाव-लोक में प्रवेश पाया जो चेतना के परमाणुओं से स्पन्दित था। आज के यथार्थ से दूर दिखाई देने पर भी वह भावलोक भारतीय काव्य की मूल प्रेरणाओं के अत्यन्त निकट है। वह वस्तुतः भारतीय मानस के सुषुप्त संस्कार का पुनर्जागरण है। वही चिन्तन-सुधा जो भारतीय द्रष्टाओं और ऋषियों ने अपनी आदिम ऋचाओं में भरदी थी, 'गीताञ्जलि' के गीतकार ने पश्चिम के मृत्तिका-पात्र में भर दी थी, अब हिन्दी कविता में प्रादुर्भूत हो रही थी। भारतीय दर्शन और तत्त्वज्ञान का वही महामहिम 'सर्ववाद' अब काव्य के स्वर्ण-कलशों में 'छायावाद' बनकर रूपान्तरित हुआ था।

प्रकृति से भारतीय जीवन का अभिन्न-अविच्छिन्न सम्बन्ध रहता आया है। यहाँ प्रकृति दिव्य शक्तियों का प्रतीक बनी और उसने गाया : एषादिव-दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती शुक्रवासा।

उसने तपोवनों में उसे जीवन-सहचरी माना और पाया कि

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुरा करुणं रुदन्ति।

---

* 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' : सूर्यकान्त शास्त्री १६३० सं०, पृ० ५१२

सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जागउठा।' * यही वह भावभूमि है जहाँ से कवि-भावना 'रहस्यवाद'—अध्यात्मवाद-अद्वैतवाद का भावात्मक (अनुभूति-परक) रूप—में सञ्चरण करने लगती है।

इस प्रकार छायावाद अनुभूतिपरक और भावात्मक कविता से चलकर एक ऐसे अतीन्द्रिय भाव-लोक में जा पहुँचा जहाँ से अध्यात्म का चिन्तन आरंभ हो जाता है। कवि 'व्यक्तजगत् में

छायावाद : एक भाव-योग

परोक्ष की अनुभूति और आभास' पाने लगा किन्तु वह उसे पार्थिव परिभाषा में न बाँध सका—शब्द अर्थ भर कर भी उसे व्यक्त करने में असमर्थ रहा और कवि की अनुभूति 'गूंगे के गुड़' की मधुरिमा बनगई—इस अनुभूति को इस प्रकार तो निरूपित किया जा सकता है—

निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि! अखिल विस्मयाकार!
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर भावों की आधार!
गूढ़, निरर्थ, असम्भव, अस्फुट भेदों की शृंगार!
मोहिनि, कुहकिनि, छल-विभ्रममयि, चित्र विचित्र अपार! †

यह एक प्रकार का अतींद्रिय भाव योग था, और एक आलोचक के अनुसार तो 'कविता का चरम विकास छायावाद

* 'सान्ध्यगीत' की भूमिका : महादेवी वर्मा

† अप्सरा : सुमित्रानन्दन पन्त

प्राणधारा प्रवाहित है अतः हृदय-वीणा का तार प्रकृति की चिन्मयी कल्पना की अँगुली से झंकृत हो उठा। अब प्रकृति मनुष्य के दुख में उदास और सुख में पुलकित होने लगी थी। अब कवि को प्रकृति अनेक मौन सन्देश और अनेक मौन निमन्त्रण देती हुई जान पड़ी। सर्ववाद की भावधारा छायावाद का मूल दर्शन भी है और अन्तिम साध्य भी। जड़-चेतन मय निखिल दृश्य-जगत् में एक ही अदृश्य प्राण-धारा प्रवाहित है—इस भूमिका से भी हम उसी भावलोक में पहुँचेंगे जो छायावाद में प्रकारान्तर से प्रतिष्ठित हुआ। इससे एक ओर प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में परोक्ष सत्ता का आभास अनुभूत हुआ और दूसरी ओर प्रकृति के अनेक रूपों में महाप्राण अथवा चेतनता का आरोप।

ऐसा नवीन भावलोक हिन्दी काव्य में प्रतिष्ठित होने जारहा था, इसकी प्रथम रश्मियों को 'प्रसाद' और 'निराला', पन्त और महादेवी की प्रतिभा ने पहचान लिया था, जिससे हम केवल यही पूछ सकते हैं :

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि! तूने कैसे पहचाना?

छायावाद में चित्रित प्रकृति उपमा का उपादान न रहकर विराट सत्ता का स्फुरण बनगई। 'अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण, और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएं, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता कठोरता, चंचलता-निश्चलता, और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न

पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों; जिनका भाव-संगीत विद्युद्धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके..."* कवि पंत की चित्रभाषा की यह परिभाषा है और चित्र-राग की, उन्हींके शब्दों में, कल्पना है—"भाव और भाषा का सामञ्जस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्र-राग है। जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत हो गये हों; निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हों, छुड़ाये न जा सकते हों; कवि का हृदय जैसे नीड़ में सुप्त पक्षी की तरह किसी अज्ञात स्वर्णरश्मि के स्पर्श से जगकर, एक अनिर्वचनीय आकुलता से, सहसा अपने स्वर क सम्पूर्ण स्वतन्त्रता में कूक उठा हो, एक रहस्यपूर्ण संगीत के स्रोत में उमड़ चला हो; अन्तर का उल्लास जैसे अपने फूट पड़ने के स्वभाव से बाध्य हो, वीणा के तारों की तरह, अपने आप में झंकारों में नृत्य करने लगा हो, भावनाओं की तरुणता, अपने ही आवेश से अधीर हो, जैसे शब्दों के चिरालिंगन-पाश में बँध जाने के लिए, हृदय के भीतर से अपनी बाँहें बढ़ाने लगी हों; यही भाव और स्वर का मधुर मिलन, सरस संधि है।" †

रीति-युगीन अलंकृत भाषा अलंकारों के व्यभिचार के कारण जड़वत् निर्जीव होगई थी। द्विवेदी-काल में लोकभाषा का कविता में जन्म हुआ। अब उसमें कैशोर आगया था। उसे अभी कृत्रिम आभरण-भार की उतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी यौवन-सौंदर्य की, और वह स्वभावतः भीतर से फूट रहा था। 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं; वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष

* † पल्लव (पन्त) की भूमिका

एक अज्ञेय सम्मोहन और अनिर्वचनीय आनन्द ने उनकी 'वीणा' झंकृत करदी है :

लतिका के कम्पित अधरों से यह कैसा मृदु अस्फुट गान
आज मन्द मारुत में बहकर खींच रहा है मेरा ध्यान।
किस प्रकार का गूढ़ चित्र वह आज धरित्री के पट पर
पत्रों की मायाविनि-छाया खींच रही है रह-रह कर!
छवि की चपल अँगुलियों से छू मेरे हृत्तन्त्री के तार
कौन आज वह मादक अस्फुट राग कर रहा है गुंजार।
महानन्द का क्या ऐसा ही नीरव होता है संगीत?
मनोयोग की वीणा मेरी मा! जिसने की आज पुनीत *

महादेवीजी ने प्रकृति के ऐसेही चेतन रूप अंकित किये :—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी,
तारकमय नव वेणी-बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित नव अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछादे चितवन से अपनी। ‡

कला-पक्ष

चित्र-भाषा और चित्र राग

"कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेवकी तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक

---

* 'वीणा' : पन्त　‡ नीरजा : महादेवी

गुँथा हुआ उन घुंघराले काले काले बालों से
अलसता की सी लता
किंतु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली —(निराला : 'परिमल')

छायावादी कवि ने प्रकृति को मानवीय रूप, चेतना, भावना और व्यापार प्रदान किये। उसके अनुभूति-लोक में लहर नृत्य करती है, सरिता इठलाती हुई, क्रीड़ा करती हुई चलती है फूल मुसकराते हैं, आकाश पृथ्वी पर अपनी नीलम की आँख से आँसुओं की बूँदें टपकाता है, रात चाँदनी की उज्ज्वल साढ़ी पहन कर आती है, समीर भौंरों के गुंजन के नूपुर पाँवों में बाँधे रुन झुन करता आता ऊषा बाल-सूर्य का कुंकुम-बिंदु ललाट पर अंकित किये प्राची के वातायन से झाँकती है; रजनी-बाला तारोंवाले गजरे लेकर बेचने ले जाती है, छाया बाल खोले पीले पत्तों की शैय्या पर दमयन्ती की भाँति, विरह मलिन और दुखविधुरा होकर मूर्च्छा सी पड़ी रहती है। अपनी अनुभूति की आँख और भावना की पुतली से दिखाई देनेवाली प्रकृति के चेतन शरीर को कवि ने असंख्य-अपरिमेय व्यापार प्रदान किये हैं। इस प्रकार उसके चित्र अत्यन्त संश्लिष्ट हो गये हैं :

सौरभ का फैला केशजाल करतीं समीर-परियाँ विहार,
गीली केसर मद झूम झूम पीते तितली के नव कुमार,
मर्मर का मधु संगीत छेड़ गाते हैं हिल पल्लव अजान,

प्रकृति की व्याप्त अन्तर्चेतना ने पन्त के तन-मन-प्राणों को सम्मोहित करके महानन्द की सृष्टि···"—एक अतृप्त जिज्ञासा,

भावों, क्रियाओं और व्यापारों की प्रकृति बनी और मानव अपनी भावनाओं क्रियाओं और व्यापारों में प्रकृति का प्रतिरूप। दोनों में भावनानुभूति का एक रहस्यालोकित आदान-प्रदान अधिष्ठित हुआ। जड़ और अमूर्त्त सत्ताएँ चेतन और मूर्त्त रूप में मानस-लोक में प्रतिष्ठित हुईं और उनको अतीन्द्रिय ज्योति से पार्थिव पुतलियों को दिव्य दृष्टि मिल गई :

छायावाद के कवि की अन्तर्भेदी दृष्टि ने भी उषा और सन्ध्या अमा और विभावरी, छाया और ज्योत्स्ना, लहर और बादल के प्रच्छन्न सौंदर्य का दर्शन किया है और उसे चित्रित किया है—कभी वह ऊषा को अम्बर के पनघट पर तारों के घट डुबाती हुई नगरी के रूपमें देखता है :

> अम्बर पनघट में डुबो रही
>
> ताराघट ऊषा नगरी —(प्रसाद : 'लहर')

कभी सन्ध्या को तिमिरांचल ओढ़े जैसे सीढ़ियों पर से उतरते हुए और फिर अपनी सहेली के कंधे पर बाँह डालकर धीरे धीरे चुपचाप चली जाती हुई सुन्दरी के रूप में —

> दिवसाव सान का समय,
>
> मेघमय आसमान से उतर रही है
>
> वह सन्ध्या-सुन्दरी परी सी
>
> धीरे धीरे धीरे
>
> तिमिराचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
>
> मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर
>
> किंतु जरा गंभीर—नहीं है उसमें हास-विलास
>
> हँसता है तो केवल तारक एक

द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। × × × × वे वाणी के हास अश्रु, स्वप्न, पुलक—हाव-भाव हैं।" वाणी के ये हास-अश्रु और स्वप्न-पुलक कैशोरकालीन लावण्य की भाँति स्वतः ही प्रस्फुट हो रहे थे। प्रसाद और पंत जैसे कुशल-चित्रशिल्पियों के हाथों से उन्हें अपूर्व रूप-रंग मिल गया। प्रकृति और पुरुष की भाँति अब वाक् और अर्थ (वागर्थ) संपृक्त हो गये। इस प्रकार काव्य के शब्द और अर्थ एकरस या समरस होकर काव्यानन्द की सृष्टि कर सके।

—प्रतीक-पद्धति—

द्विवेदी-काल में हम देख चुके हैं कि बदरीनाथ भट्ट, राय-कृष्णदास, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने अन्योक्तियों में प्रतीक-पद्धति का आश्रय लिया था। श्री बदरीनाथ भट्ट प्रतीकों के प्रयोग में अद्वितीय थे—उनके गीतों में जीव और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध परिचित प्रतीकों में सफलतापूर्वक व्यक्त हुए हैं। प्रतीक-पद्धति में 'अभिधा' के स्थान में 'लक्षणा' का प्रयोग और प्रस्तुत (वस्तु अथवा प्रसंग) के स्थान पर अप्रस्तुत की स्थापना दोनों का समावेश है।

जीवन के वहिरंग और अंतरंग को इस काल का कवि अपने अन्तर की पुतलियों से देखने लगा और प्रस्तुत चित्र की अनुभूति के लिए अपने अन्तर्लोक में छायाचित्र बनाने लगा। इसका सुखद परिणाम हुआ—लाक्षणिकता का विधान। अपने अन्तर् की लाक्षणिक योजना भावना में रँगकर कवि जब व्यक्त जगत् को

देखने लगा, तो धर्म, अथवा गुण के आग्रह से कविता के संसार में अब 'फूल' सुख का और 'शूल' दुख का, 'दिन' सुख का और 'रात्रि' दुख का, 'आलोक' ज्ञान अथवा आनन्द का और 'तिमिर' अज्ञान अथवा 'अवसाद का, 'मानस' मन (अन्तर्लोक) का और 'लहर' कामना का, 'वीणा' हृदय का और 'रागिनी' और 'मूर्च्छना वेदनाओं का, 'मधु' आनन्द अथवा माधुर्य का और 'मदिरा' छवि अथवा रूप का, 'उषा' आरंभ या उज्ज्वलता का और संध्या अवसान या विलास का, 'इन्द्रधनुष' रंगीनी या क्षणभंगुरता का, 'वसंत' यौवन का 'मधुप' प्रेमी का, 'मुकुल' प्रेयसी का, 'स्वर्ण' वैभव या दीप्ति का और 'रजत' रूप या धवलता का, 'तूफान' भावाघात और भावावेश का, 'झंकार' भावना और संवेदना का 'सरिता' जीवन का और 'मलय' श्वास का, 'संगीत' तन्मयता का, 'हास' विकास का, 'अश्रु' पीड़ा का, 'मिट्टी' नश्वरता का, 'मुरली' मधुर भावना का, 'हंस' प्राणों का प्रतीक बनगया और भाषा की लाक्षणिकता में अभूतपूर्व सम्पन्नता आगई।

लाक्षणिक योजना

(१) उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास, विचारों में बच्चों के साँस।
('आँसू' (पन्त)

(२) झंझा झकोर, गर्जन है, बिजली है, नीरदमाला।
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला।
(आँसू : 'प्रसाद')

सूक्ष्म भावों की गहन अनुभूति की क्षमता से भावुक और अनुभावक कवि ने (प्रस्तु अमूर्त्त को मूर्त्त रूप दिया और मूर्त्त को अमूर्त्त।) हृदय के सूक्ष्म अगोचर भाव मूर्त्त होकर अधिक प्रभविष्णु हो उठे—

अमूर्त्त की मूर्त्त-योजना

(१) चिर उत्सुकता की छाया से मौन मलिन हो रहा अपार। *

(२) कैसा नीरव मधुर राग यह
शिशु के कंपित अधरों पर, सजनि ! खिल रहा है रह रह। *

(३) अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना, §

(४) कौन प्रकृति के करुण काव्य सा वृक्ष-पत्र की मधुछाया में
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है अमृत सदृश नश्वर काया में ?*
इस करुणा-कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती ?
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती ? †

साथ ही, स्थूल मूर्त्त को अधिक अनुभूयमान बनाने के लिए अमूर्त्त रूप देना पड़ा—

मूर्त्त की अमूर्त्त-योजना

(१) गूढ़ कल्पना-सी कवियों की, अज्ञाता के विस्मय-सी।
ऋजियों के गंभीर हृदय सी, बच्चों के तुतले भय-सी। ◊

(२) सोगया निखिल वन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर ! ¶

(३) मादकता से आये वे संज्ञा से चले गये वे। $

---

* 'आँसू' (पन्त) § 'आँसू' प्रसाद) * 'विषाद' (प्रसाद) † 'आँसू' (प्रसाद) ◊ 'छाया' (पन्त) ¶ 'नौका-विहार' (पन्त) $ 'आंसू' (प्रसाद)

(४) गिरी शिखरी स्मृति-सी प्राचीन,
अतृप्त अकथ वियोग सी दीन ‡
(५) वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी ‖
(निराला : विधवा)

कभी-कभी रूप-विधान की प्रक्रिया में कवि ने उपमा और रूपक का कल्पना और चितारंजित रूप प्रस्तुत किया जैसे : नक्षत्र को को 'ऐ नश्वरता के लघु बुद्बुद्' और 'काल-चक्र के विद्युत-कन' कहकर, तथा 'वीचि' को 'अकूल की उज्ज्वल हास' 'अतल की पुलकित श्वास' और 'महानंद की मधुर उमंग' तथा, अनंग को 'ऋषियों के गान' और 'भावों को 'कल्पना के शिशु' कहकर।

— (२) मानवीकरण (Personificatpion) —

'प्रकृतिवाद' की अनुभूति प्रकृति में चेतना और मानवीयता की अनुभूति (आरोप-मात्र नहीं) के रूप में प्रतिफलित हुई। 'छायावाद' के भाव-लोक की यह एक विभूति है जो सीधी सर्व-वाद से प्रेरित है। अब तक की हिन्दी कविता में प्रकृति में चेतन रूप की कल्पना और भावना अतः आरोप हुआ था। जायसी के प्रेमाख्यानक काव्य 'पद्मावत' में पद्मावती की विरह-वेदना व्यथित होकर 'रक्त आँसु घुँघची बन गई' थी। प्रेम की आग की लपटों में समस्त प्रकृति जलती थी और उसके रँग में समस्त व्यक्त सत्ता रँग गई थी। बिहारी ने भी लिखा था—

‡ वीणा (५४) पंत ‖ 'विधवा' (निराला)

दुरी देखि तरु सघन वन, बैठि सदन-तन छाँह।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौ चाहति छाँह। ‖

परंतु ये आध्यात्मिक भावना और वाग्विदग्धता के उदाहरण मात्र हैं। छायावादी कवि ने, किन्तु, प्रकृति के अनेक रूपों में चेतना की अनुभूति की : कवि 'प्रसाद' ने 'किरण' में प्राणों का स्पन्दन देखा—

किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज, रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण-सरसिज किंजल्क-समान उड़ाती हो परमाणु-पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना-सदृश मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना-दूती सी तुम कौन? ‡

पन्त ने लहर में देखता हूँ जब उपवन

पियालों में फूलों के
प्रिये! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को!
नवोढ़ा बाल-लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर
सरकती है सत्वर; *

लिखते हुए उसमें मानवीय-व्यापारों की चेतन छाया देखी और 'निराला' जी ने 'जुही की कली' और संध्या सुन्दरी' में—

(१) नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।

‖ विहारी-सतसई ‡ 'किरण' (प्रसाद) * 'उच्छ्वास' (पन्त)

इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही -('जुही की कली')

(२) दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे' धीरे' धीरे'
तिमिराञ्चल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर ।—(संध्या-सुन्दरी)

'प्रसाद' की 'बीती विभावरी' पन्त की 'छाया', वीचीविलास, 'चाँदनी', 'विश्ववेणु', 'नक्षत्र', 'बादल' मानवीकरण के अत्यन्त पुष्ट और मनोरम उदाहरण हैं। अँग्रेजी काव्य में इस प्रकार के पर्याप्त उदाहरण हैं 'और इसे मानवीकरण' (Personification) नामक अलंकार गिना गया है।

(३) विशेषण-विपर्यय (Transferred Epithet)

अभिव्यक्ति की संश्लिष्टता को सँभालनेवाली भाव-समृद्धि के लिए कवि ने काव्य की भाषा को चित्रवती और भावव्यंजिनी बनाया :

(१) कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है (आँसू : पन्त)

(२) वेदना के ही सुरीले हाथ से है बना यह विश्व;- ('ग्रंथि' : पन्त)

(३) सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर।
(नौका विहार : पन्त)

(४) निद्रा के उस अलसित वन में
(५) आज निद्रित अतीत में मन्द ताल वह, गति वह, लय वह छन्द
(६) चल चरणों का व्याकुल पनघट कहाँ आज वह वृन्दा-धाम ?
(७) अँगड़ाते तम में।

वेदना नहीं कसकती वेदना से कसक होती है; गान नहीं सिसकता, सिसकता हुआ हृदय गान गाता है; वेदना का स्वर सुरीला, है हाथ नहीं; निद्रा अलसाई है' वन नहीं; अतीत निद्रित नहीं पनघट व्याकुल नहीं और तम अँगड़ाता नहीं। इसके ये विशेषण विपर्यस्त (Transferred) हैं। इस प्रकार के अलंकार को अंग्रेजी में विशेषण-विपर्यय माना गया है।—

अंग्रेजी काव्य और साहित्य से इस काल केक वियोंने अपनी भाषा में अभूतपूर्व समृद्धि अर्जित की है। भाषाओं की विविधता अपने-अपने विविध-विभन्न अभिव्यक्ति-मार्गों से अन्तत-भाव की एकता की ओर ही गतिशील है इसलिये कभी-कभी एक प्रकार का अर्जन अत्यन्त सुबोध और सुखद हुआ है किन्तु कभी-कभी नितान्त क्लिष्ट और अगम्य।

शैली और कीट्स के काव्य-रस में लुब्ध हिन्दी कवि पन्त ने 'न पत्रों का मर्मर संगीत' (Murmuring leaves), विचारों में बच्चों के साँस (Childlike) और 'अज्ञान (innocent) नयन', स्वप्निल (Dreamy)' महादेवी वर्मा ने 'नाश के हिम-अधरों से' (Icy lips of death) 'दिनकर' ने 'समय-रेत' पर उतर गया कितने मोती का पानी (Sands of Time) भगवतीचरण वर्मा ने 'नये जीवन का पहला पृष्ठ देवि, तुमने उलटा है आज।' (tu ned the fist page of a new life)

अंग्रेजों से ही हिन्दी में अवतीर्ण किये हैं। प्रारंभिक अवस्था में ये 'पराई सम्पति' से ही दिखाई पड़ेंगे।

(४) ध्वन्यर्थव्यञ्जना (Onomatopoeia)—

चित्र-राग की सृष्टि करने में ध्वन्यर्थव्यञ्जक पदों का योग कम नहीं है। नाद-सौंदर्य से श्रुति-रञ्जन की सृष्टि होती है और यह चित्र-विधान में साधक होती है। कविता में भावना का रूप स्वरों के उचित सम्मिश्रण और यथोचित मैत्री पर निर्भर है, क्योंकि 'काव्य-संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं' सुमित्रानंदन पन्त ने इस प्रकार की मैत्री का मूल्य समझा है और भाव-भावना के अनुरूपक स्वरों का सन्निवेश किया है। उनके 'उच्छ्वास' के 'पावस ऋतु थी पर्वत-प्रदेश। पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।* में लघु-लघु मात्राओं का समुदाय (स्वरसंकोच) प्रकृति-वेश को पल-पल में भावों में परिवर्तत कर रहा है, (२) शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर ‖ में 'फेन' और फूत्कार' प्रकट होते दिखाई-सुनाई पड़ते हैं। 'निराला' जी की 'राम की शक्ति-पूजा कविता में भी ध्वन्यर्थव्यञ्जना साकार हो गई है—

> हो श्वसित पवन उनचास, पिता-पक्ष से तुमुल,
> एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
> शत घूर्णावर्त, तरंग भंग उठते पहाड़,
> जल-राशि राशि जल पर चढता खाता पछाड़,
> तोड़ता बन्ध—प्रतिसंध धरा, हो स्फीत वक्ष
> दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष..

दिग्विजय की ओर जाने वाले ओजस्वी वायु का गर्जन-तर्जन ही मानों मूर्तिमान हो! पंत और 'निराला' ध्यवन्यर्थव्ञ्जना के

* 'उच्छ्वास' (पन्त) ‖ 'परिवर्तित' (पन्त)

धनी हैं। 'निराला' के 'कन कन कर कंकण प्रिय किन-किनरव किंकिणी, रणन-रणन नूपुर' तो तुलसी के 'कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि' की स्मृति सजग कर देते हैं। 'तुलसीदास' काव्य की उच्चता में उसके नाद-सौंदर्य का योग कम नहीं है। पन्त जी ने प्रायः छोटे-छोटे नादानुकृत पदों की सृष्टि की : जैसे—रलमल्, रण मण, टलमल्, टल् टल् छल् छल्, कल् मल्, रल् मल्, कल्कल् छल् छल्, मर् मर्, मर् मर् (Murmur) और मर् मर्। भावों के अनुसार भाषा को रूप देने में 'निराला' और पन्त की प्रतिभा अग्रणी रही। पन्तजी ने शब्दों की चित्र और ध्वनि की प्रकृति को समझा है 'नवल कलियों के धोरे भूम' में 'धीरे' शब्द प्रांतिक होने पर भी उसके 'भूम' के धोरे आजाने से भौंरे की सी गूँज अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ती है। निरालाजी की 'सन्ध्या-सुन्दरी' जब नीरवता सखी के कन्धे पर बाँह डाले अम्बर-पथ से चलती है तो केवल एक अव्यक्त शब्द 'चुप चुप चुप' ही सुनाई देता है।

भाव-पक्ष और कला-पक्ष की दृष्टि से हिन्दी में 'छायावाद' एक युगान्तरकारी आन्दोलन है। हिन्दी कविता ने 'छायावाद' में

> क्रीड़ा, कौतूहल कोमलता, मोद मधुरिमा, हास, विलास,
> लीला विस्मय, अस्फुटता, भय, स्नेह, पुलक, सुख, सरल-हुलास !

का एक नवीन प्रकाश देखा।

'छायावाद' और भ्रांतियों का जाल

'छायावाद' के साथ अनेक भ्रांतियाँ कवियों और आलोचकों के मन में हैं। जितनी ही उसकी व्याख्या हुई उतना ही वह अस्पष्ट

और अगम्य बनता गया। जन्म के समय वह 'रहस्यवाद' का

'छायावाद' 'रहस्यवाद'

पर्याय था। रवींद्रनाथ से लेकर उनसे प्रभावित हिन्दी के कवि और आलोचक 'रहस्यवाद' ही मानते रहे, वस्तुतः 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' में प्रारंभ में अभेद ही था।* परन्तु अब दोनों की निश्चित रूपरेखा है—यद्यपि दोनों की सीमारेखाओं की संधि पर दोनों में भेद नहीं रहता।

इसकी अस्पष्टता (दुरूहता) ने उसे 'अस्पष्टवाद' (छाया-अस्पष्ट) का पर्याय बना दिया था परन्तु इस अर्थ को स्वयं 'छायावाद' के उत्तरान्त आलोक ने मिटा दिया। छायावाद में

मानव-अनुभूति का छाया चित्र

मानव-अनुभूतियों का चित्रण अपने नये निराले रूप में हुआ। सूक्ष्म भावों के चित्रण में जो दुरूहता थी वह एक तो कर्त्ता की अक्षमता के कारण रही, दूसरे समझनेवाले की संवेदन-हीनता के कारण। ‖

'छायावाद' शब्द का एक प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है। प्रस्तुतों के स्थान पर अप्रस्तुत प्रतीकों की

'छायावाद' एक शैली

योजनावाला 'प्रतीकवाद' (अथवा 'चित्रभाषावाद') ही 'छायावाद' समझा गया। श्रीरामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'पन्त, प्रसाद और निराला आदि कवि इसी शैली के कारण छायावादी कहलाए।' 'चित्रभाषा' का अवलम्बन 'छायावाद' की केवल एक विशेषता है,† एक अंग है। अंग ही को अंगी मान लेना अतिव्याप्ति दोष है। वस्तुतः 'प्रतीकवाद' स्वयं एक विशिष्ट भाव-लोक की कलात्मक

---

* दे० 'द्विवेदी काल' : 'भक्ति और रहस्य' ‖ दे० पृ० ३१६

† दे० पृ० ३३३-४३

अभिव्यक्ति है। उसे 'छायावाद' से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता, परन्तु शरीर को ही आत्मा मान लेना भ्रांति है।

केवल एक व्याख्या सर्वमान्य होती दिखाई दी—दृश्यमान् जगत् के व्यष्टि रूप में सूक्ष्म चेतना (सौंदर्यबोध और मूर्तिमत्ता) और चिन्मयता की प्रतीति। इस भाव-लोक से जिस प्रकार की कविता का विधान होगा उसे 'छायावाद' कहना चाहिए। इस प्रकार प्रकृति और मानव-भावों मे सूक्ष्म चेतना का आदान-प्रदान छायावाद का प्रमुख गुण होगा।

'छायावाद' के इस समृद्ध क्रोड़ में हिन्दी का उत्कृष्ट साहित्य पालित-पोषित हुआ: एक ओर उसमें प्रेम, सौंदर्य और करुणा के कवि 'प्रसाद' ने 'झरना', आँसू और 'लहर' की सृष्टि की दूसरी ओर सुंदरम् के उपासक कवि पन्त ने प्रकृति का गायन किया, तीसरी ओर 'निराला' ने वेदांत के अद्वैत को भाव-रूप दिया और चौथी ओर महादेवी ने सृष्टि में अज्ञात-अदृश्य की चेतना की लीला दिखाई।

—जयशङ्कर 'प्रसाद': 'छायावाद' के प्रतिष्ठाता—

काव्य की बहुमुखी प्रतिभा के पुञ्ज हैं जयशंकर 'प्रसाद'। हिन्दी में वे एक अभूतपूर्व मधुमयी प्रतिभा और जागरूक भावुकता के धनी कवि थे। विश्वसुंदरी प्रकृति में चेतना सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति तथा, हृदय की सूक्ष्म भावनाओं की व्यञ्जना आदि छायावाद के तत्वों में प्रमुख हैं। 'प्रसाद' इन सबके प्रथम पुरस्कर्त्ता थे। 'झरना' छायावाद का प्रथम चरण-चिन्ह है।

'प्रसाद' की कविता प्रेम, करुणा और सौंदर्य की त्रिवेणी है। अपनी सौंदर्य-बोध और चित्रांकण की अद्भुत क्षमता द्वारा 'प्रसाद'

ने सौंदर्य जैसी अव्यक्त और सूक्ष्म वस्तु को साकारता प्रदान की है। सुन्दरता में ही उन्हें रमणीयता की प्रतीति होती है और रमणीयता में उन्हें दिव्य ज्योति के दर्शन होते हैं—'उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं।' इसी भावना को उन्होंने और भी स्पष्ट किया—

सौदर्यमयी चंचल कृतियाँ बनकर रहस्य हैं नाच रहीं।
मेरी आँखों को रोक वहीं आगे बढ़ने में जाँच रहीं।

सत रूप दृश्यमान् सौंदर्य में अन्तर्हित है—इसीलिए सौंदर्य का संमोहन इतना तीव्र होता है। प्रकृति के सौंदर्य को व्यापारों में बाँधने की क्षमता 'प्रसाद' में अनुपमेय थी—

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये,
तू अबतक सोई है आली. आँखों में भरे विहागरी।
बीती विभावरी जाग री!

यह अद्भुत रूप-चित्रण चेतना की अनुभूति से अनुप्राणित हो उठा है। ऐसा ही एक चित्रांकण यौवन-विलास का है—

वह लाजभरी कलियाँ अनन्त,
परिमल घूँघट ढक रहा दन्त।
कँप कँप चुप चुप कर रही बात,
कोमल कुसुमों की मधुर रात।
नक्षत्र कुमुद की अलस माल,
वह शिथिल हँसी का सजल जाल।
जिसमें खिल खुलते किरन पात।—'लहर'

सूक्ष्म भावों के सौंदर्य के ऐसे चित्र उनके नाटकों की गीतियों में मिलते हैं:—

तुम कनक-किरण के अन्तराल से लुक छिपकर चलते हो क्यों ?
नतमस्तक गर्व वहन करते, यौवन के घन रसकन ढरते,
हे लाजभरे सौन्दर्य ! बतादो मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में, कल कल, ध्वनि की गुंजारों में,
मधु-सरिता-सी यह हँसी तरल, अपनी पीते रहते हो क्यों *

ऐसा ही एक और चित्र है जिसमें आनन्द की मधुरिमा साकार हो गई है—

खुलीं उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखे;
हृदय-कुसुम की खिली अचानक मधु से वे भीगी पाँखे

सत्स्वरूप का व्यक्त रूप है सौंदर्य—इसलिए उसका मधु-पान करने में 'प्रसाद' को ईश्वरीय प्रसाद के उपभोग कासा आनंद मिलता था। 'प्रसाद' की रूप-पिपासा जब अतृप्त रहती है-

(१) तिर रही अतृप्त जलधि में नीलम की नाव निराली ('आँसू')
(२) प्यासी मछली सी आँखे थीं विकल रूप के जल मे ('आँसू')

तब उसका परिणाम होता है विरह-विकलता, वेदना और व्यथा और तब 'आँसू' छलकता है। कवि की प्रणय-भावना ही विकसित होकर उस वेदनाकी व्यञ्जना करती है जो मूल रूप में पार्थिव है अथवा भौतिक स्पर्श से शून्य नहीं है, परन्तु 'प्रसाद' का चिंतन उनकी इस पीड़ा को कल्याणी करुणा बनादेता है : यह विरह-वेदना असीम हो जाती है; उसमें अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी लीन हो जाते हैं; वही कल्याणी शीतल ज्वाला बन जाती है—

* 'चंद्रगुप्त मौर्य्य' ‡ 'कामायनी'

निर्मम जगती को तेरा मंगलमय मिले उजाला
इस जलते हुए हृदय की कल्याणी शीतल ज्वाला।*

'आँसू' कवि का एक विरह-काव्य है। इसी पृथ्वी पर रहनेवाले किसी शरीरी प्राणी का वियोग कवि के मानस में ये लहरें उठा सका है, इसमें कोई संशय नहीं, परन्तु विरह की उन व्यञ्जनाओं में अलौकिक और अपार्थिव संकेतों का पुट देकर उसने उन्हें 'आध्यात्मिक' बना लिया है: दूसरे शब्दों में वह पार्थिव व्यथा का मंगलीकरण है। कवि का दुख कवि के मानस में ही सीमित न रहकर विश्व के अङ्क में झलकता है—उनसे भी आप्लावित करता है:

क्यों छलक रहा दुख मेरा ऊषा की मृदु पलकों में,
हाँ उलझ रहा सुख मेरा सन्ध्या की घन अलकों में।*

उसकी व्यथा में व्योम-गंगा व्यथित है, उसकी ज्वालामयी जलन के स्फुलिङ्ग नक्षत्रों में हैं। जिसका चुम्बन प्राची के कपोल पर अंकित है, जिसके स्पर्श से समीर शीतल और मादक हो उठता है, जिसके दुःख का गुरुभार धरित्री वहन करती है जिसकी वेदना से चौदहों भुवन विकल हैं ऐसा है उसका विराट् प्रेम और विराट विरह; क्योंकि वह प्रेमी भी विराट है, जो बिजली-माला पहनकर मुसकराता है, प्राची के अरुण-मुकुर में जिसका प्रतिबिम्ब झलकता है। इस प्रकार 'आँसू' सांकेतिक रूप में जीवात्मा का अपने प्रियतम परमात्मा के विरह का गीत है जो अभिसार के लिए आया ऊपर के नन्दन से नीचे की पृथ्वी पर—'गौरव था नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे', । वह

* 'आँसू'

अलौकिक है—'थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखों में, वह चिर सुन्दर है—'लावण्य-शैल राई-सा जिसपर वारी बलिहारी।' प्रणय-लीला के कायिक अनुभावों (चुम्बन, परिरम्भण, दर्शन, तन्मयता, मुग्धता, व्रीड़ाकी लालिमा, लीला-विलास) के मनोरम चित्र 'प्रसाद' की तूलिका ने अंकित किये हैं :

(परिरंभण—(१) परिरम्भ कुम्भ की मदिरा, निश्वास मलय के झोंके।
दर्शन)   मुखचन्द्र-चाँदनी-जल से मैं उठता था मुँह धोके।

(बाहु-बन्धन) (२) थी किस अनंग के धनु की वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या तनु छवि-सर की नव-लहरी

(प्रणय-चर्या) (३) नीरव-मुरली, कलरव चुप अलिकुल थे बन्द नलिन में,
कालिन्दी बही प्रणय की इस तममय हृदय-पुलिन में।

अन्तिम चित्रमाला में 'नीरव मुरली', 'चुप कलरव', 'नलिन में बन्द अलिकुल' और 'प्रणय की कालिन्दी' प्रणय-लीला का एक एक मनोरम चित्र हैं। प्रणय का रंग श्याम है और कालिन्दी भी श्यामल जलमयी है। हृदय-तटों में बहती हुई प्रणय की धारा और मुरली बजाकर गोपिकाओं को अपनी कमलरूपा आँखों में, भौंरोंसी मदिरमुद्रा में बन्द किये मुग्ध करके रिझानेवाले रास-बिहारी कृष्ण की चिरसहचरी कालिन्दी : इन दोनों का कितना सहज चित्रसाम्य है। 'आँसू' में इस प्रकार करुणा में सावित प्रेम का संयोग-पक्ष सजीव हुआ है। व्यक्ति-विरही की वेदना विश्व की वेदना बन जाती है—व्यष्टि की ज्वाला समष्टि के लिए मंगलमय उजाला' बन जाती है।

प्रेम 'प्रसाद' के लिए जीवन की एक चिरंतन वृत्ति है। वे मूलतः प्रेम के ही कवि हैं, 'करुणा' उसके मूल में है और सौंदर्य

तो प्रेम की ही अभिव्यक्ति है। अपनी सभी रचनाओं में इसी 'प्रेम' का संदेश उनका देय है।

परन्तु 'प्रसाद' का प्रेम लौकिक भी है और अलौकिक भी। वह जीवन उसी प्रेम कला की लीला है, जो अ-प्रसूता है। वह प्रेम जीवन और मरण से अतीत है:

जिसके आगे पुलकित हो जीवन है सिसकी भरता।
हाँ, मृत्यु नृत्य करती है मुसकाती खड़ी अमरता। 'आँसू'

वह वासना और आसक्ति से ऊपर आत्मा की चित् वृत्ति है— इसीलिए उसमें आदान की आकांक्षा नहीं, 'प्रदान'—उत्सर्ग की उत्कण्ठा है:

(१) पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब आँसू के कन कन से गिनकर-('लहर')

(२) विनिमय प्राणों का यह संकुल कितना भय व्यापार अरे।
देना हो जितना देदे तू लेना, कोई यह न करे!

यही प्रेम भवत्राता है:

घने प्रेम तरु तले
बैठ छाँह लो भव-आतप से तापित और जले! 'स्कंदगुप्त'

'प्रसाद' के लिए जीवन स्वयं एक प्रेम-पथ है, प्रेम जीवन केसाथ ही नहीं मिट जाता, क्योंकि जीवन स्वयं अखण्ड है। प्रेम का अन्तिम गन्तव्य चरम सीमा है:

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमें टिक रहना!
किन्तु पहुँचना उसके सीमा पर जिसके आगे राह नहीं!

—सुमित्रानन्दन पन्त : प्रकृति के गायक—

सुमित्रानन्दन के कवि-रूप के ध्यान से हृदय में एक ऐसा संश्लिष्ट चित्र अंकित हो जाता है जो कल्पना-सा कोमल, सुन्दरता-सा आकर्षक, भावुकता-सा मधुर और चिन्तन-सा शान्त तथा गंभीर है। उनकी कविता-कामिनी का कलेवर रेशम-जैसा कोमल, मधुप के गुंजन जैसा मधुर, इन्द्रधनुष जैसा चित्र-विचित्र, ज्योत्स्ना-जैसा आभामय और तरल लहर-जैसा चञ्चल गतिमय है।

कवि पन्त कल्पना के कवि हैं, कवि पन्त अनुभूति के कवि हैं और कवि पन्त चिन्तन के कवि हैं; पर एक क्षण में तीनों नहीं। उनकी कविता-धारा की तीन विकास-अवस्थायें हैं— पहली में कल्पना का वैभव है, दूसरी में गुंजन (अनुभूति) की गरिमा और तीसरी में चिन्तन का प्रतिनिधित्व।

पन्त हिन्दी के एक कोमल-कान्त सुमधुर गीति-विहग हैं। सृष्टि में जो कुछ सुन्दर और कोमल, मधुर और मोहक है उसे उन्होंने अपनी वीणा पर गाया है। प्रकृति के रमणीय क्रोड़ में पला होने के कारण उसका स्वरूप ही कवि का प्रेरक प्राण था जहाँ—

> सौरभ का फैला केश जाल करती समीर परियाँ बिहार,
> गीली केसर मद झूमझूम पीते तितली के नव कुमार

ऐसी विश्वसुन्दरी प्रकृति का स्तन्य पानकर यह प्राणी प्रकृति के दायित्व से अपने जीवन में कभी उऋण नहीं हो सकेगा। उससे उन्हें कल्पना का अक्षय वैभव मिला है, नीरव सम्मोहन

और तन्मयता मिली है, सुन्दर की उपासना मिली है, स्वप्न का दर्शन मिला है। प्रकृति में पन्त को कविता मिली और पन्त में प्रकृति को अपना कवि।

प्रकृति के साहचर्य ने कवि को कल्पनाजीवी बना दिया। प्रकृति के रमणीय रूपों से उसे अपनी भावनाओं के अभिव्यंजन में कला के उपकरण मिले हैं। कवि का मोह प्रकृति के बादल, छाया, कुसुमकली, निर्झर, सरिता, मधुप, तितली, लहर, समीर सभी मनोरम रूपों में रमा था। अपनी भावनाओं को उसने प्राकृतिक सुषमा की भूषा दी और प्राकृतिक सुषमा को अपनी भावना से रंजित किया—यही पन्त का धन है। कवि अपनी भावनाओं की, कामनाओं की, वासनाओं की, प्यास प्रकृति में तृप्त करता था और अपने भाव जगत् का प्रतिबिम्ब प्रकृति में पाता था। तब वह मधुप कुमारी से मीठे गान माँगता था—

> सिखा दो ना हे मधुप कुमारि, मुझे भी अपने मीठे गान।
> कुसुम के चुने कटोरों से करा दो ना कुछ कुछ मधु पान। ||

प्रकृति के दो प्रकार के चित्र कवि ने अंकित किये हैं : एक में निरपेक्ष रूप-चित्रण—रमणीय दृश्य-विधान है—दूसरे में सजीव (चेतन) सत्ता की अनुभूति। कवि उस 'सुन्दरम्' का उपासक है जिसकी व्यक्त सत्ता प्रकृति है।

> पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
> मेखलाकार पर्वत अपार अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
> अवलोक रहा है बार-बार नीचे जल में निज महाकार;
> जिसके चरणों में पला ताल दर्पण-सा फैला है विशाल!

|| मधुकरी (पल्लव)

गिरि का गौरव गाकर झरझर मद से नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों-से सुन्दर झरते हैं झाग भरे निर्झर।
गिरिवर के उर से उठ-उठकर उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष अटल, कुछ चितापर!
—उड़गया अचानक लो, भूधर फड़का अपार पारद के पर!
रवशेष रह गये हैं निर्झर। है टूट पड़ा भू पर अम्बर
धँस गये धरा में सभय शाल। उठ रहा धुआँ जल गया ताल।
यों जलद यान में विचर-विचर था इन्द्र खेलता इन्द्र जाल!

प्रकृति के क्रिया-व्यापारों के इतने वैभवशाली रूप-चित्र हिन्दी कविता ने नहीं पाये थे। 'पल्लव' के 'बादल', 'विश्ववेणु' और 'गुंजन' के 'नौका–विहार', 'सन्ध्यातारा' आदि में भी कवि का रूप-चित्रण उसकी कल्पना के साथ सम्बद्ध है।

(१) सिकता की सस्मित सीपी पर, मोती की ज्योत्स्ना रही विचर।
(२) मृदु मन्द मन्द मन्थर मन्थर, लघुतीर्ण हंसिनी सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के थर!
(३) निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिंबित हो रजत-पुलिन निर्भर।
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।
(४) बिस्फारित नयनों से निश्च, कुछ खोज रहे हैं तारक-दल।
ज्योतित कर नभका अन्तस्तल।
जिनके लघु-दीपों को चंचल अञ्चल की ओट किये अविरल।
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल।
—'नौका-विहार'।

उच्छ्वास ('पल्लव') ('गुञ्जन')

प्राय: पन्त ने जहाँ प्रकृति के व्यापारों को अपनी मानवीय भावनाओं के रंग में रंग कर देखा है कवि ने उसमें चिर सुन्दरी नारी के सौंदर्य की कल्पना की है :

(१) उस फैली हरियाली में,
कौन अकेली खेल रही माँ, वह अपनी वय वाली में ? ('पल्लव')

(२) लाई हूँ फूलों का हास, लोगी मोल, लोगी मोल ?
फैल गई मधुऋतु की ज्वाल, जल जल उठती वन-वन डाल
कोकिल के कुछ कोमल बोल, लोगी, मोल लोगी मोल ? ('गुञ्जन')

इसी विश्वसुन्दरी-प्रकृति में चेतना का आरोप (जो छायावाद की प्रमुख विभूति है) कवि पन्त की कविता में हुआ है। सरिता में वे आत्मा की सत्ता की अनुभूति करते हुए कहते हैं—'आत्मा है सरिता के भी जिससे सरिता है सरिता।' इसी प्रकार 'छाया' से कवि पूछता है ?

कौन कौन तुम परिहत-वसना म्लान-मना भूपतिता-सी,
वातहता विच्छिन्न लता सी रति श्रान्ता व्रज-वनिता सी ! *

इस कल्पना की प्रेरक शक्ति कवि की भावना है, जिससे वह उसके मर्म तक पहुँच सका है—

पीले पत्तों की शय्या पर तुम विरक्ति-सी मूर्च्छा सी,
विजन विपिन में कौन पड़ी हो विरह मलिन दुख-विधुरा सी ! *

भावना प्रवणता ही से कवि उस अवाक् निर्जन की भारती का आख्यान सुन पाता है :

ऐ अवाक् निर्जन की भारति, कम्पित अधरों से अनजान
मर्म मधुर किस सुर में गातीं तुम अरण्य के चिर आख्यान ? *

---

* 'छाया' ('पल्लव')

'गुञ्जन' में आते-आते ज्यों २ कवि की कल्पना अधिक प्रौढ़ और सूक्ष्मदर्शी होती जाती है त्यों त्यों वह सूक्ष्म सौंदर्य अर्जन करती जाती है। 'गुञ्जन' के कवि में जितनी प्रचुर कल्पनाशीलता है उतनी ही विपुल भाव-प्रवणता। सृष्टि के दृश्यमान रूपों में एक सूक्ष्म भावनागम्य सौंदर्य की चेतना है और कवि उसे निरन्तर कल्पना की आँखों से देखा करता है। कि कवि का विश्वास है कि वही सौंदर्यमयी चेतना (अप्सरा) प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं में छिपी हुई अपने व्यापारों द्वारा जन-मन को लुभाया करती है, वही शैशव में माँ बनकर उसे रिझाती रहती है—

नवशिशु के सँग छिप छिप रहतीं तुम माँ का अनुमान
छिपी थपक से उसे सुलातीं गा-गा नीरव गान*

वही स्वप्नों में शिशुओं के कोमल ओठों में मुसकान का रंग चढ़ाया करती है, वही उनकी नन्हीं आँखों में अपनी रूप-छवि रमाये रहती है, वही तरुणाई में प्रेयसी के रूप में मन को सम्मोहन में बाँधा करती है :

प्रेयसि के प्रत्यंग अंग में लिपटीं तुम अभिराम।
युवती के उर में रहस्य बन हरतीं मन प्रतियाम।*

वह अकथ अलौकिक, अमर अगोचर है। वह अजन्मा है, मायाविनी है, छलना-मयी है। प्रत्येक युग के जन-मन की कल्पना और भावना ने उसे रूप और आकार दिया है।

मानव और प्रकृति के सूक्ष्मतम भाव-रूपों का मानवीकरण सबसे अधिक पन्त की कविता में पाया जाता है :

---

* अप्सरा ('गुञ्जन')

(१) नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु करतल पर शशिमुख धर, नीरव अनिमिष एकाकिनि! (चाँदनी)

(२) पीली पड़, दुर्बल, कोमल, कृश देह-लता कुम्हलाई
विवसना लाज में लिपटी-साँसों में शून्य समाई! (")

'गुञ्जन' में कवि चिन्तन-जगत् में प्रवेश कर लेता है। प्रकृति से पहले वह अपने हृदय के लिए रस पाता था, वहाँ अब कुछ चिन्तन के कण भी संचित करता है। ऐसे कुछ कण हैं:

(१) जीवन की लहर लहर से हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अन्तस्तल में नित बूड़-बूड़ रे भाविक!

(२) दुख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन,

(३) वही मधु ऋतु की गुंजित डाल, झुकी थी जो जीवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल सिहर उठती—'जीवन है भार'!

'युगान्त' में आकर तो कवि जीवन की पुरानी दृष्टि को भूलकर अपने कल्पना के, भावना के युगों का अन्त कर देता है। कोकिल अब उसे पहले जैसा सन्देश नहीं देती, अब उससे वह क्रांति की अग्नि माँगता है—

गा कोकिल बरसा पावक-कण,

नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बन्धन!
पावक पग धर आवे नूतन, हो पल्लवित नवल मानवपन!
झरें जाति कुल वर्ण पर्ण घन, अन्ध नीड़ से रूढ़ि रीति छन!

'युगान्त' तक के पन्त का काव्य कोमल कल्पनामूलक है: उस कल्पना में कोमलता है, कोमलता में मधुरिमा है, मधुरिमा में सरसता और सरसता में सुखदता है।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—

छायावाद के अन्तर्जगत् में 'निराला' ने सुदूर तक विचरण किया है। 'परिमल' का कवि 'तरंगों के प्रति' प्रश्नशील है—

बाहें अगणित बढ़ी जा रहीं हृदय खोलकर
किसके आलिंगन का है यह साज ?
भाषा में तुम पिरो रही हो शब्द तोलकर,
किसका यह अभिनन्दन होगा आज ?
किसके स्वर में आज मिला दोगी वर्षों का गान,
आज तुम्हारा किस विशाल वक्षस्थल में अवसान ?

परन्तु पीड़ित मानवता की ओर भी उसकी दृष्टि खुली है—

बहती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी
दग्ध चिता के कितने हाहाकार !
नश्वरता की—थी सजीव जो कृतियाँ कितनी,
अबलाओं की कितनी करुण पुकार !

रूप-सौंदर्य और नाद-सौंदर्य का बोध अपने कलात्मक रूप में 'जुही की कली'; और' संध्या-सुन्दरी' में प्रस्फुट हुआ है :

(१) विजन वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी, स्नेह—स्वप्न-मग्न—
अमल कोमल-तन तरुणी जुही की कली—
दृग बन्द किये, शिथिल, पत्राक में,—'जुही की कली'

(२) तिमिराचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,—
किन्तु गंभीर,—नहीं है उसमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक

गुंथा हुआ उन घुंघराले बालों से
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह की,
सखी-नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बर-पथ से चली।—('सन्ध्या-सुन्दरी')

'निराला'जी की सबसे बड़ी देन है छायावाद की कल्पनामूलकता में प्रज्ञातत्व का पुट। 'निराला' का दार्शनिक उन्हें इस जड़जगत् में प्रच्छन्न शाश्वत ज्योति की व्यञ्जना की ओर उड़ा लेजाता है तभी 'धारा' में उसे आत्मा की-सी चेतना मिलती है—

"यह जीवन की प्रबल उमंग,
जारही मैं मिलने के लिए, पार कर सीमा,
प्रियतम असीम के संग। 'धारा'

प्रलय में उन्हें श्यामा का नृत्य मिलता है :

अट्टहास–उल्लास नृत्य का होगा जब आनन्द,
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार,
बन्द हो जाएँगे ये सारे कोमल छन्द,
सिन्धु-राग का होगा कब आलाप—
उत्ताल-तरंग मार कह देंगे
माँ मृदंग के सुस्वर क्रिया-कलाप;
और देखूंगा देते ताल
कर-ताल-पल्लव दल से निर्जन बनके सभी तमाल;
निर्झर के झर-झर स्वर में तू सरिगम मुझे सुना माँ—
एक बार बस और नाच तू श्यामा! ('परिमल')

'निराला' का 'बादल राग' दार्शनिक भावना से पूर्ण छायावादी दर्शन है।

प्रत्येक छायावादी कवि प्रकृति के क्रिया-कलाप में अपने मानस की अतृप्त वासनाओं की, छाया दिखाता है। 'जुही की कली' में ऐसा ही एक चित्र है :

निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज–पास,
नम्रमुखी हँसी–खिली,
खेल रंग, प्यारे–संग।　　('परिमल')

'भिक्षुक', 'विधवा' आदि भारतीय सामाजिक जीवन की विद्रूपताओं को इस छायावादी कवि ने सम्भवतः सबसे पहले चित्रित किया था—

(१) वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूरकाल-ताडव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।　　('विधवा')

(२) वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,

चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता। ('भिक्षुक')

'निराला' उन कवियों में से हैं जिनकी दृष्टि जीवन के सर्वांग पर है, और छायावादी शैली उन्होंने वहीं अपनाई है जहाँ विषय सूक्ष्म या इन्द्रियातीत हैं ;

—महादेवी वर्मा—

महादेवी वर्मा का हिन्दी काव्य-क्षेत्र में आगमन तब हुआ जब 'प्रसाद', 'निराला' और पन्त की बृहत्त्रयी ने 'छायावाद' क्षेत्र में अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा पा ली थी। महादेवी की अंतर्वृत्तियाँ और मानव-अनुभूतियाँ इधर-उधर के जगजीवन के विषयों में न भटककर प्रकृति और पुरुष के प्रणय-सम्बन्धों की मधुरिमा में अटक गईं—इसलिए कि इसमें उन्हें अपने हृदय की निकटता मिली। व्यक्त जगत् में महाप्राण की अनुभूति उन्हें भारतीय दर्शन से मिली है। प्रकृति उस चिरसुन्दर की प्रतिच्छवि है : उसके रूप-व्यापार में वे उसकी प्रणय-लोला पाती हैं या उसके विराट प्रियतम पुरुष का चेतन सौंदर्य खोजती हैं—

(१) तारों में प्रतिबिम्बित हो मुस्कायेंगी अनन्त आँखें,
(२) हँस देता जब प्रात सुनहले अञ्चल में बिखरा रोली,
(३) रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली
(४) छाया की आँखमिचौनी, मेघों का मतवालापन
रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले श्रम के कन;
(५) जब कपोल गुलाब पर शिशु प्रात के सूखते नक्षत्र जल के बिंदु से,
रश्मियों की कनक-धारा में नहा मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,

(६) गगन मे हँसता देख मयंक उमड़ती क्यों जलराशि अपार,
पिघल चलते विधु मणि के प्राण रश्मियाँ छूते ही सुकुमार।

(७) रजत-स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली;
जाग दुख पिक ने अचानक मदिर पञ्चम-तान ली,

प्रकृति के जितने मनोरम चित्र उनकी तूलिका ने अङ्कित किये हैं सबमें प्रकृति एक चिरचेतन नारी-रूप लेकर अपने प्रियतम का प्रेम-सन्धान करती हुई आती है। उनके चित्र शब्द रूप-रस-गंध-पूर्ण हैं :

(१) सौरभ भीना झीना गीला लिपटा मृदु अञ्जन सा दुकूल;
चल अंचल से झरझर झरते पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल,
दीपक से देता बार बार तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास। ('नीरजा')

(२) आलोक-तिमिर सित असित चीर, सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर,
उड़ता झंझा में अलक-जाल मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर।
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर! 'नीरजा'

(३) स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते पलकों में निर्झरिणी मचली! ('सान्ध्यगीत')

(४) रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग! ('सान्ध्यगीत')

(५) नव इन्द्रधनुष का चीर महावर अंजन ले,
अलि गुंजित मीलित पंकज, नूपुर रुनझुन ले,
फिर आई मनाने साँझ मैं बेसुध मानी नहीं!

— रामकुमार वर्मा —

रामकुमार वर्म्मा कल्पना के कुशल कवि हैं। परंतु उनकी कविता में चिन्तन का भार भी रहता है। कविताका जन्म भावना में है, कल्पना उसे उत्कर्ष देती है, अनुभूति उसे मर्मस्पर्शिता, चिन्तन उसे गहराई। प्राय: कवि का विकास भी इसी पथ से होता है। भावना कविता का मूल द्रव्य है, कल्पना का पुट उसमें अपेक्षित है, अन्यथा कविता में सौंदर्य नहीं आता। अनुभूति से उसमें माधुर्य का समावेश होता है। केवल अनुभूति से ग्रामगीत उपजते हैं—उनमें कल्पना का पुट नहीं होता,—इसलिए कविता और ग्रामगीत के स्तर भिन्न होगये हैं। इसी कल्पना के सूत्र के सहारे कवि 'कुमार' आकाशचारी होकर रजनीबाला से पूछ उठते हैं—

इस सोते संसार बीच जगकर, सजकर रजनी-बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो—ये गजरे तारों-वाले?

तरु-मर्मर में वन की वेदना की अनुभूति भी इसी कल्पना पर अवलम्बित है:

वन के उर में चुभा हुआ है यह टेढ़ा पथ-तीर
तरु-मर्मर से यही वेदना व्यंजित है गंभीर

एक मुक्तक में चिन्तन कल्पना के क्रोड़ में सिमट गया है—

इस ग्वालिनि के पय में पानी नहीं ... ब्रह्म में माया।
दिव्य दूध में सकल विश्व का गूढ़ रहस्य समाया!

'कुमार' के हृदय में सब अनुभूतियों की जननी है 'वेदना'। संसार को बुद्ध की करुणामयी आँख से उन्होंने देखा है अश्रु-

रंजित, उच्छ्वास-वलित, दुःख तापित—जहाँ हास्य में रुदन है, प्रेम में घृणा है, दया में रोष है, पुण्य में दोष है. और जहाँ—

धूल हाय ! बनने ही को खिलता है फूल अनूप !
वह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप !

और इसीलिए कवि को असमंजस है—

'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत ?'

'रूपराशि' में वे किसी कल्पनारूपा 'प्रेयसी' की लीला देखते हैं, जो उन्हें मुग्ध करती है, जिसकी मधुचर्या उन्हें प्रकृति के रूप-व्यापारों में प्रतिबिम्बित मिलती है—

(१) मैं तुमसे मिल सकूँ यथा उर से सुकुमार दुकूल,
समय-लता में खिले मिलन के दिन का उत्सुक फूल,
(२) प्रातः पवन एक रोगी-सा तजता है उच्छ्वास
वहाँ किस तरह तुम, ओ प्रेयसि, बना चुकीं अधिवास !
(३) आओ आज स्वर्ग-पृथ्वी मिलकर हो जावें एक !
मेरे उर का आज तुम्हारे उर से हो अभिषेक !!
(४) उषा तोड़ तारों के फूल खेल रही है बादल में,
तू भी बन माला की रेख सो मेरे वक्षस्थल में !

छायावाद से प्रभावित अन्य कवि भी हैं जैसे हरिवंशराय 'बच्चन', हरिकृष्ण 'प्रेमी', इलाचंद्र; कुछ उसकी प्रतिक्रियात्मक शक्तियाँ हैं जैसे—भगवतीचरण वर्मा नरेन्द्र, 'अंचल'।

—हरिवंशराय 'बच्चन'—

छायावाद की कला को अधिक सुबोध, सुगम और यथार्थ की भूमि पर गतिशील बनानेवालों में अग्रणी हैं हरिवंशराय

'बच्चन'। जीवन की कठोर वास्तविकताओं ने 'बच्चन' को यथार्थ वादी बनाया था। जीवन में क्षुधा और तृप्ति में, काम और वासना में, दासता और स्वतंत्रता में, यथार्थ और आदर्श में संघर्ष और द्वन्द्व है। 'बच्चन' उन हृदयों में से हैं जो व्यक्ति और समाज की पीड़ा को उन्माद की, 'मधु' की मस्ती में भुलाना चाहते हैं, जीवन के आघात-प्रतिघातों से उठे चीत्कार को मधु गीतों में छिपाना चाहते हैं। इरान के ज्योतिर्विद् कवि उमर खय्याम की मस्ती-भरी रुबाइयों ने 'बच्चन' पर ऐसा मदिर प्रभाव छोड़ा है कि उनकी प्रतिभा सर्वप्रथम इसी मस्ती के साथ हिंदी काव्य जगत में छलक पड़ी। उमरखय्याम ने 'शराब, साकी, सुराही, प्याला और मस्ती के प्रतीकों द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना की थी। वह एक वेदान्ती कवि था: उसकी मदिरा वह प्रेम की मदिरा थी जिसका पान सूफ़ी संत करते थे। 'बच्चन' ने भी उसे अपने काव्य-चषक में भर दिया। देश की पुरानी सांस्कृतिक परम्परा से पृथक् होकर उन्होंने विदेशी स्रोतों से स्फूर्ति ली। परंतु उन्होंने ज्योंही अपनी 'मधुशाला' और उसके उपकरणों का परिचय देते हुए पुकार लगाई—

भावुकता अंगूरलता से खींच कल्पना की हाला—
कवि बनकर है साकी आया लेकर कविता का प्याला
कभी न कणभर खाली होगा लाख पिये-दो लाख पिये
पाठक गण हैं पीनेवाले, पुस्तक मेरी मधुशाला!

तो लोग 'बच्चन' के साथ झूमने लगे। अपनी 'मधुशाला' सुनाते समय वे पानी से भरा गिलास हाथ में लेकर, किसी काल्पनिक छायारूपिणी साक़ी की ओर मदिर पुतलियों से देखते हुए मदो

न्मद मद्यपी की भाँति झूमने का अभिनय भी किया करते थे जैसे वे 'हाला' के रंग में भीतर-बाहर से रँग गये हों (और आज वे कहते हैं कि उन्होंने उस समय तक तो अंगूरों से खींची सुरा का स्वाद भी नहीं लिया था, तो आश्चर्य होता है!) स्पष्ट है कि उनका 'मधु' (उनकी हाला) और 'मधुशाला' के अन्य उपकरण सांकेतिक— प्रतीकात्मक थे ।। 'हाला' के साथ जुड़ी हुई एक कुत्सित भावना का निराकरण करते हुए उन्होंने कहा भी—

मधुशाला वह नहीं जहाँपर मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती मेरी तो वह मधुशाला ।

उसका मूल्य और उपयोग कवि के शब्दों में है—

वह हाला कर शान्त सके जो मेरे अंतर की ज्वाला,
जिसमें मै बिम्बित, प्रतिबिम्बित प्रतिपल वह मेरा प्याला !

हाला (या मधु) साक़ी बाला, प्याला और मधुशाला के इन प्रतीकों से अनेक अप्रस्तुतों की व्यञ्जना 'बच्चन' ने की है—

मधुशाला	साक़ी बाला	प्याला	हाला	
विश्व	समीर	नभ	सागरजल	(३१)
वीणा	रागिनी	तार	स्वरलहरी	(४१)
बलिबेदी	भारतमाता	वीरोंकेशीश	वीररक्त	(४५)
प्रणय	प्रेयसी	अधर	यौवन-रस	(६३)
जीवन	यौवन	तन	प्राण	(७६)
विरही	आँखें	पलक	आँसू	(१११)

कवि की इस 'मधुशाला' ने समस्त संसार को—समस्त जीवन को लपेट लिया है। कवि का मंतव्य यह है कि 'हाला' दग्ध हृदय को सान्त्वना देनेवाली एक ओषधि है : 'मधु-मरहम का मैं लेपन

कर अच्छा करती उर का छाला।' आज के दग्धहृदय प्राणी को इसीलिए 'मधुशाला' स्पर्श (appeal) करती है। वह दुख को भुलादेने वाली सुख की कोमल थपकी है—सृष्टि में जो 'आनन्द', जो मस्ती है, वही मधु (हाला) है, जो आनन्द का आधार है वही मधु-पात्र (प्याला) जो आनन्द का विधायक, प्रदाता, स्रोत है वह मधुबाला या मधुविक्रेता है और 'आनन्द का भोक्ता मधुपान करनेवाला है। 'मधुशाला' का यही अतरंग है। अपनी इसी मधुशाला में कवि नित्य प्रति दिन-रात होली जलाता और दिवाली मनाता है: दिन को होली रात दिवाली सदा मनाती मधुशाला।'

यथार्थ जीवन अनेकविध मानवीय दुर्बलताओं का पुञ्ज है। उसकी विलास-वासना, नैतिक अनाचार और निराशा-वेदना की भी 'बच्चन' की कविता में झलक है, परन्तु इस 'वासना के पुट' और 'निराशा के गान' का कविने प्रत्याख्यान तथा स्पष्टीकरण किया है: 'मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा ?' अपनी वासना को अपार्थिव-उदात्त बनाने के लिए कवि को सहज ही 'छायावाद' का भावना-लोक मिल गया।

> मुस्करा कठिनाइयों—आपत्तियों को दूर टाला,
> धैर्य धरकर संकटों में खूब अपने को सँभाला,
>
> किन्तु जब पर्वत पड़ा आ शीश पर मैं सह न पाया;
> जब उठा हो भार जीवन तब लगाया ओठ प्याला!

में कवि ने सरलता और सच्चाई का पूरा आश्रय लिया है। कवि ने कहा कि मैं नियति का बन्दी आपबीती सुनाता हूँ: वेदना का गीत गाता हूँ। मेरे लिए यही आनन्द की मधु-मदिरा है—

जीवन का तत्त्वज्ञान ऐसे प्रश्नों के उत्तर में कवि ने उद्घाटित किया है और कविता की मार्मिकता बढ़ गई है—

> था सुधा में जब निमज्जित क्यों गरल पीने चला मैं ?
> बूझ दुनिया यह पहेली जान कुछ मुझको सकेगी।

इस प्रकार 'मधुकलश' में मधुशाला के प्रतीकों को लेकर उत्कृष्ट भाव की व्यञ्जनाएँ हुई हैं। 'लहरों का निमंत्रण' उसकी एक सशक्त कविता है। आसपास लहराते हुए (जीवन के) सागर में कवि रहस्यमयी पुकार सुनता है :

> इन पुकारों की प्रतिध्वनि हो रही मेरे हृदय में
> है प्रतिच्छायित जहाँपर सिन्धु का हिल्लोल-कम्पन !
> तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमंत्रण।

विश्व-पीड़ा से परिचय पाने और द्रवित होने के लिए कवि स्वप्न-लोकों के प्रलोभन छोड़कर इस सागर में डूबने के लिए आगया है। आशा उसकी अजेय है, विश्वास उसका अविचल है :

> सिन्धु के इस तीव्र हाहाकार ने विश्वास मेरा
> है छिपा रक्खा कहीं पर एक रसपरिपूर्ण गायन !

कल्पना में जो स्वप्न स्वप्न ही रह जाते हैं, कवि उन्हें वस्तु-जीवन के सागर में डूबकर यथार्थ करना चाहता है—फिर चाहे उस पार विभा मिले चाहे न मिले। हृदय में भीषण द्वन्द्व है, मन्थन है, आलोड़न-विलोड़न है, निराशा और पराजय की लहरें हैं, पीछे स्वजन रोकते हैं, आगे लहरों का निमंत्रण है, और इस डूबने-वाले कवि की आशा अडिग है—

> डूबता मैं किन्तु उतराता सदा व्यक्तित्व मेरा,
> हों युवक डूबे भले ही है कभी डूबा न यौवन,

यहाँ कवि कल्पना से अधिक अनुभूति और अनुभूति से अधिक चिन्तन के क्षेत्र में दिखाई देता है। कवि का व्यक्तित्व विकासशील है और वह 'मधुशाला' में चिन्तन का कवि हो गया है, उसका चिन्तन 'वेदान्त' से प्रभावित है।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'—

हरिकृष्ण 'प्रेमी' अग्नि और विस्फोट के ही कवि नहीं हैं, प्रेम के ही गायक नहीं हैं, वे 'छायावाद' के सूक्ष्म अतीन्द्रिय लोक में भी संचरण करते हैं। विश्व की नारी-शक्ति को कबीर ने महाठगिनी माया कहा है—'माया महाठगिनि हम जानी'; 'प्रेमी' ने इसीके विविध रूपों का अंकन 'जादूगरनी' में किया है। उस शक्ति के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों का इसमें सफल आकलन हुआ है—

(१) तू चिर सुन्दरि, विश्वविपिन में खिलती है, देती मधुदान—
जो मधु-दान जगत् की ज्वाला को करता है शान्ति प्रदान।

(२) रवि के चारों ओर घूमते जैसे ग्रह-उपग्रह अविराम,
तुझे घेरकर घूम रहे हैं जग के प्यासे नयन सकाम।

(३) कण-कण 'चलो-चलो' कह उठता, क्षण-क्षण लगता कल्प-समान,
त्रिभुवन की विराट वीणा में जब बजता तेरा 'आह्वान'।

(४) री, सौंदर्य, मधुरिमा बनती तू बन्धन, करुणा-धारा,
फिर भी तेरा रूप जगत् को लगता है कितना प्यारा।

(५) कौन देखता पट के पीछे दो प्यासे नीरव लोचन,
एक अनन्त अतृप्त कामना, एक हृदय, उन्मद यौवन ?

(६) मृत्यु चमकती है चितवन में, नूपुर-ध्वनि में बजता नाश,
कंप उठता है विश्व देखकर तेरा वंकिम भृकुटि-विलास।

(७) पीड़ा का दीपक जगता है, उर में होता परम प्रकाश
तेरी छवि के मृद-सौरभ से भर जाते अवनी-आकाश !

'आँखों में' वेदना लिये 'प्रेमी' ने अपनी व्यथा का आख्यान किया है। भूमिका-लेखक के शब्दों में 'किसी अज्ञात विमल विभूति के प्रति उनका उन्माद, प्रेम, स्मृति, विरह, उपालंभ, मनुहार, वेदना, करुणा और न जाने क्या-क्या इस कृति में है। आँसुओं के अनन्त उन्मत्त उष्ण सागर ढलका चुकने पर भी आँखों में बहुत-कुछ छिपा रह जाता है। इसी अधूरी अव्यक्त, अस्पष्ट अभिव्यक्ति में ही हमें उनके हृदय की अतुल-अगाध अनुभूति की एक अस्फुट झिलमिल झलक पाकर इस समय बरबस सन्तोष कर लेना पड़ता है।'

—इलाचन्द्र जोशी—

'छायावाद' के गहन-गूढ़ भाव-जाल और शब्दाडम्बर का वहिष्कार और प्राञ्जलता, कोमलता, गांभीर्य, लालित्य, मर्मस्पर्शी भावना आदि गुणों का समन्वय-सञ्चय करके उन्हें कविता में प्रतिष्ठित करनेवाले भावुक कवि हैं इलाचन्द्र जोशी। उन्होंने अपनी 'विजनवती' में सुन्दर रूपक-कथाएँ लिखी हैं : 'राजकुमार' जीवात्मा की मायात्मक संसार की यात्रा, कामनाओं की तृप्ति और विलासों की प्राप्ति के अनन्तर, प्रतिक्रिया में जन्मभूमि की स्मृति और प्रत्यावर्तन की कथा है। मनोवैज्ञानिक विकास की उसमें मार्मिक अनुभूति है। 'महाश्वेता' में विश्वनारी के कल्याणीय रूप की रूपकात्मक व्यञ्जना है : सौंदर्य, श्री, शुचिता, तप, सहिष्णुता, शील, करुणा, दीप्ति जिसमें साकार होगई है। 'मायावती' में हास-अश्रुमयी माया की नगरी-सृष्टि का रूपक है—

मैं महामहिम हूँ भुवनमोहिनी माया
निज अश्रु-हास से निखिल जगत् विरमाया;
है इन्द्रधनुष मेरी माया से अंकित,—
मम नयन वाष्प से होकर नभ में व्यंजित
मम तरल हास से होता है वह रञ्जित ;
है धूप हँसाती मुझे, रुलाती छाया।
मैं महामहिम हूँ भुवन मोहिनी माया।

'दमयन्ती' कवि के खिन्न मानस की चित्ररेखा है। 'नरक निर्वासी' में कवि के मानस का जीवन की कुत्सित विभीषिकाओं के प्रति विद्रोह ध्वनित है। उसे पढ़कर मिल्टन के 'पैरडाइज़ लॉस्ट' के शैतान (Satan) की वक्तृता कानों में गूँज उठती है :

कौन शक्ति है जिसने मुझको इस बन्धन में बाँधा
महाकाल तक
हृदय ! उठो अब, आज मचेगा ताण्डव;
रोम रोम से हुँकृत होवे महागान अति भैरव।
हे उन्माद ! करो निज मद से निखिल नियम परिवर्तन।
विश्वप्रकृति को विचकित करके निपट नग्नतम नर्तन
आज दिखादो।

रूपकों में लपेटकर अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को चित्रित करना 'छायावाद' की ही विशेषता है। 'विजनवती' कल्पना में और भावना, अनुभूति और चिन्तन 'मृदूनि कुसुमादपि' और 'वज्रादपि कठोराणि' भाषा में गुँथे हुए हैं।

—भगवतीचरण वर्मा—

'छायावाद' का कवि अपनी अतृप्त वासना में जगत् को रँगता

है और अपनी काम-पूर्ति (Wish fulfilment) करता है। भगवतीचरण, नरेन्द्र और 'अचल' की 'कामपूर्ति' यथार्थवाद की ठोस भूमि पर अधिक स्पष्ट रूप में हुई है। इसलिए वे 'छायावाद' की छाया में उसकी प्रतिक्रिया की ही शक्ति हैं।

यथार्थवाद भगवतीचरण की कविता में 'छायावाद' के माध्यम से आया है। अन्तर के गहन-गूढ़ उद्वेगों और अनुभूतियों को इसमें एक विस्फोट मिला है। जिसने अपने अरमानों को जुटाकर ज्वाला सुलगा कर उसमें अभिलाषायें स्वाहा की हैं वह उनके मर्म तक सहज ही पहुँच सकेगा—

> निज उर की वेदी पर मैंने महायज्ञ का किया विधान,
> समिधि बनाकर ला रक्खे हैं चुन चुनकर अपने अरमान !
> अभिलाषाओं की आहुतियाँ ले आया हूँ आज महान—
> और चढ़ाने को आया हूँ अपनी आशा का बलिदान,
>
> अभिमंत्रित करता है उसको इन आहों का भैरव राग !
> जल उठ, जल उठ अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग !

माया और छलना के इस संसार में मनुष्य स्वयं छलना और प्रवंचना का पोषक बन जाता है। नैतिक बन्धन हृदय की कोमल भावनाओं को तिरस्कृत करते और कुचलते हैं। मानवीय हृदय की दुर्बलताएँ भी बन्धनों से विद्रोह करती हैं। ऐसी आन्तरिक संघर्ष और द्वन्द्व की भावनाएं विद्रोहिणी की भाँति विस्फोट में साकार हो गई हैं। अनियंत्रित आकांक्षा और अतृप्त तृष्णा को उसने स्वर दिया है :

> मेरे सोये से उर मे तुम जाग्रति की कंपन सी,
> अलसाई सी आँखों में मदिरा के पागलपन सी,

मेरे सूने से जग में तुम वैभव के स्पन्दन सी,
आओ जीवननिधि, आओ, जीवन में तुम जीवन सी !

और जीवन में विनशता और पराजय की भावना भी मुखरित की है—

अब असह अचल अभिलाषा का है सबल नियति से संघर्षण
आगे बढ़ने का अमिट नियम पग पीछे पड़ते हैं प्रति क्षण ।

जीवन के आवेग-उद्वेग, हृदय के आघात-प्रत्याघात विस्फोटक वाणी में भगवतीचरण की कविता में प्रकट हुए हैं। वे इस जड़ जीवन में प्रलय (ध्वंस) लाना चाहते हैं।

—नरेन्द्र—

'छायावाद' की छाया में पले नरेंद्र की कविता में जीवन के प्रति एक आक्रमण—चाहे वह आशा का हो चाहे निराशा का, विद्रोह का हो या वासना का—मिलता है। यही उसका वैभव है :

ऊषा-सन्ध्या मेरी छाया, मुझसे लाली लेते पाटल,
मेरे गायन कल कूजन से चञ्चल चिड़ियों की चहल पहल

का गायक 'बबूल' बनकर कहता है—

यहाँ नहीं बुलबुल बबूल मैं, यहाँ न मधु ऋतु औ' मधुप्याली,
यहाँ न सुरभित फूल, सरस फल, यहाँ न डालें पल्लवधारी !

वह 'चमेली' का, 'कोयल' का, 'किन्नरी' का 'बिजली रानी' का, 'पूनों की रात' का, 'अलिदल' का, 'वसन्त की चातकी' का, 'सन्ध्या' का चित्रण करने में सफल छायावादी चित्रकार है : एक चित्र लें—

कल कच कलियाँ खिल-खिल खुलतीं
नित नई नई आँखें मिलतीं
रति-सुख विह्वल, आशा-चंचल
सालस सरसाती विश्व, सुरभि उपवन की !

—रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल'—

'अञ्चल' में मन की अतृप्त काम-वासना कुंठित होकर छायावाद के समस्त उपकरण समेटकर नग्न ऐन्द्रिय चित्रण बन गई है। नारी और उस रूप-परी के प्रति पुरुष-वासना का चित्रण 'मधूलिका' में है—

जब पराग की घन जाली में मत्त कोयलिया बोली।
तब मैंने अँगड़ाई लेकर अपनी जलन टटोली।

अपनी इस 'जलन' का रंग उन्हें प्रकृति के रूपों में दिखाई दिया :-

मधु के केशर के मुहूर्त में वही लालसा जलती
वही वासना झमक आह झंझा में रोती चलती।

लाक्षणिक प्रतीकों से ही उसने, अपनी अभिव्यक्ति को आकार दिया—

अपनी पीड़ा में घुल घुलकर मैं मधुचक्र रचाता
दूरागत वंशी के स्वर सा व्याकुलता भर आता।

रूप-वह्नि की प्यास और वासना को एकरूप मानकर वह कहता है—

धधक धधक उठती है जब यह रूपवह्नि चिर प्यासी
जल जल उठते कितने पागल पापी प्राण विलासी

यह भी क्या निष्ठुर उमंग है, हे सौंदर्य-कुमारी!
अब न जलाओ सुलग रहे हैं कितने रूप-पुजारी

प्रकृति के रमणीय व्यापारों में उसे प्रेम का आभास नहीं मिलता, मिलती है अपनी ही प्रणय-वासना की छाया—

(१) मुक्तकुन्तला सन्ध्या बाल, आई ले यौवन-संभार,
नयनों में बिखरी है लाल—गोधूली मदिरा सुकुमार
वक्ष-देश पर मुग्ध अजान : बन तारक-मोती छविमान
उदित हुए लो मेरे गान ?

(२) किस अविदित उच्छ्वास सुरभि से पीड़ित होकर सिहर-सिहर,
मधुवन की धानी मंजरियाँ खोल रहीं अपना अन्तर,
किस उमंग के पुलग-भार से झमक उठीं नवकलिकाएँ,
कहाँ सीख लेतीं बन निर्मम तान चलाना लोचन-शर ?

कवि की यह अभिव्यञ्जना छायावाद की व्यापक परिभाषा की सीमारेखा के बाहर नहीं जाती—हाँ, यदि 'छायावाद' को केवल भौतिकता में आध्यात्मिकता का छाया-चित्रण ही मानें, तो 'अञ्चल', भगवतीचरण, 'बच्चन' तीनों हिंदी कविता में नया द्वारा खोलनेवाले ठहरते हैं। वह नया द्वार है— मानवीय प्रेम में मांसल वासना का पुट। जीवन की कटुता को इन कवियों ने वासना के विलास, विस्फोट और मधु (मस्ती) में घुला-भुला देना चाहा है।

'अञ्चल' की तूलिका में चित्रांकण की क्षमता अद्भुत है परंतु वासना-षलित रति-विलास के चित्रों में।—

मदन हिलोलमयी वल्लरियाँ परिरंभित मदमाती
अलस निमीलित कुसुम दृगों से हेर रही रँगराती
केलि कलानत नव लतिकाएं लिपट लिपट तरु तरु से
रभस-विभावित आत्म-शिथिल सी विकल हुई रति-सुख से

रति-विगलित वनदेवी दिग्बालाएँ यौवन पीना,
कामकरम्बित मुग्ध मदन-सहजात विलासप्रलीना।
रूपराशि अर्चन-बेला में, सूर्य, चन्द्र, तारागण,
रतिरानी के मणिमंदिर में रास रच रहे अमरगण।

समस्त प्रकृति—समस्त ब्रह्माण्ड को कवि ने अपनी ऐन्द्रिय वासना में रँग लिया है, जैसे 'बच्चन' ने अपने मधु-विलास में। अपनी 'विपुल-वासना-ज्वलित' कहानी कहने के लिए कवि ने समस्त ब्रह्माण्ड में वासना का सन्धान किया है। यही उसका 'अन्तर्गीत' है, यही उसकी 'अन्तर्ध्वनि' है, यही उसकी 'अन्त लालसा' है, यही उसकी 'मरीचिका' है, यही उसका 'अनंत अभिसार' है, यही उसका 'अन्तर्गीत' है,—संक्षेप में यही उसकी 'मधूलिका' है। तब कवि के ही शब्दों में हमारी उदात्त भावना पूछ उठती है:

तुम क्या जानो, इस कम्पन में कितनी मादकता है—
कितना है उन्माद, अरे कितनी घातक कविता है।

उसकी 'अपराजिता' में भी यही वासना तृष्णा, लालसा, प्यास बनगई है।

रहस्य का पथ

मानव-सभ्यता के उषा काल से मनुष्य में किसी अज्ञात के प्रति जिज्ञासा रही है और अनन्त-काल तक रहेगी। उषा-काल में गगन-तल में शुभ्रता और लालिमा देखकर वह भावविभोर हो उठा है, सन्ध्या की स्वर्ण-वर्ण मेघमाला देखकर उसका मन मुग्ध

हो गया है, वर्षाकालीन मेघों का मंद्र-गम्भीर गर्जन और मधु-संगीत सुनकर वह हर्षोत्फुल्ल हो उठा है, वर्षा के पीछे 'बीज' नीलाकाश के मेघ-पटल पर इन्द्रधनुष की सप्तरंगी शोभा देखकर उसका मन-मयूर नाचने लगा है। कलकल-छलछल रव से बहती हुई निर्भरिणी की लहरों में, चंद्रिकास्नात राका और नक्षत्र-खचित विभावरी में उसने अलौकिक रूपाभा का दर्शन पाया है और अमृत का माधुर्य अनुभव किया है।

'अद्भुत' के केन्द्र इस विश्व सृष्टि के रूप-व्यापारों ने मानव-हृदय में विस्मय-जनित कुतूहल भर दिया। फूल-पल्लवों, वृक्ष-वल्लरियों, श्यामल शाद्वलों, शस्यश्यामला भूमि और शैल-श्रेणियों को देखकर हमारा मानस नाना भावनाओं से क्यों उच्छ्वसित हो उठता है? कोयल की कूक हमारे प्राणों को क्यों स्पन्दित कर देता है? वसन्त का मादक समीर हमारे रोम-रोम को क्यों लहलहा देता है? विश्व-वितान आकाश में ध्रुव की अटलता, सूर्य-चन्द्र की परिक्रमा और उसके चारों ओर घूमनेवाले तारों की चंचलता और ज्योतिर्मयता, षड्ऋतुओं का अनुक्रम—प्रकृति के शत-सहस्र रमणीय रूप-व्यापार देखकर मन में, हृदयमें, प्राण में एक अनिर्वचनीय रहस्यमय कुतूहल जाग उठता है। इन भेदभरे प्रश्नों के शत-शत भावों के बुद्बुद् हमारे मानस में तब भी उठते थे और आज भी उठते हैं।

ज्ञानियों ने आत्मा की इस चिर अतृप्त जिज्ञासा और रहस्य-मय कुतूहल को अपने ज्ञानानुसन्धान से बुझाने का प्रयास किया और भावुकों ने उन रहस्यमय प्रच्छन्न चेतन सूत्रों को खोज

निकाला जो इन सब व्यक्त रूपों के अन्तरंग को छूते हुए गये हैं : एक चिन्तन-मार्ग से बढ़े, दूसरे भावना-मार्ग से।

रहस्यान्वेषण : विविध दर्शन

मनीषियों ने अपनी जिज्ञासा को ज्ञान-गंभीर चिन्तन-साधना में परिणत किया और कवियों ने अपने कुतूहल की भावना को संकल्पात्मक अनुभूति में अधिष्ठित किया। ज्ञानी महर्षियों और तत्त्वचिन्तकों ने व्यक्त सृष्टि में अव्यक्त रूप से व्याप्त, जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, अग्नि-जल, ओषधि-वनस्पति पूर्ण विश्व-भुवन में अधिष्ठित, उस सत्चितरूप स्कम्भ, ब्रह्म, परम् तत्त्व, पुरुष का भावन किया और गाया—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।

ऋग्वेद : १०।१२१।१

उसने विराट् 'ब्रह्म' की, परमतत्त्व की स्तुति की, सूर्य-चन्द्र जिसके दो नेत्र हैं, मुख जिसका अग्निरूप है :

(१) यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम।

अथर्व वेद १०-७-३१

(२) यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

अथर्व वेद: १०-७-३३

उस-शक्ति के सर्वव्यापकत्व की धारणा हुई—'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्'—(पुरुषसूक्त: ऋग्वेद) और 'सर्वेश्वरवाद' की स्थापना हुई। 'उस' के निरूपण में ऋग्वेद ने कहा—वह एक है

अद्वितीय है,—जब कुछ भी सत् नहीं था तब भी एक वस्तु, एक शक्ति वायु की सहायता के बिना प्राणवान् थी। उससे परे (अन्य) कोई न था—'आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्च नास' (१०।१२६।२) इन्द्र, मित्र, वरुण अग्नि, यम देवता सब उसी के रूप हैं। वह एक ही है। परन्तु विद्वान् उसे भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा वदन्ति बहुधा अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।
(ऋग्वेद १।१६४।४६)

'मनुष्यों की मधुर वाणी में वही बोलता है, पक्षियों के कलरव में वही चहकता है, विकसित पुरुषों के रूप में वही हँसता है, प्रचण्ड गर्जन तथा तूफान में वही क्रोध-भाव को प्रकट करता है, आकाशमण्डल में चन्द्र-सूर्य-ताराओं को वही तत्तत् स्थानों पर स्थिर कर देता है।' इस प्रकार दृश्यमान भेदों में अभेद, अनेकताओं में एकता की प्रतिष्ठा हुई। उपनिषदों में इसी अभिन्नता का निरूपण किया गया है। भारतीय अध्यात्मवाद के इन स्रोतों से अनेक चिन्ताधाराएँ प्रसूत हुई हैं, सत् अद्वैत-तत्व (ब्रह्म) के स्वरूप, जीवन तथा जगत से उसके सम्बन्ध, ब्रह्म की प्राप्ति के साधनों का निरूपण इन उपनिषदों में है। प्राचीनतम छान्दोग्य उपनिषद् ने आत्मा और उस परमतत्व के ऐक्य की घोषणा की—'तत्सत्य स आत्मा तत्वमसि।' (६।८७) माण्डूक्य ने भी कहा—'अयमात्मा ब्रह्म'। कठ ने भी अभेद-भावन किया—'नेह नानास्ति किंचन'। बृहदारण्यक ने भेद-भावना का निषेध किया—'वह' अन्य है,

मैं अन्य हूँ, जो यह जानता है, वह नहीं जानता '—इसीलिए उसे जानने का एक ही मार्ग है: 'अहं ब्रह्मास्मि'।

'काव्य' और 'दर्शन'

भारतीय श्रुतियों का यह ज्ञान अनन्त अज्ञात प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न सूत्रों से विदेशों में भी पहुँचा था। ईरान के सूफियों ने 'अहं ब्रह्मास्मि' की ही छाया में कहा था—'अनल हक़'। उपनिषदों के तत्त्ववेत्ताओं की ज्ञान-साधना का एक ही लक्ष्य था—आत्मा की अपरोक्षानुभूति। 'भूमा' (परम तत्त्व) की प्राप्ति ही उनका साध्य थी। 'भूमा में ही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। जहाँ वह न दूसरे को देखता है, न दूसरे को सुनता है, न दूसरे को जानता है, वही 'भूमा' है। भूमा ही अमृत है, जो अल्प है वह मर्त्य है।' इस परम तत्त्व के साक्षात्कार में वह (साधक) अपने आत्मा से प्रेम करता है; अपने आत्मा से क्रीड़ा करता है, अपने आत्मा से संयोग करता है और अपने आत्मा में आनन्द-लीन हो जाता है। यह 'आत्मरति', 'आत्मक्रीड़ा' 'आत्ममिथुन', और 'आत्मानन्द' ही 'आत्मोपलब्धि' अथवा 'स्वाराज्य' है।* लौकिक भाषा में 'प्रिया से आलिंगित होने पर जैसे पुरुष को न बाह्य वस्तु का ध्यान रहता है, न आन्तरिक का, वैसे ही प्राज्ञ आत्मा (परमात्मतत्त्व) से आलिंगित होने पर यह जीव न तो बाह्य जानता है न आन्तर। उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।'$

परन्तु पार्थिव मनुष्य की लौकिक भाषा उस अचिन्त्य, परमात्म तत्त्व की प्राप्ति का आनन्द कैसे व्यक्त कर सकती है?

---

* बृहदारण्यक ४।३।२१　$ वही

आत्मवेत्ता स्वयम् ही उस आनन्द का भोक्ता है। वही उसे जानता है, समझता है; पर उस स्थिति में उसका समग्र वाणी-व्यापार बन्द हो जाता है और वह असीम आनन्द अनिर्वचनीय—गूँगे का गुड़ हो जाता है। यह स्वानुभूतिगम्य अपरोक्षानुभूति ही इन उपनिषदों के दर्शन का हार्द है—यही उनका 'रहस्य' वाद है।

अखण्ड चेतन से यह तादात्म्य ज्ञानियों का ज्ञेय रहा है—एक प्रज्ञात्मक साधना। जीव की चरम गति है उससे एकीकरण और एकीकरण का मार्ग है वरण—'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'। परमात्म तत्त्व को आत्मा का वरणीय मानने में ही उसकी उपासना—आराधना—साधना का बीज छिपा है। निर्मल अन्तःकरण द्वारा ध्यान और मन से वह वरणीय है—'सौम्य! तू उपनिषद् (ज्ञान) रूपी महास्त्र, धनुष, पर उपासना के तीक्ष्ण तीर का सन्धान करके उस (ब्रह्म) के भाव में अनुरक्त चित्त से उसे खींच कर उस अक्षर लक्ष्य का वेध कर!'* उस परमात्म-तत्त्व का अधिष्ठान अन्तःकरण के लोक में ही है—'य एषोऽन्त-'हृदय आकाशस्तस्मिं शेते।' इसलिए उसे 'घट' में ही डूबकर खोज लो और पा लो। चर्मचक्षुओं से वह अदृश्य-अलक्ष्य है क्योंकि जबतक 'पिय हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाव, कहाँ, केइ रोई!' —जायसी।

—मिलनानुभूति—

ज्ञानी कबीर ने तभी तो आँखों के भीतर आने के लिए साईं से निवेदन किया था—'नैना अन्तरि आव तू ज्यूँ हौ नैन झँपेऊँ।'

---

* धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्य तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि।

द्रष्टाओं और खोजियों ने उस अव्यक्त चेतन से जागर्ति, स्वप्न, सुषुप्ति की अवस्थाओं में अपने प्राणों का तादात्म्य किया था। वसिष्ठ ऋग्वेद में कहते हैं—'मैं और मेरे वरणीय देव दोनों जब नौका-विहार करते हुए समुद्र के मध्य में गये तो जल के ऊपर सुख-शोभापूर्वक उसके (लहरों के) झूले में झूले।'† 'मेरे प्रभु ने मुझे अपनी नाव में बैठने दिया और मुझे उनकी प्रार्थना में गाने का अपूर्व सम्मान दिया।' 'कब मैं अपने इस शरीर से उसकी स्तुति करूँगा, उससे साक्षात् सम्भाषण करूँगा और कब मैं उस वरणीय के हृदय के भीतर एक हो सकूँगा ?' ‖ रवींद्रनाथ भी अपने रहस्य के गीतों में ऐसी ही उद्भावनाएँ करते हैं :

(१) कहा था कि केवल हम-तुम एक नौका में बैठकर निरुद्देश्य विहार करते हुए देश-देश विचरते रहेंगे। उस अकूल समुद्र में मैं अकेला तुम्हारे कान में गान सुनाऊँगा और तुम मेरी वह रागिनी सुन-सुनकर चुपचाप मुसकराओगे ! (गीताञ्जलि; ४२)

(२) जहाँ अश्रवणीय गान नित्य हो रहे हैं उसी अतल-सभा में मैं अपने प्राणों की वीणा ले जाकर उसमें चिरंतन स्वर बाँधकर, क्रंदन का अंतिम गान गाकर उसी नीरव के चरणों में अपनी नीरव वीणा समर्पित कर दूँगा।'(गीतांजलि : १००)

---

† आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपा स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्।
(ऋग्वेद ७।८८।३)

‖ उत स्वया तन्वा ३ सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
ऋग्वेद ७।८६।२)

वल्लभाचार्य ने कहा था 'वह भगवान् लीला रचता है। लीला ही साधन है, लीला ही साध्य : न हि लीलायाः किंचित् प्रयोजनमस्ति लीलाया एव प्रयोजनत्वात्' (वल्लभ-दर्शन) और इस प्रकार उसका सगुण रूप देखा।

कबीर ने अपने साईं (अलख पुरुष) की इस प्रेम-लीला का स्वाद लिया है—

सतगुरु हो महाराज मो पै साईं रंग डारा!
सबद की चोट लगी मोरे मन में बेध गया तन सारा।
औषध मूल कछू नहि लागे का करै वेद विचारा।
सुर नर मुनि जन पीर औलिया कोइ न पावै पारा।
साहब कबीर सर्व रँग रँगिया सब रँग तें रंग न्यारा।

भीतर ही नहीं, बाहर (प्रकृति में) भी उन्हें एक अनिर्वचनीय आनन्द मिला—

गगन गरजि बरसै अमिय, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिस दमकै दामनी, भीजै दास कबीर।

मीरा ने भी इसी 'खुमारी' में गाया था—

'सुन्नि मँडल की सेझ में पौढ़े पिव प्यारी हो।'

—विरहानुभूति—

वसिष्ठ अपने प्रियतम के अतीत प्रेम की स्मृति में विह्वल होकर कहते हैं—हे मेरे प्रभु, हम दोनोंका वह पूर्व का अविच्छिन्न सख्य (प्रेम) भाव अब कहाँ है? उसे मैं व्यर्थ खोज रहा हूँ। *

रवींद्रनाथ भी कहते हैं—

जीवन को व्याकुल-विह्वल कर : गायन के स्वर में गल-गल कर
विरह तुम्हारा भर उठता है मेरे प्राणों में, तन-मन में! ‖

* ऋक् ७, ८८, ५ ‖ गीतांजलि (८४ से अनूदित

कबीर ने भी क्रन्दन किया था—

विरह बान जिहि लागिया, ओषधि लगत न ताहि।
सुसुकि-सुसुकि मरि मरि जियै उठै कराहि कराहि।

मीरा बिरह की सताई 'पुरब जनम का साथी' खोज रही है—

राति दिवस मोहि कल न परति है हीयो फटत मेरी छाती।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे पुरब जनम का साथी।

जायसी, कबीर, दादू, मीरा सभी निर्गुणी संतों ने उस प्रेमगम्य की प्रतीति, प्रीति और प्राप्ति की अनुभूतियों को शब्दों में बाँधा है।

—माधुर्य भाव—

द्वैतभाव की प्रीति की चरम परिणति 'प्रणय' में होती है। आत्मसमर्पण की उत्कटता और प्रेम की ऐकान्तिकता को पूर्ण अभिव्यक्ति देने के लिए आत्मा और परमात्मा में नारी और पुरुष-भाव का भावन हुआ। प्रणयी-प्रणयिनी के प्रणय-भाव को 'माधुर्य भाव' कहते हैं। 'माधुर्य भाव' मूलक इस प्रेम से ब्रह्म और जीव, असीम और ससीम के प्रेम सम्बन्धों में रमणीयता भर गई और कवि-भावना के प्रसार के लिए विस्तीर्ण भूमि भी मिल गई। औपनिषद चिन्तन की वह शुष्क प्रज्ञात्मकता हृदयानुभूति की सरस रागात्मकता में घुल गई। ज्ञेय ब्रह्म (परमात्म तत्व) को भाव प्रवण प्राणों ने प्रेय बना लिया: ज्ञानगम्य 'अरूप' प्रेमगम्य-अनुभूतिगम्य 'सरूप' हो गया। शून्य महल में बसने वाले 'अलख पुरुष' के उपासक कबीर ने अपनी इस प्रणयानुभूति को लौकिक प्रणय के रूपकों में लपेटकर लोक-हृदय तक पहुँचाया था। जायसी के सूफी हृदय ने उसे 'प्रणयिनी' के रूप में रंगा और

मीरा ने तो अपने नारी हृदय को उस परम पुरुष के प्राणों में ही घुला-मिला दिया। प्रत्येक रहस्यभावी कवि ने इस माधुर्य मूलक प्रेमानुभूति की अवतारणा अपने काव्य में की है। रहस्य-भावी कवि अपने अन्तर में - प्राणों में एक विरहिणी नारी को छिपाये रहता है—'आमार माझे जे आछे से गो कोनो विरहिनो नारी'। —रवीन्द्रनाथ

'रहस्यवाद' का रहस्य

भारतीय साहित्यालोचन के क्षेत्र में 'रहस्यवाद' शब्द प्रथम महायुद्ध से पुराना नहीं है। इस शब्द के अवतरण के लिए हमें अंग्रेजी भाषा के काव्य-साहित्य और समीक्षा का ऋणी होना चाहिए। यूरोपीय भावधारा का भारत-प्रवेश का द्वार बंगभूमि रही है; १९वीं शताब्दी में ईसाई मत से प्रभावित राजा राम-मोहनराय द्वारा 'ब्राह्मसमाज' का जन्म हुआ। रवींद्रनाथ, जो अपने कवि-जीवन के प्रभात में चडीदास के अवतार के रूपमें देखे गये, 'ब्राह्मसमाज' की छाया में पलकर ऐसे गीतों के स्रष्टा हुए जो 'ईश्वराभास' के 'लौकिक छाया-दृश्यों से पूर्ण थे। रवीन्द्र की लेखनी से जब परोक्ष सत्ता के आध्यात्मिक संकेत और उसके साथ प्रणय का आभास देनेवाली राशि-राशि गीतियाँ प्रस्फुट हुईं तो वंग मनीषियों ने उन्हें 'मिस्टिक' (रहस्यवादी) कहा। तब तक उन्होंने हिन्दी के मर्मी संत कबीर के मानस का अवगाहन नहीं किया था। उसके अन्तस् का 'मर्म' कवि को हृदय के इतना निकट लगा कि उनसे कबीर के सौ सर्वश्रेष्ठ पदों को अंग्रेजी में ढाले बिना न रहा गया और फलतः 'कबीर के गीतों का शतदल' (Hundred Poems of Kabir) प्रकट हुआ। उसकी

भूमिका में रवीन्द्रनाथ ने 'रहस्यवाद' का निरूपण किया। अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज़्म' को ही 'रहस्यवाद' अथवा 'छायावाद' नाम से व्यक्त किया गया। अंग्रेजी कवि येट्स ने नोबुल पुरस्कार विजयिनी 'गीताञ्जलि' के गीतों को 'मिस्टिक' कहा था, और संत फ्रांसिस और ब्लेक से कवि की समता दिखाई थी। ‖ यूरोप में मध्ययुग में फ्रांसिस, बर्नार्ड, थेरेसा आदि ईसाई संत 'मिस्टिक' कहलाते थे और उनका दर्शन 'मिस्टिसिज़्म'। इन मिस्टिक सन्तों और कवियों में अपने हृदय में ईश्वरीय सत्ता के अनन्य प्रेम, अपने जीवन में उसकी अनुभूति, जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और ईश्वर से तदाकार करने की साधना आदि साधना-गत विशेषताएँ थी।

आधुनिक 'रहस्यवाद' : एक भावनानुभूति

इन सब अवस्थाओं को हम मानसिक अवस्था कह सकते हैं—जो भक्ति का एक अंग है। भारत में भी उपनिषदों का रहस्य-परक तत्त्वज्ञान और कबीर का 'सुरति'-योग साधना का विषय है काव्य-रस का विषय नहीं, क्योंकि ये अलक्ष्य परमतत्त्व की खोज में सुदूर तक, 'पहुँचे हुए' थे और उसके 'रंग में रंगे', थे अथवा उसके 'प्रेम की पीर' से पीड़ित थे।

आज के कवि न तो कबीर की भाँति 'राम की बहुरिया' हैं न वे जायसी की भाँति 'प्रेम की पीर' से पीड़ित हैं। वे, चाहे वे रवींद्र-

‖ We go for a like voice to St. Francis and to William Blake who have seemed so alien in our violent history.—W. B. Yeats ('गीतांजलि' की भूमिका)

नाथ ही क्यों न हों, भावना से ही, प्रणयी परम तत्त्व की प्रणया-नुभूति करते हैं—अतः काव्यगत रहस्य-भावना को 'भावनात्मक रहस्यवाद' कहना चाहिए। 'रहस्यवाद' स्वयं अस्पष्टता का व्यञ्जक होने के कारण न कबीर पर घटित होता है, न जायसी पर। वे वस्तुत 'मर्मी' थे : आज के कवि वस्तुत. 'मर्मी' नहीं 'रहस्यवादी' ही हैं।

छायावाद-रहस्यवाद

अपने अन्तर्लोक में संचरण करते हुए कवि की भाव-प्रवणता ने इस सान्त सृष्टि के परे अनन्त की ओर जानेवाले अदृश्य पथ का अनुसन्धान किया। इस पथ की परिणति हुई आत्मा (जीव) और परमात्मा (ब्रह्म), ससीम और असीम के चिरन्तन अद्वैत की 'अनुभूति' में।

ससीम और असीम का अद्वैत उभयपक्षीय है। एक ओर कवि को प्रकृति में उस असीम चेतन की सत्ता अनुभूत होती है—फूल में उसकी हँसी, लहरों में उसका बाहुपाश, तारकों में उसकी पुतली, भ्रमरों में उसका गुंजन, ओस में उसका आँसू। कौतूहलभरी जिज्ञासा से वह इसकी प्रतीति करता है : दूसरी ओर कवि को आत्मा में विश्वात्मा (परमात्मा) की प्रणय-अनुभूति होती है। पहली स्थिति—'प्रकृति में असीम चेतन सत्ता की प्रतीति' अब 'छायावाद' की और दूसरी स्थिति-'आत्मा में विश्वात्मा की प्रणय अनुभूति' 'रहस्यवाद' की संज्ञा पागई है और प्रारंभ का 'छाया-वाद' अब 'रहस्यवाद' से इस अर्थ में भिन्न होगया है। एक व्यष्टिभावना है ; दूसरी समष्टि-भावना। एक एकांगी है, दूसरी सर्वांगीण, एक ऐकांशिक है, दूसरी ऐकान्तिक।

वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों-आरण्यकों और विविध दर्शनों द्वारा प्रतिपादित वह 'रहस्य' सन्तों और सूफियों की वाणियों, तुलसी और सूर की उक्तियों, दार्शनिकों, मनीषियों और साधुओं के सत्संग, पाठ-परायण, मनन-मन्थन तथा संस्कृति और संस्कारों के प्रकट-प्रच्छन्न मार्गों से होता हुआ मन-प्राण में बीज रूप में रहता है। आज का 'रहस्यवाद' अतः नवीन और विचित्र सृष्टि है। महादेवी वर्मा के शब्दों में 'उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय तथा हृदय को मस्तिष्क-मय बना सका।' *

'रहस्यवाद' के तत्त्व

काव्य का रहस्यवाद आत्मा में विश्वात्मा की प्रणयानुभूति है, अतः उस परम तत्व की सत्ता, विश्व और जीवन से उसके संबन्ध, और उसकी प्रेम-प्रतीति के रहस्यों का वह निदर्शन करता है।

—सत्ता-रहस्य—

रहस्य-भावना का जन्म ही कुतूहल और जिज्ञासा में हुआ था। रहस्यवादी भारतीय या अभारतीय 'ब्रह्मवाद' के अध्ययन-

* 'साध्य गीत' की भूमिका

अध्यवसाय से अथवा अपने प्रातिभ ज्ञान से चराचर विश्व के व्यक्त रूपों में प्रच्छन्न चेतन सत्ता को देखता है।

प्रकृति की अनेकरूपता और उस अनेकरूपता में एक अज्ञात आकर्षण और सम्मोहन ने मानव प्राणों को जिज्ञासु बना दिया है। 'जगती के अखिल चराचर ये मौन-मुग्ध किसके बल ?' की कुतूहलमयी जिज्ञासा उसके मानस में उठा करती है। 'कामायनी' के मनु की भाँति आज भी वह किन्हीं क्षणों में कुछ इसी प्रकार प्रश्न-शील हो उठता है—

> विश्वदेव, सविता या पूषा, सोम मरुत, चंचल पवमान;
> वरुण आदि सब घूम रहे हैं किसके शासन में अम्लान ?
>
> × × ×
>
> महानील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
> ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते से संधान !
> छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए;
> तृण, वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस से सिंचे हुए ? ‡

उस अज्ञात शक्ति का भावन 'अनन्त रमणीय' रूप में होता है परन्तु 'कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता।' कठ के मनीषी ने कहा था उसी चेतन तत्त्व से यह जगत् अनुप्राणित-विभासित है, * तभी रहस्यदर्शी कवि उस चित शक्ति का 'मौन निमंत्रण' नक्षत्र से, विद्युत से, फूल से, लहर से प्रकृति के 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' पदार्थ से पाता रहता है—

---

‡ 'कामायनी' (आशा) : प्रसाद

* 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'

(१) न जाने नक्षत्रों से कौन निमन्त्रण देता मुझको मौन ?
(२) न जाने तपक तडित् में कौन मुझे इंगित करता तब मौन !
(३) न जाने सौरभ के मिस कौन संदेशा मुझे भेजता मौन !
(४) उठा तब लहरों से कर कौन न जाने मुझे बुलाता मौन ! *

किसी अज्ञात शक्ति के क्रिया-व्यापार वह प्रकृति के सौंदर्य में पाता है—

ओसों का हँसता बालरूप यह किसका है छविमय विलास ?
विहगों के कण्ठों में स-मोद यह कौन भर रहा है मिठास ? ॥

ऐसा सौंदर्य का सौंदर्य, 'चिरसुन्दर' पुरुष, अपने रूप-माधुर्य का जाल रहस्यवादी के मन पर फैलाता है और जब-तब मधुर 'दूरागत झंकार' उसके प्राणों को इस ससीम भूमण्डल के पार बुलाती रहती है—

आज किसी के मसले तारों की वह दूरागत झंकार,*
मुझे बुलाती है सहमी सी झंझा के परदों के पार ।—'महादेवी'

तब 'अनन्त' और 'शून्य' में उस असीम, अलक्ष्य, अज्ञात की खोज करने प्राण (भावना और कल्पना के पंखों पर बैठकर) निकल पड़ते हैं :

खोज जिसकी वह है अज्ञात, शून्य वह है भेजा जिस देश,
लिये जाओ अनन्त के पार प्राणवाहक सूना सन्देश ।*—'महादेवी'

कभी वह अन्ततम के भीतर छिपा-छिपा साँसों में, अश्रु में, वेदना में, रागिनी उठाकर 'छिपा उर में कोई अनजान' की घोषणा करता रहता है—

---

* 'मौन निमंत्रण : पन्त ॥ 'चित्ररेखा' : रामकुमार वर्मा* 'नीहार'

खोज खोजकर साँस विकल भीतर आती जाती है,
पुतली के काले बादल में वर्षा सुख पाती है;
एक वेदना विद्युत-सी खिंच-खिचकर चुभ जाती है,
एक रागिनी चातक स्वर में सिहर सिहर गाती है।—'कुमार'

अथर्ववेद के

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्ष मुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धा नं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

के विराट् रूप का अवतारणा रहस्यदर्शी कवि का हृदय भी करता रहता है :

तुम्हारी वीणा है अनमोल,
हे विराट्! जिसके दो तूँबे ये भूगोल-खगोल!—मैथिलीशरण

— विश्व-रहस्य : जीवन-रहस्य —

'रहस्यवाद' श्रुतियों के अद्वैतवाद और आत्मवाद का रस-पुत्र है। अद्वैतवाद में एक ओर आत्मा और परमात्मा (विश्वात्मा) और दूसरी ओर ब्रह्म और जगत् की अद्वयता समाहित है : एक ओर वह 'तत्त्वमसि' की घोषणा करता है, दूसरी ओर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का निरूपण। इस प्रज्ञात्मक स्थापना का रागात्मक (भावना और अनुभूतिपरक) रूप ही 'रहस्यवाद' है।

श्रुतियों के तत्त्वचेता महर्षियों ने 'एको ऽहं बहु स्याम' को सृष्टि की मूल प्रेरणा माना है। 'पहले 'आत्मा' या 'इदम्' एक ही था। तब उससे अन्य और कुछ न था (आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचनमिषत्।)'[1] उसने इच्छा की कि मैं बहुत

---

[1] ऐतरेय ब्रा० १।१।१

बन जाऊं (सोऽकामयत बहु स्यां-प्रजायेय) और इसलिए उसने लोक -सृष्टि की (स इमाँल्लोकानसृजत)। रहस्यवादी कवि इन दार्शनिक तथ्यों को भावमयी भाषा में इस प्रकार कहेगा—

छिपाये थी कुहरे सी नींद काल का सीमा का विस्तार ;
एकता में अपनी अनजान समाया था सारा संसार।
मुझे उसकी है धुँधली याद बैठ जिस सूनेपन के कूल,
मुझे तुमने दी जीवन-बीन प्रेम शतदल का मैंने फूल।
उसी का मधु से सिक्त पराग और पहला वह सौरभ-भार
तुम्हारे छूते हो चुपचाप, होगया था जग में साकार,
और तारों पर उँगली फेर छेड़दी जो मैंने झंकार,
विश्व-प्रतिमा में उसने देव ! कर दिया जीवन का संचार।*

सृष्टि के पञ्चभूतों (पृथ्वी,जल, वायु, अग्नि (तेज) और आकाश, की उत्पत्ति भी उसी 'प्रेम-शतदल' से हुई :

होगया मधु से सिंधु अगाध, रेणु से वसुधा का अवतार;
हुआ सौरभ से नभ वपुमान और कम्पन से बही बयार;
उसी में घड़ियाँ पल अविराम पुलक से पाने लगे विकास,
दिवस-रजनी, तम और प्रकाश बन गये उसके श्वासोच्छ्वास ! *

इस प्रकार आत्मा दीप से आलोक की भाँति, समुद्र से लहर की भाँति, हृदय से स्पन्दन की भाँति, कलिका से मकरंद की भाँति, तार से झंकार की भाँति, विश्वात्मा से तत्त्वत: अभिन्न है :

(१) मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि-प्रकाश;
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों घन से तड़ित-विलास। (रश्मि)

---

* 'नीहार' : महादेवी

(२) धड़कनों से पूछता है क्या हृदयप हिचान ?
क्या कभी कलिका रही मकरन्द से अनजान ! (रश्मि)

आत्मा और परमात्मा में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का अद्वैत भी है—
ऊर्मियों में झूलता राकेश का आभास,
दूर होकर क्या नहीं है इन्दु के ही पास ? (रश्मि)

मानव-जीवन में ही नहीं वह महामहिम महाप्राण समस्त प्रकृति के अणु-परमाणु में व्याप्त है। ऐसी स्थिति रवींद्र के एक गीत में सुन्दर अभिव्यक्ति पा सकी है :

मेरी शिरा-शिरा में निशि-दिन बहता जो जीवन-तरंग बन,
वही प्राण उन्मुक्त आज है करने विश्व-दिग्विजय-साधन :
अनुपम छन्द-ताल-लय में वह है विश्व में कर रहा नर्तन—
धराधूलि के रोम-कूप से अविदित फूट-फूट वह जीवन
लक्ष लक्ष तृण-तृण में करता है अनुपम उल्लास-संचरण
पल्लव-फूलों में खिल-खिल उठता है वह जीवन-विकास बन
विश्व-व्याप्त है जो जीवन का और मरण का सिंधु चिरन्तन
करता वहाँ ज्वार-भाटों की अन्तहीन दोलों में दोलन
अंग-अंग यह महामहिम है उसी प्राण का पा आलिंगन
नाच रहा मेरी नस-नस में युग-युग का विराट् वह स्पन्दन ! *

मुण्डकोपनिषद् के 'तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्वि-स्फुलिङ्गाः।' के अनुसार जीव ब्रह्म का ही अंश है। जो चेतन शरीर में है वही विश्व में भी है— ('जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी-कबीर)। वही भिन्न होकर विश्वरूप बनता है। अतः आत्मा का व्यक्तरूप परमात्मतत्व का 'आत्म-विरह' ही

* 'गीताञ्जलि' (६७) से अनूदित

हुआ। इसी आत्म-विरह की माया को कवीन्द्र ने शब्दों में बाँधा है :

तुम निजको ही दूर कर
उसे बुलाते नाना स्वर भर,
आत्मविरह यह प्राण, तुम्हारा आज बन गया मेरी काया !

आत्म के ही मिलन-विरह, हास-रुदन आशाभय के स्वर से ब्रह्माण्ड गूँज उठा है :

विश्व-गगन है विरह-गान मय
रंजित-रुदन-हास,आशा-मय
यों ही तो तुमने यह मुझमें आज पराजय अपना पाया।

जीव और ब्रह्म (आत्मा परमात्मा) के अंग-अंग', उद्गत-उद्गम,अरूप और सरूप के सम्बन्ध 'तुम और मैं' में व्यञ्जित हुए हैं :

तुम मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा,
तुम नन्दन वन घन विटप और मैं सुख शीतल-तल-शाखा,
तुम प्राण और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया।

महादेवी भी इसी प्रकार की अनुभूति में कहती हैं :

(१) तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान !
(२) तुम अनत जलराशि उर्म्मि मैं चंचल सी अवदात,
(३) तुम परिचित ऋतुराज मूक मैं मधुश्री कोमलगात,
(४) स्वर-लहरी मैं मधुर स्वप्न की तुम निद्रा के तार ! (रश्मि)

यह द्वैत-भाव उस प्रणय-सम्बन्ध के लिए आधार हुआ जिसमें प्रेम की समग्र अनुभूतियाँ समाहित हैं। दाम्पत्य-भाव प्रेमभाव की उत्कटता, अनन्यता और ऐकान्तिकता के लिए एक-

मात्र आश्रय है, क्योंकि प्रेमभावना की चरम परिणति इसी में होती है।—

द्वैतभाव को तत्त्वचिन्तक ने अपनी सांकेतिक भाषा में स्वीकार किया—'दो साथ रहने और समान आख्यानवाले पक्षी एक ही वृक्ष पर बसते हैं। एक स्वादु फल खाता है, दूसरा भोग न करके केवल देखता रहता है।'—(मुण्डकोपनिषद्) उपनिषदों के मनीषियों की भाँति महादेवी ने कहा है कि वह नभ की भाँति अविकार था और उसी से यह विकार नानारूपमयी त्रिगुणात्मक सृष्टि हो गई। कैसे ?—

स्वर्णलता सी कब सुकुमार हुई उसमें इच्छा साकार,
उगल जिसने तिनरंगी तार रच लिया अपना ही संसार।

आत्मा के स्पन्दन, जागृति और तिरोभाव का एक दूसरा चित्र है—

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कणमें,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय मे मेरा पता पदचिन्ह जीवन में-
शाप है जो, बनगया वरदान बन्धन में;
कूल भी हूँ कूल-हीन प्रवाहिनी भी हूँ! —महादेवी

इसी वीन और रागिनी, नील घन और दामिनी तथा अधर और स्मित की चाँदनी में ही विश्वात्मा और आत्मा के 'रहस्य' का सत्य है। रवींद्र की भाषा में विश्व-ब्रह्माण्ड जीव और ब्रह्म की ही महा प्रणय-लीला है :

जुड़ा हुआ है आज गगन में मेरा और तुम्हारा मेला,
निकट-दूर यह बिखर पड़ी है मेरी और तुम्हारी खेला,

हम दोनों का प्रेम गुंजरण मत्त समीरण-भरा कुंजवन
दोनों के आने जाने में बीती सकल कल्प की बेला !*

महाकवि को विरह ही विश्व और प्रकृति के रूपों में दिखाई देता है—

राज रहा है देखो अहरह, विरह तुम्हारा भुवन-भुवन में
रूप विविध धर-धर कर सजता, गिरि-कानन में, सिन्धु गगन में !$

महादेवी ने भी अपने आँसुओं से लिखा—

विरह का जलजात जीवन विरह का जल जात ! —'नीरजा'

जीवन, जगत, जीव के रहस्य का निरूपण रहस्यवादी कवि अनेकविध करता है—जीवन अनन्त है, क्योंकि जीव और ब्रह्म का वियोग ही जीवन है। जीवन उसके मिलन-मार्ग की रेखा है। जन्म जन्मान्तरों से वह अनंत यात्री है। 'प्रथमा आलोक के रथ पर ग्रहों-तारों, लोक-लोकान्तरों में पद्चिह्न बनाता वह आया है।' १ विश्व-जीवन उस अज्ञात लीलामय की प्रणय-लीला है, जीवन-मरण में निखिल भुवन में वही चिरजन्मों का परिचित सबसे पहचान कराता है', जीवन उस प्रियतम का विरह-वियोग है, मरण उसका मिलन-संदेश। जीवन-जीवन में भटककर वह उसी प्रभु की खोज कर रहा है—यदि इस जीवन में, मिलन सका तो कभी न कभी होगा, पर ज्ञात नहीं। जीवन आत्मा का एक स्तनपान है, मृत्यु उस स्तन को हटाने की क्रिया और नवजीवन पुनः स्तन-दान है। आत्मा (प्राण) का पथ अनन्त है।

---

* 'गीताञ्जलि' (७१) से अनूदित $ 'गीताजलि' (८४) से अनूदित

—प्रेम-रहस्य—

आत्मा और विश्वात्मा में प्रेम की प्रतीति होते ही उसकी मधुरतम अनुभूतियाँ जीवन और प्रकृति के नाना रूप-व्यापारों के माध्यम से होने लगती हैं। विरह की अनुभूति के लिए आत्मा-परमात्मा में द्वैत की प्रतीति आवश्यक हो जाती है और मिलन की उत्कटता-उत्कंठा के लिए अद्वैत की प्रतीति। दृश्यमान् द्वैत के

द्वैत में अद्वैत-भाव

बिना प्रेम निराधार रहता है। इस प्रकार द्वैत-अद्वैत भाव के मधुर सम्मिश्रण से रहस्य-वादी की अभिव्यक्तियाँ ओतप्रोत रहती हैं। वह दृश्यमान् 'वियोग' से पीड़ित रहता है और अदृश्य 'मिलन' से अनुप्राणित। विरह में वह भावना करता है—

धरती-सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ। §

अपने प्रेम-सम्बन्धों में वह उसकी दूरी भी अनुभूत करता है, निकटता भी।

दूर होकर भी निकट तुम, निकट होकर भी अलक्षित।*

प्रेमानुभूति में आत्मा विश्व-प्रकृति में व्याप्त प्रियतम के रंग में रंग जाती है

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल। ¶

अणु-परमाणु में उसे उसीका प्रणय-माधुर्य बिखरा दिखाई देता है—

ज्योत्स्ना है, मानो अपने वे रजत स्वप्न सच होकर आ,
जुही झाँकती है समीर को लता-कुंज के द्वार द्वार में।—'कुमार'

---

§ जायसी : 'पदमावत' * सुधीन्द्र 'अमृतलेखा' ¶ कबीर

वह वासंती वनवीथियों में, श्रावणी मेघों के रथों में उसीके पद की चाप सुनता है,

कत कालेर फागुन दिने बनेर पथे से जे आसे, आसे, आसे।
कत श्रावण अन्धकारे मेघेर रथे से जे आसे, आसे, आसे। §

और उषा-सन्ध्या की क्रीड़ाओं में प्रणयी-प्रणयिनी की आँख-मिचौनी देखता है—

निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप आओगे,
इतना सजग कुतूहल, ठहरो यह न कभी बन पाओगे!
आह चूम लूं जिन चरणों को चॉप चॉप कर उन्हें नहीं—
दुख दो इतना अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही,
वसुधा चरण चिह्न सी बनकर यहीं पड़ी रह जावेगी
प्राची रज कुंकुम ले चाहे अपना भाल सजावेगी। (लहर : प्रसाद)

और समस्त जीवन मिलन का द्वार बन जाता है—

जब तुम आये हो एक बार।
तब मैंने जाना है, जीवन बन गया मिलन का एक द्वार।—'कुमार'

जन्म ही जिसका हुआ वियोग तुम्हारा ही हूँ तो उच्छ्वास' की प्रतीति से परन्तु, ज्योंही उस प्रेम की विपची में विरह की रागिनी बजती है तो जीवात्मा विरहिणी की भाँति आकुल-व्याकुल होकर उस प्रणय-पात्र के अनुसन्धान में, प्रेम की नाना अनुभूतियों के साथ, प्रयत्नशील हो उठती है।

स्मृति : उसे पीड़ित कर देती है, क्योंकि वह भी सुख स्मृति के समान विधुर है—

कैसे कहती हो सपना है अलि, उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आँसू उनके हास।

उस सोने के सपने को देखे कितने युग बीते!
आँखों के कोष हुए हैं मोती बरसाकर रीते!— १

स्वप्न : स्वप्नों में कबीर ने भी संचरण किया था और गाया था—
और महादेवी ने भी :

सपने में साईं मिले सोते लिया जगाय
आँखिन खोलूं डरपता मत सपना हो जाय।—।

रवि ठाकुर ने भी ऐसा ही स्वप्न देखा है :

आगमन उनका हुआ इस यामिनी!
वे पधारे पास बैठे, मैं न जागी कामिनी!

और महादेवी ने भी :

मिलन-वेला में अलस तू सोगई कुछ जागकर जब
फिर गया वह स्वप्न में मुस्कान अपनी आँक कर तब।—'नीरजा'

सन्देश : ज्योंही अपने चिर प्रियतम के विरह की प्रतीति उसे होती है जीवन के तारों में मदन-तीर की पीड़ा बज उठती है—

(१) जीवन-तंत्री के तार-तार
मदन-तीर की पीड़ा लेकर कसक रहे हैं बार बार।—'कुमार'

एक भी प्राण स्वयं मिलन का दूत संदेश-वाही दूत हो जाते हैं—

प्रिय, तुम्हारे प्राण से ही मिलन का सन्देश पाये,
आ-रहा हूँ मैं विरह में क्षीण, तन से डगमगाये!—सुधीन्द्र

समस्त ब्रह्माण्ड में आह्वान का स्वर गूँजता सुनाई देता है :

दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों के पास प्रियतर;
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर!—महादेवी

कभी-कभी तो यह अनुभूति इतनी तीव्र हो उठती है कि मरण भी प्रिय का सन्देशवाही दूत बनकर प्राणों का सखा बन जाता है।

यह मृत्यु-दूतिका प्रिय तेरी आई है मेरे द्वार,
ले तेरा मधुर निमंत्रण वह लेने आई इस पार।*—'रवींद्रनाथ'

महादेवी ने भी मृत्यु को 'प्राणों' का अंतिम 'पाहुन' कहकर अभिनंदित किया है।

अभिसार : कभी-कभी प्रिया अपने प्रेमी के अभिसार (प्रणय-यात्रा) में चल पड़ती है क्योंकि उसे 'प्रेमाभिसार' का सन्देश मिला है :

१. वेदना-दूती गाहिछे 'ओरे प्राण, तो मार लागि जागेन भगवान।
निशीथे घन अन्धकारे डाकेन तोरे प्रेमाभिसारे।

२. बाँध लेंगे क्या तुझे ये मोम के बन्धन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?

× × ×

तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना।
जाग तुझको दूर जाना।—'महादेवी'

स्वयं प्रियतम भी 'प्रेमविह्वल होकर', आँधी तूफान झेलकर भी, प्रिया से मिलने चल पड़ा है। ऐसी एक 'अभिसार कथा है—

प्राणसखा, हे प्राणाधार।
इस झड़ अंधड़ की रजनी में आज चले करने अभिसार।*

'गौरव था नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे— 'प्रसाद') से भी इसी की व्यंजना होती है। प्रेमियोंका यह अभिसार चिरन्तन है।

*'गीताञ्जलि' से अनुदित

(१) प्राण, मेरे मिलन-हित आते भला तुम कब थके !
चन्द्र-सूर्य भला तुम्हारे कब तुम्हें ढक रख सके ! ('गीताजलि)
(२) करुणामय की माता है तम के परदों में आनन !
(३) दूर से अज्ञात वासन्ती दिवस रथ चल चुका है ।

मिलनाकुलता—प्रिय से मिलने की उत्कण्ठा समस्त जीवन को तीर की भाँति उसी ओर खींचती लिये जाती हैं ; वह आकुलता ही तन्मयता बनगई है— और द्वैतभाव मिट गया है

आकुलता ही आज होगई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्यद्वैत क्या कैसी बाधा ।

इस स्थिति में जो आनंद है वह मिलने में कहाँ ? यही 'मिलन' है—

होगई आराध्यमय मैं विरह आराधना ले—'महादेवी'

मिलन : फिर भी एक अमिट कामना उसे प्रणयों के बीच, जन्म-जन्म के मधुर विराम-विश्रामों के साथ 'मिलन' की ओर बढ रही है । अनन्त मिलन का प्रत्यय उसे पन्थ पर अग्रसरकरता है । उस 'मिलन' का आभास है—

प्रणत लौ की आरती ले,
धूमरेखा स्वर्ण-अक्षत नील- कुमकुम वारती ले, ।
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह-उज्ज्वल भारती ले, ।
मिल अरे बढ़ आरहे यदि प्रलय-झंझावात ।—महादेवी

इस प्रकार के रहस्यवादी कवियों को नीचे लिखे वर्गों में देखा जा सकता है :

(१) प्रकृतिपूरक रहस्यवादी : जो प्रकृति में उस चिर सुन्दर चिर प्रियतम की प्रणयानुभूति पाते हैं । सुमित्रानन्दन पन्त, रामनरेश त्रिपाठी, रामकुमार वर्मा इस वर्ग में आते हैं ।

(२) प्रेमपरक रहस्यवादी : जो अपने प्रियतम के रंग में समस्त विश्व को रँगा पाते हैं जैसे जायसी, कबीर, और 'नवीन'।

(३) उपासक (भक्तिपरक) रहस्यवादी, जो प्रियतम को अपने भगवान् के रूप में मानकर उसकी व्यापक उपासना की साधना करते हैं मीरा, कबीर के पद. 'नवीन', मैथिली-शरण गुप्त, इस कोटि में आते हैं।

(४) दार्शनिक (चिंतनपरक) रहस्यवादी : 'निराला' और 'प्रसाद' इसी कोटि के रहस्यवादी हैं, रामकुमार वर्मा के कई गीत इसी प्रकार के हैं।

रहस्य-पथ के पथिक

हिन्दी कविता में इस नूतन रहस्य-भावना का जन्म हिन्दी समीक्षकों के लिए पहेली बना हुआ है। 'द्विवेदी-काल' में 'सरस्वती' 'इन्दु' और 'प्रतिभा' में मैथिलीशरण गुप्त, मुकुट-धर पाण्डेय, रायकृष्णदास और बद्रीनाथ भट्ट की लेखनी से रहस्य-परक गीत प्रकट होते रहते थे। यह एक संयोग है कि कवींद्र रवींद्र की 'गीतांजलि' के प्रथम प्रकाशन (१९१३ ई०) से पूर्व यह तिथि नहीं जाती, उपर्युक्त कवियों में से प्राय: सभी रवींद्र से प्रभावित अवश्य थे। इनकी लेखनी से रवींद्र के कई गीतों की छाया तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट हुई थी। राय-कृष्णदास की 'साधना' तो हिन्दी की 'गीतांजलि' ही कही जा सकती है। उसका प्रकाशन काल १९१९ है। रायकृष्णदास के

प्रसिद्ध रहस्यपरक गीत 'खुलाद्वार' (१९१३)†; 'संबन्ध' ('१६)† 'अहोभाग्य' ('१७)†, मैथिलीशरण गुप्त के 'नक्षत्रनिपात' ('१४) 'अनुरोध' ('१५), खेल ('१८)* 'रूप का जादू'‡ ('१८) और स्वयमागत ('१८)*, 'आय का उपयोग' ('१८)*, मुकुटधर पांडेय का 'मर्दित मान'‡ ('१८) बदरीनाथ भट्ट के कई गीत (१३) से ('१८) तक प्रकट हो चुके थे। जयशंकर 'प्रसाद'-रचित 'झरना' (प्रथम संस्करण; जो द्वितीय संस्करण से नितांत भिन्न था) १९१८ का प्रकाशन है। परन्तु उसमें उल्लेखनीय रहस्य-परक गीत कोई नहीं है। इसलिए मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास, मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट, ही इस पथ पर अग्रदूत ठहरते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त, तथा रायकृष्णदास दोनों की रहस्यभावना भारतीय भक्ति भावना पर अवलम्बित हैं। रहस्य-साधकों का लक्ष्य शास्त्र वर्णित भगवान् न थे, वह था 'मन में, प्राणमें और हृदय में आविष्कृत अद्वैत परमानन्द रूप'। रहस्यमार्गी इस परमानन्द-रूप तत्त्वकी प्राप्ति प्रणयानुभूति द्वारा करते हैं। हिन्दी का यह वैष्णव कवि उस ईश्वर की प्राप्ति के अनेक उपासना-मार्गों की ओर इंगित करता हुआ ही कह गया है :

> 'तेरे घर के द्वार बहुत हैं किसमें होकर आऊँ मैं ?
> सब द्वारों पर भीड़ मची है कैसे भीतर आऊँ मैं ?
>
> —'स्वयमागत' : गुप्त

धर्माचार्य उसकी प्राप्ति और दर्शन के 'पंथ' और द्वार बनाते रहें, परन्तु सच्चे भक्त के लिए ये सब अनियम हैं; उसे उन पर भट-

---

† दे० 'भावुक' (१९२८), * दे० 'सरस्वती' : १७१८ ‡ दे० 'सरस्वती' : १७१८

कने की आवश्यकता नहीं; वह अपने प्रभू का दर्शन अपनी कुटी में ही कर लेता है! यही 'रहस्य' यहाँ मूर्तिमान् हो गया है—

कुटी खोल भीतर जाता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ—
"अतिथि, कहो क्या लाऊँ मैं ?"—('स्वयमागत')

उसके विराट् रूप की भावना इस गीति में है :

तुम्हारी वीणा है अनमोल !
हैं विराट जिसके दो तूँबेये भूगोल-खगोल !

और उसके व्यापकत्व की अनुभूति कविने मानववादी भाव-भूमि में की है। बुभुक्षितों, पीड़ितों, दीनों-हीनों, गलितांगों, में वह उस को देखता है—

पीडित के निश्वास—अरे रे !
मै क्या जानूं कर थे तेरे ?
मुझ पर माया-मद था छाया,
बार बार तू आया, पर मैंने पहचान न पाया। —('परिचय')

भारतीय अध्यात्म की वैष्णव उपासना ही 'झंकार' में मुखरित है।

रहस्य-भावना में राय कृष्णदास गुप्त जी के सहचारी होकर भी प्रेम-लोक के सञ्चारी हैं।

नलिनी-मधुर-गन्ध से भीना पवन तुम्हें थपकी देकर
पैर बढ़ाने को उत्तेजित बार-बार करता प्रियवर !
उधर पपीहा बोल—बोलकर तुमसे करता है परिहास—
पहुँच द्वार तक,अब क्यों आगे किया न जाता पद विन्यास ?

में जो रहस्य-भावना की रमणीयता है वह इनकी अपनी देन है

फिर, इतना संकोच व्यर्थ क्यों ? बतलाओ जीवन-अवलम्ब !
खुला द्वार है, भीतर आओ, मानो कहा, करो न विलम्ब ('खुला द्वार')

इस प्रकार के रहस्य-परक गीतों के साथ रहस्य की धारा 'द्विवेदी-काल के सीमान्त तक आगई थी।

—सुमित्रानन्दन पन्त—

जिस समय द्विवेदीकालीन कवियों के 'भावुक' मन में 'रहस्य' की 'झंकार' उठ रही थी, 'सरस्वती' के मन्दिर में एक पार्वतीय गायक की वीणा झंकृत हो उठी। 'वीणा' पर ही रवींद्र के भाव-लोक की मुद्रा थी। 'मम जीवन की प्रमुदित प्रातः को 'अन्तरमम विकसित करो' की भाव-सन्तति कवि ने स्वयं माना है। उस अज्ञात शक्ति का पन्त ने प्रकृति की भाँति 'देवी' के रूप में भावन किया है। 'विनय' गीत (जिसे रचनाकाल के अनुरोध से 'वीणा' में होना था)

'मा, मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय-हार हो अश्रुकणों का यह उपहार;'

रवींद्र के

सोमार सोनार थालाय साजाब आज दुखेर अश्रुधार।
जननी गो गाँथव तोमार गलार मुक्ताहार।
(गीताजलि ८२)

गीत की छाया है। ठीक इसी समय की 'रचना' भी रवींद्र की 'गीतांजलि' की ही याचना है :

(वीणा) : बना मधुर मेरा भाषण !
वंशी से ही कर दे मेरे सरल प्राण औ सरस वचन,

रोम-रोम के छिद्रों से मा ! फूटे तेरा राग गहन ! (पन्त)

(गीतांजलि) जीवन लये यतन करि
यदि सरल बाँशि गड़ि,
आपन सुरे दिबे भरि
सकल छिद्र तार । (रवींद्र)

'वीणा' में ही कवि अपने प्राणप्रिय के लीला-विलास पर मुग्ध-लुब्ध होने लगा है—

अभी मैं बना रहा हूँ गीत अश्रु से एक एक लिख घात
किया करते हो जो दिनरात, बुझाते हो प्रदीप बन बात,
प्राण प्रिय होकर तुम विपरीत—निठुर वह भी कैसा अभिमान !

उर के भीतर अधिष्ठित वह सुन्दर अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि कर रहा है—

कौन हो तुम उर के भीतर,
बताऊँ मैं कैसे सुन्दर ?

उसकी सूक्ष्म चेतना को इस प्रकार कवि प्रकृति और अपने अन्तराल में जाग्रत और अनुभूत पाता है परन्तु जिज्ञासा और कौतूहल के माध्यम से—

(१) दीप-ज्योति में निज, किसका धन ढूँढ रहे हो कर तम भंग,
किस अज्ञाता के जीवन को ज्योतित होकर रहे पतंग ? (वीणा)

(२) छवि की चपल अंगुलियों से छू मेरे हृत्तन्त्री के तार
कौन आज यह मादक, अस्फुट राग कर रहा है गुंजार । (वीणा)

और 'पल्लव' में तो न जाने कौन 'नक्षत्रों', 'विद्युत्, 'लहरों' 'खद्योतों' 'प्रेम' और 'सौन्दर्य' से 'मौननिमंत्रण' देने लगा है :

देख वसुधा का यौवन-भार गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर-उर के से मृदु उद्गार कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने सौरभ के मिस कौन सदेशा मुझे भेजता मौन !

पन्त का रहस्यवाद प्रकृति-परक प्रकृत रहस्यवाद है। जगत् और जीवन के रमणीय रूप-व्यापारों के दर्शन से भावुक कवि के मन में सहज कुतूहल जागा। और उसने 'एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर' कवि की चेतना को तन्मय करके उसकी व्यञ्जनाओं को रहस्यात्मक रूप दे दिया है।

—जयशङ्कर 'प्रसाद'—

'झरना' के प्रकाशक ने 'निवेदन' किया है कि "जिस शैली की कविता को हिन्दी-साहित्य में आज दिन 'छायावाद' का नाम मिल रहा है, उसका प्रारम्भ प्रस्तुत संग्रह-द्वारा ही हुआ था।" इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते कि यह 'छायावाद' रहस्यवाद का पर्याय न होकर लाक्षणिक वक्रता और चित्रभाषा-शैली की अन्तर्भाव व्यंजना का पर्याय है। 'झरना' में 'किसी' पर मरने, छाती की जलन सहने, किसी के 'अपांग की धारा में तन-मन प्लावित हो जाने, रीझने-खीझने की गहरी बात छिपी हुई है। 'रहस्यभावना' उसे नहीं कहा जा सकता। 'झरना' में कवि के लौकिक 'प्रेम' और वेदना की ही व्यंजनाएँ है, बहिरंग में वे परोक्ष सत्ता के प्रति प्रणय-निवेदन सी जान पड़ती हैं, परन्तु अनुबन्ध देखने पर यह भ्रान्ति दूर हो जाती है। शून्य हृदय-मुक्ता और सूने घर को बसाने की चाह थी कि 'अतिथि आगया एक, नहीं पहचाना।' उसी ने धीरे-धीरे 'कर लिया।' परन्तु वह कौन था ?

उसको कहते 'प्रेम' अरे अब जाना।
लगे कठिन नख-रेख तभी पहचाना।

हाँ उसमें 'तुम' के प्रति एक निवेदन में धूमिल अपरोक्ष अनुभूति है—

मान है तुम्हारा, अभिमान है हमारा,
यह 'नहीं नहीं' करना भी 'हाँ' अतिरूप है।
घूँघट की ओट में छिपा है भला कैसे कभी,
फूटकर निखर बिखरता जो रूप है।
होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया,
रूप दिये देता हूँ पुराना छोड़ने के लिए;
तुम्हें भी न होता परितोष कभी मेरे जान,
बनते ही जाते हो रहस्य जोड़ने के लिए।

'झरना' कविताएँ प्रायः आत्मानुभूति-व्यंजक हैं: प्रेम और वेदना की टीस उन अनुभूतियों में सर्वोपरि हैं; व्यञ्जना की शैली में अवश्य परोक्ष सत्ता की ओर इङ्गित मिलता है—'इस हमारे और प्रिय के मिलन से स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा।'

कवि के यौवन-काल की मधुचर्या जिस प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्त हुई है उसमें रहस्यभावना के बीज हैं: 'पी! कहाँ', 'पाईबाग', प्रत्याशा 'अर्चना' 'खोलो द्वार', 'स्वप्न-लोक' 'दर्शन', रहस्यवाद के इसी सीमान्त पर हैं।

विरह-काव्य 'आँसू' में रहस्य की पूर्ण व्यञ्जना है: 'प्रसाद' जी की भाषा में रहस्यवाद में 'अपरोक्ष अनुभूति, सरसता तथा प्राकृतिक सौंदर्य द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का

साधन बनकर इसमें सम्मिलित है।' * तीनों का समन्वय 'आँसू' में है। 'आँसु' में शरीर इसी जगत् का है, किन्तु आत्मा उस जगत् की : 'प्रसाद' का कवि-हृदय किसी ऐहिक प्राणी के प्रेम से पीड़ित है। हो सकता है 'झरना' में फूटी हुई 'तव अपांग की धारा' ही, जो विरह में घनीभूत पीड़ा हो गई थी आँसू में बरस पड़ी हो—

'आँसू'

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई!

'आँसू' गीत का यह स्थायी (burthen) किसी शरीरी आलम्बन की ओर ही इङ्गित कर रहा है। (१) 'प्यासी मछली सी आँखें थीं विकल रूप के जल में', (२) 'शशिमुख पर घूँघट डाले अंचल में दीप छिपाये', (३) 'काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली', (४) 'अलबेली बाहुलता या तनुछवि-सर की नवलहरी', (५) 'परिरंभ-कुम्भ की मदिरा', (६) 'चुम्बन अंकित प्राची का पीला कपोल दिखलाता' और

नीरव मुरली कलरव चुप अलिकुल थे बन्द नलिन में
कालिन्दी बही प्रणय की इस तममय हृदय-पुलिन में

के विलास-चित्रखंडों में उसी मधुराका के रमणीय रूप की झाँकी ही तो है, परन्तु मधुचर्या को इन व्यञ्जनाओं की अपार्थिवता उसमें आध्यात्मिकता का अलौकिक रंग भर देती है। कवि की पीड़ा ने कवि-मानस में ही सीमित न रहकर पृथ्वी से स्वर्ग तक झलक कर समस्त सृष्टि को अप्लावित कर लिया है। वह दुख कभी उषा का मृदु पलकों में छलकता है और कभी उसका

* रहस्यवाद (काव्य और कला—तथा अन्य निबन्धः 'प्रसाद')

सुख सन्ध्या की घन अलकों में उलझता है। करुणा-कलित हृदय की असीम वेदना घुमड़ती, गर्जन करती, क्षितिज से टकराती है उसकी ज्वालामयी जलन आकाश के ज्योतिपिण्डों में स्फुलिंग बन कर बिखर पड़ी है, उसकी प्रणय-कामना तारों के दीपक जलाकर उन्हें स्वर्गंगा की धारा में तैराती है और विरही हृदय में 'गौरव था, नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे!' की आकुल अनुभूति होती है। दो पार्थिव शरीरों का मिलन 'महामिलन' बन जाता है—'कुछ शेष चिन्ह हैं केवल मेरे उस महामिलन के' परन्तु 'आँसू' के शरीर मिलन में जितनी मधुरिमा, मार्मिकता है, विरह में अलौकिक वक्रता (Turn) के कारण उतनी ही मांगलिक उदात्तता। विरह की ज्वाला जलधि और गगन में, पीड़ित मानवता में फैल फूटकर, 'विश्व-वेदना बाला' और अन्त में सार्वजनीन करुणा बन जाती है, इसीलिए कवि निशा से व्यथा को सहलादेने, बादलों से कल्याण की वर्षा करने और अपने मनसे कण-कण से जगती की व्यथाएँ चुनने की याचना करता है।

"चमकूँगा धूलकणों में सौरभ हो उड़ जाऊँगा।
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो ग्रह-पथ में टकराऊँगा।'

की आकुलता-व्याकुलता अन्त में जगती की कल्याणी करुणा बन जाती है। इस प्रकार आँसू में लौकिक विरह आध्यात्मिक (रहस्य-परक) छाया पा गया है।

लौकिक प्रणय और विरह में आध्यात्मिक छाया लाने की कला सूफी रहस्यवादी कवि जायसी की स्मृति सजग कर देती है। सूफी प्रियतम की प्रकृति (सृष्टि) में सर्वत्र देखा करता है: क्षितिज के पार अपने प्रियतम का मिलन-मन्दिर उसे बुलाता रहता है और वह 'कोलाहल की अवनी'

लहर

से दूर उसकी 'गहरी निश्छल प्रेमकथा' सुनने को आकुल हो जाता है—

ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक ! धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो; तज कोलाहल की अवनी रे !

कवि का अन्तर्जगत बहिर्जगत के साथ इतना तदाकार हो गया है कि उसके 'मानस की गहराई' में यह विश्व बना है परछाईं !' तब इस पृथ्वी के ऊपर फैला हुआ आकाश अपने प्रेमी की नीली आँख सा दिखाई देता है, जिसके ममता के आँसू तारा बन-बनकर ढुलक-ढुलक पड़ते हैं :

जहाँ साँझ सी जीवन छाया ढीलें अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो ताराओं की पाँति घनी रे !

'प्रसाद' का कवि 'प्रसाद' के दार्शनिक से प्रायः प्रेरणा पाता था। भारतीय तत्त्व ज्ञान में जीवात्मा की अनन्त यात्रा में मृत्यु उसकी वह गहरी निद्रा है जो जीवन-श्रम की थकान से आई है और उसका सुखद जागरण है नव जन्म। 'अमर जागरण उषा नयन से बिखराती हो ज्योति घनी रे !' में यही चिन्तन अन्तर्भूत है।

अपने प्रियतम विश्वात्मा की प्रेमक्रीड़ाओं को प्रकृति में प्रतिभासित देखने में उन्हें भूमण्डल के चारों ओर फैले गहन अन्धकार में अपने प्रणयी के अलकों की छाया दिखाई दी—'निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप आओगे ?' उषा उसके दबे पाँव चलने से तलवों में आई हुई लालिमा की भाँति छलक उठी—

आह, चूमलूँ जिन चरणों को चाँप चाँप कर उन्हें नहीं—
दुख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही।

अपनी इस विराट् की कल्पना में वसुधा उस प्रणयी का चरण चिन्ह, किरण उसकी अँगुलियाँ, क्षितिज उसका अधर, उषा की धूमिल आलोक उसका फिसलता हुआ परिधान बनकर एक 'आँख मिचौनी' की व्यञ्जना करते हैं—

देख न लूँ, इतनी ही तो है इच्छा ? लो सिर झुका हुआ।
कोमल किरन-उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ।
फिर कह दोगे, पहचानों तो मैं हूँ कौन बताओ तो!
किन्तु उन्हीं अधरों से पहिले उनकी हँसी दबाओ तो।

'झरना' से 'प्रसाद' की कविता का कैशोर और यौवन काल प्रारंभ हो जाता है। उसमें झरने का सा वेगवान आवेग-उद्वेग, अस्थिरता, और आत्म प्रकाशन की उत्कण्ठा; आँसू में विरह-वेदना की तीव्र अनुभूति, सौंदर्य-बोध की अपूर्व क्षमता और प्रेम, प्रीति, प्रणय की मार्मिक अनुभूतियाँ हैं। 'लहर' में 'आँसू' की सी प्रेम की उज्ज्वल मर्यादा है। 'कामायनी' में कवि की कल्याणी चेतना उनका तत्त्व ज्ञान और उनकी दार्शनिक चिन्ता को प्रकाश मिला है।

— महादेवी वर्मा : 'रहस्य'-साधिका —

सच्चे रहस्यवादी की अनुभूति श्रीमती महादेवी वर्मा को मिली है। 'रहस्यवाद' आत्मा में विश्वात्मा की प्रणयानुभूति है और उसकी एकांतिकता विश्वात्मा को आत्मा के, प्रिया के रूप में आत्म-समर्पण में ही है। महादेवी स्वयं एक नारी हैं, अतः आत्म-समर्पण की अनुभूतियाँ सत्य, सहज और सरस रूप में उन्हें मिली हैं।

कवयित्री का काव्य उनके प्राणों की करुण-कथा है : उनके काव्य-पथ के चरणों में उनकी आत्मा की रहस्य-साधना के चिह्न

हैं। कोई मार्मिक अभाव, कोई 'सूनापन', * करुणा और पीड़ा, अश्रु और अवसाद की विभूतियाँ लेकर उनके प्राणों के निकट आ बैठा है और उनकी अनुभूतियों को अपने तरल रंग में रँगता रहता है। कवयित्री ने 'रश्मि' में मुसकराते हुए कहा तो है: संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।' ‖ कदाचित् ऐसा ही हो, कदाचित न भी हो। अस्तु-उनकी प्राणों की वेदना का यह मंगलीकरण रहस्य-साधना के रूप में अवश्य हुआ है! वेदना पर महादेवी को गर्व है, वह उनका 'मेरा राज्य' है। अपने एकान्त ‡ के सूनेपन में प्राणों का दीप (पीड़ा के स्नेह से) जलानेवाली इस दीवानी के लिए आह और कसक ही सर्वस्व हैं—

'दुःखवाद'

अपने इन सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली
मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है-इन दीवानी चोटों में—'मेरा राज्य'

अपने जीवन को वे अपनी निर्मम 'प्रिय पीड़ा का राज्य' कहती हैं

चिन्ता क्या है निर्मम बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा!

और उसमें प्रियतम को, प्रियतम में पीड़ा को खोजती हैं:

---

* दे० 'अभिमान' और 'सूनापन' (नीहार) ‖ रश्मि: भूमिका ‡ दे० 'मेरा एकांत' (नीहार)

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें ढूँढूँगी पीड़ा ! 'उत्तर' : नीहार

इस पीड़ा और वेदना का माधुर्य महादेवी के प्राणों में उन्माद बन गया है— आँसू और अवसाद, वेदना और कसक, जलना और मिटना हो जिसकी विभूति है। उस विभूति के आगे अमरों का लोक भो नगण्य है—

वे सूने से नयन, नहीं जिसमें बनते आँसू-मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं जिसमें बेसुध पीड़ा सोती,

ऐसा तेरा लोक वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद !

क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार ! 'अधिकार'

अपने 'मिटने के अधिकार' (नश्वरता) पर यह ममता महादेवी का नारी हृदय ही सिखा सकता है। उनका 'नीहार' उनके उच्छ्वासों से ही निर्मित है : उस 'नीहार' में 'उस पार' की क्षीण झलक भी झलकती है और 'अनन्त की ओर' पहुँचने की चाह भी :

(१) 'विसर्जन ही है कर्णाधार; वही पहुँचा देगा उस पार !'
(२) लिए कैसे पीड़ा का भार देव आऊँ अनन्त की ओर।

'रश्मि' में रहस्यालोक की 'रश्मि' नीहार-जालसे बाहर फटती दिखाई देती है 'नीहार' का निश्चय 'फिर भी इस पार न आवे जो मेरा नाविक निर्मम, सपनों से बाँध डुबाना, मेरा छोटा सा जीवन, अटल है और उस निर्मम नाविक की रूपाभा समस्त प्रकृति में आजाती है और उसका मिलन-विरह प्रकृति-पुरुष का मिलन-

विरह बन जाता है—प्रेमी और प्रेयसी की यह अलौकिक मान और मनुहार कितनी रमणीय हैं !—

मेघों में विद्युत सी छवि उनकी बनकर मिट जाती
आँखों की चित्रपटी में जिसमें मैं आँक न पाऊँ।
वे आभा बन खो जाते शशि किरणों की उलझन में
जिसमें उनका कण कण में ढूंढूं पहचान न पाऊं
अलि कैसे उनको पाऊं ? (उलझन : 'रश्मि')

विरह-वेदना से वह अनन्त का वासी ही हृदयवासी हो जाता है। नीरजा में उसका करुण प्रभाव चिरतृप्त हो चुका है, वेदना से ही वह खोया हुआ उसे मिला है और वह बन्दी बनाने वाला स्वयं बन्दी बन गया है :

अनुसरण निश्वास मेरे कर रहे किसका निरन्तर ?
चूमने पदचिन्ह किसके लौटते यह श्वास फिर फिर ?
कौन बन्दी कर मुझे अब बँध गया अपनी विजय में ?
कौन तुम मेरे-हृदय में ? (नीरजा)

'नीरजा' 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' में रहस्य की सभी अनुभूतियाँ मुखर हुई हैं। रश्मि का चिन्तन इनमें घुलकर सरल—सरस होगया है। 'नीहार' और 'रश्मि' के अभाव की स्मृति सहज गति से विकसित हुई है। प्रणयानुभूति के उपादान हैं 'स्मृति', 'स्वप्न', 'स्पन्दन', 'शृंगार', 'प्रतीक्षा', 'अभिसार'।

स्मृति : कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?

क्यों अभाव छाये लेता विस्मृति सरिता के कूल ? (रश्मि)

स्वप्न : (१) तुम्हें बाँध पाती सपने में

साँसें कहती अमिट कहानी, पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय! मैं, लेती बाँध मुक्ति सौ सौ लघुतम बंधन अपने में! (नीरजा)

स्पन्दन : (२)　　पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर भर? (नीरजा)

(३) नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन!
रोम रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन!
(नीरजा)

श्रृंगार: रञ्जित करदे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग
यूथी की मीलित कलियों से अलि, दे मेरी कवरी सँवार। (सान्ध्यगीत)

प्रतीक्षा : कल्प युग व्यापी विरह को एक सिहरन में सँभाले।
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप बाले,
क्यों किसी के आगमन के शकुन स्पन्दन में मनाती। (दीपशिखा)

अभिसार :

'नीहार' का उच्छ्‌वास है-शून्यता से उत्पन्न अभाव, रश्मि की आभा है-प्रणय की पहचान, 'नीरजा' का पराग है-मिलन-संयोग का समारंभ। 'नीरजा' में कवयित्री की चरम अनुभूति है : भेद का दर्पण टूट गया है, 'मैं' 'तुम का भेद 'तुम' मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या?' में पर्यवसित हो गया है :

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-संगम,
तू असीम सीमा का भ्रम,
काया-छाया में रहस्यमय! प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या?

'मिलन' अभी नहीं है, प्रियतम का पथ आलोकित करने के लिये जीवन-दीपक अभी जलता जायगा : उसके क्षय में ही प्रिय की निकटता (मिलन) है :

तू जल जल जितना होता क्षय, वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाता तू उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल।

इसी मिटने की उत्कट चाह लिए वह प्राण-पिक को यह प्रत्यय दे रही है—

मैं मिटी निस्सीम प्रिय मे वह गया बँध लघु हृदय में;
अब विरह की रात को तू चिरमिलन का प्रात रे कह।

'सान्ध्य-गीत' वस्तुतः मिलन-रजनी के मधु-उत्साह का मंगलाचरण है: परन्तु मिलन प्रायः प्रतीक्षा की चरम सीमा चाहता है; मनुहारें थक जाती हैं पर 'क्यों वह प्रिय आता पार नहीं?' प्रेयसी, को 'उस पार रुका आलोक-यान, इस पार प्राण का कोलाहल!' की अनुभूति होती है। और तब मधुर सुधि का पाथेय लिये विरह-पन्थ को मिलनोत्सव बनाती हुई अभिसारिका जारही है। शून्य मंदिर में वह स्वयं प्रियतम की प्रतिमा बनगई है। पथ के शूलों को प्यार करती हुई वह राधा होगई है—'आकुलता ही आज होगई तन्मय राधा', । इसी तन्मयता में प्रणयिनी—पपीहे से पूछती है —'रे पपीहे पी कहाँ?' परंतु प्रिय के अदर्शन से मिलन तो विरह में एकाकार होगया है और 'विरह का घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी!' फिर भी अकेला विरही प्राण अँधेरे का संबल लिये चल रहा है, पर मिलन दूर है, विरह ही चिरतन हो गया है। 'सान्ध्यगीत' की महादेवी विरहिणी मीरा की स्मृति सजग कर देती है प्रिय-मिलन का पन्थ आदि-अन्त के छोर मिलाकर वृत्त बन जाता है और विरह की आराधना में विरहिणी आराध्य मय हो गई है। चलते चलते रात गहरी हो गई है। पाँवोमें छाले इतिहास बन गये हैं, क्षण भर बीच-बीच में सुधि झपकी भर लेती है, और फिर प्राण कूक उठते हैं में

'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है ?' अजेय आशा में उसके अरमान जल रहे हैं 'अन्त के तम में बुझे क्यों आदि के अरमान मेरे ?' अभिसारिका थककर सो जाती है, और तब आत्मा के अमृतत्व का उद्घोष करती हुई वह गा उठती है—

> चिर सजग आँखे उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना।
> जाग तुझको दूर जाना।

प्राणों का दीप जलाती हुई वह मिलन की साधिका है। इस साधना-आराधना पथ में दीप को जलाने-घुलाने की साध है, 'जब यह दीप थके तब आना' की मनुहार है। जलने और क्षार होने की साधना का उपहार प्रभात में ही मिलेगा। प्रिय-मिलन का पन्थ अपरिचित है, प्राण अकेला, परंतु साधिका को कोई पराजय, कोई मरण भी विषण्ण नहीं कर सकता : विरह में ही 'दुकेला पन' वह अनुभूत करती है—

> ले मिलेगा उर अचंचल वेदना जल स्वप्न-शतदल
> जान लो वह मिलन-एकाकी विरह में है दुकेला ! (दीप८२)

गति में सरिता का सा एक अजेय उन्माद, 'पथ बना उठे जिस ओर चरण' की अथकता, और प्राणों में मिलन की विकलता-विह्वलता है और चिर व्यथा का भार है, परंतु इसी 'प्रलय' में सृजन की दीपावली है—

> छाँह में उसकी गये आ शूल-फूल समीप
> ज्वाल का मोती सँभाले मोम की यह सीप
> सृजन के शत दीप थामे प्रलय-दीपाधार ! (दीप०४)

मरण के पर्व को दीपावली बनाती हुई वह प्रलय के पारावार में कूद पड़ी है। ज्वाला के तरलित सिंधुओं में, तुहिन जड़ित मेरुओं को भी वह पदचाप के सहारे पार कर सकेगी।

उसकी पलकों के मीलनोन्मीलन ही, विरह-मिलन, जीवन और मरण समाहित हो गये हैं, प्रलय में ही सृष्टि संदेश है—'आरही अविराम मिट मिट स्वजन और समीप सी मैं।' विरह के अनन्त पथ के पथिक को क्या पथ का अथ और क्या पथ की इति ?— 'अलि विरह के पंथ में मैं तो न इति-अथ मानती री।' 'नयन पथ से स्वप्न में मिल, प्यास में घुल, साध में खिल' जो प्राणों में खोजाता है, उसी को फिर न जाने कहाँ पाने के लिए ही— रहस्यवादी की आत्मा विकल है : यह साधना कभी सिद्धि नहीं बनती। अपने प्रियतम में मिलने की सिद्धिहीन साधना-साधन-साधना ही रहस्यवाद का महागीत है, क्योंकि रहस्यवाद अद्वैत से द्वैत में होता हुआ अद्वैत(एककिरण)तक नहीं, ऐक्य(अर्थात् मिलाप) की अनुभूति तक ही पहुँचता है। प्रणयानुभूति में ही प्रेम की जन्म से लेकर मरण तक की—अनुभूतियाँ आजाती हैं। एकीकरण के अनन्तर तो जीवन का काव्य ही समाप्त हो जाता है : उसमें अकल्पनीय आनन्द भले ही हो, जीवन की शत-सहस्र अनुभूतियों के चित्र नहीं। 'आत्मा में परमात्मा (विश्वात्मा) की प्रणयानुभूति' ही तो रहस्यवाद का संदेश है। पलकें झिप जायँगी पर यह कथा अशेष नहीं होगी : यह साधना का पथ ही 'निर्वाण है, प्रति पग शत वरदान है, यह गीत प्राणों के कानों में बारबार रहस्यवाद का सत्य दुहराता रहता है।

मैं कैसे उलझूँ इति-अथमें, गति मेरी संसृति है पथ में,
बनता है इतिहास मिलन का प्यास भरे अभिसार अकथ में,
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का।

—रामकुमार वर्मा—

रामकुमार का रहस्यवादी हृदय वेदना में डूबा हुआ है, क्योंकि वे जीवन का एक करुण प्रवास और आत्मा का विश्वात्मा-प्रियतम की विरहिणी के रूप में भावन करते हैं :

देव, मैं अब भी हूँ अज्ञात ?
एक स्वप्न बनगई तुम्हारे प्रेम-मिलन की बात !
तुमसे परिचित होकर भी मैं तुमसे इतनी दूर !
बढ़ना सीख-सीख कर मेरी आयु बनगई क्रूर !!
मेरी साँस कर रही मेरे जीवन पर आघात ! —चित्ररेखा

आत्मा और विश्वात्मा, ससीम और असीम, प्राण और महा प्राण के ऐक्य की कल्पनानुभूति में उनका 'आत्म, विराट् बनगया है, जीवन, विश्व, धरित्री 'अणु' हो गये हैं :

(१) आओ चुम्बन सी छोटी है यह जीवन की रात—चित्ररेखा,
(२) मेरे बहुपाश से वेष्ठित हो यह मृदुल शरीर,
चारों ओर स्वर्ग के होगा पृथ्वी का प्राचीर।
(३) सुरभि, तुम्हें उर में भरने को मैं फैलूँगा बन आकाश !—'चित्ररेखा'
(४) ये ग्रह, ये नक्षत्र कुछ नहीं नभ में हँसती है कुछ धूल !—'चंद्रकिरण'
(५) जग के पीछे क्यों बेकल है, ये साँसें बस दो चार लिये ?—'संकेत'

विरह की अनुभूति भी अत्यन्त धार्मिक है :

जीवन का यह बाण चुभा है मुझमें कैसा विषमय
क्या निकाल सकते हैं अंतिम क्षण के हाथ तुम्हारे ?—'संकेत,

जीव और ब्रह्म की प्रणय-भावना अद्वैत-भावना से ही निसृत है:

मेरे जीवन में एक बार तुम देखो तो अनुपम स्वरूप;
मैं तुममें प्रतिबिम्बित होऊँ, तुम मुझमें होना ओ अनूप !—'चंद्रकिरण'

जीव ब्रह्म की प्रभा और उसी में लय होने की साध लेकर ही विच्छिन्न हुआ है,

> धूम्र जिसके क्रोड़ में है उस अनल का हाथ हूँ मैं,
> नव प्रभा लेकर चला हूँ पर जलन के साथ हूँ मैं।
> सिद्धि पाकर भी तुम्हारी साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
> एक दीपक-किरण कण हूँ !—'चँद्रकिरण'

साधना के इन क्षणों में प्रिय का विरह—जीवन—ही मिलन का द्वार होजाता है—

> जब तुम आये हो एक बार
> तब मैंने जाना है, जीवन बन गया मिलन का एक द्वार ?

और तब जीवन एक अभिसार हो जाता है-:

> मैं इस जीवन में आया हूँ तुम से परिचय पाने ?

विरह में ही जब प्रियतम की मिलनानुभूति होती है तो वही मिलन से बढ़कर प्रेम हो जाता है:

> मैं तुम्हें सौ बार देखूँ !
> जिस विरह में तुम बसो उसमें मिलन के द्वार देखूँ।

विश्वात्मा की प्रणयानुभूति 'कुमार' की आत्मा में मूर्त्त हो उठी है। 'प्रेमी' (हरिकृष्ण) 'अनन्त के पथ' पर बड़ी दूर तक गये हैं :

> यह हृदय न जाने किसकी सुधि में बेसुध हो जाता ?
> छिप छिपकर कौन हृदय की वीणा के तार बजाता ?
> क्या जाने नीरव-नभ से किसका आमंत्रण आता ?
> उस लक्ष्य हीन पक्षी सा किस ओर उड़ा सा जाता ?
> इस 'महा-शून्य' मे किसका मैं अनुभव कर मुसकाती ?

मैं अपने ही कलरव को क्यों नही समझने पाती ?
नभ के 'पर्दे' के पीछे करता है कौन 'इशारे' ?
सहसा किसने जीवन के खोले हैं बंधन सारे ?
-'अनन्त के पथ पर'।

मोहन लाल महतो 'वियोगी' काव्य-जगत में रवींद्र का शिष्यत्व स्वीकार करते हुए अपने प्रियतम को 'निर्माल्य' भेंट करके 'एकवास' पर उसकी अर्चना के गीत गाते हैं। उन्होंने आत्मा के अनन्त पथ की ओर इगित किया है—

बीत गये कितने युग चलते किया न अब तक डेरा।
इसके बाद और भी कुछ है यही बता कर आशा।
लेने देती नही तनिक भी मन को कहीं बसेरा।

'एक भारतीय आत्मा' का रहस्यवाद वैष्णव-भक्ति की छाया । उनका आराध्य देश के साथ एकाकार होकर राष्ट्र दैवत बन गया है और वैष्णव हृदय होने से उसमें सगुण भक्ति का पुट आगया है :

(१) अरे अशेष। शेष की गोदी तेरा बने बिछौना-सा।
आ मेरे आराध्य ! खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौनासा।
(खीझमयीमनुहार)

'जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' के मन में किसी 'अनदेखे' के प्यार की अनुभूति हुई है—

किसके डर का मादक विषाद बन कर यह पावन-विरह-गान,
है तान रहा (करके विभोर मुझको) मुझपर माया-वितान ?
झुक झूम रहा मन चूम-चूम किस 'अनदेखे' का मधुर प्यार ?(अनुभूति)

'नवीन' की रहस्यभावना आराध्य के प्रति सख्य-भक्ति से प्रेरित

है। कभी सजन के ध्रुव चरणों की खोज में सुरति-वरण की साधना करते हैं :

नेत्र विस्फारित किये, जल-थल-असीमाकाश में नित—
फिर रहा हूँ खोजता कुछ चीज मैं व्याकुल, प्रवञ्चित;
भाल रेखा पर हुई है चिर विफलता-छाप अंकित,
विकल अन्वेषण-सुरति को कब करेंगे प्रिय, वरण वे !

कभी अलख के अभिषेक लिए विरह के गान लिखते हैं :

आज इस धूमिला घड़ी में कौन यह सन्देश लाया
साँझ आयी किंतु उनका राज-रथ अबतक न आया
क्या बताऊँ क्यों नहीं आये सजन रसखान ? रे कवि !

कबीर और रवींद्र की वाग्विभूति और भावधारा से वे प्रभावित हैं। 'दिनकर' को भी कभी-कभी-रण-क्षेत्र में अपना धूमिल-सा देश याद आजाता है। रवींद्र ने मरण को प्रिय-दूत, महादेवी ने 'प्राणों के अंतिम पाहुन' कहा, 'दिनकर' कहते हैं :

ठौर-ठौर हैं मरण-सरोवर बने पिया के मग में
धोकर श्रान्ति स्वस्थ हो पन्थी ! लग जा पुनः लगन में।

(मरण : रसवंती)

खंडहरो की धूल में कूकते हुए वे पल दो पल के लिए 'अगेय की ओर' भी कान लगा लेते हैं :

उछल-उछल बह रहा अगम की ओर अभय इन प्राणों का जल,
जन्म-मरण की युगल घाटियाँ रोक रहीं जिसका पथ निष्फल,
मैं जल-नाद श्रवण का चुप हूँ सोच रहा यह खड़ा पुलिन पर
है कुछ अर्थ,लक्ष्य इस रव का या 'कुल-कुल' 'कलकल' ध्वनि केवल

दृश्य-अदृश्य कौन सत् इनमें मैं या प्राण-प्रवाह चिरन्तन
गायक, गान, गेय से आगे मैं अगेय-स्वन का श्रोता मन ।

आज के तुमुल कोलाहल-कलह में हृदय की बात सुनने-सुनाने वाले कई कवि इस काल में अपनी वीणा पर रहस्य की रागिनी जब-तब छेड़ते रहते हैं। आरसीप्रसादसिंह उस प्रिय के प्यार को प्रकृति के रूप-व्यापारों में पाते हैं—

चूम जाता छू कपोलों को मदालस मधु समीरण
बाँध-कर भुज बन्धनों में चाँदनी गिनती विरह-क्षण
तैरता बन इंदु नभ में रूप वह साकार आया—
प्रिय तुम्हारा प्यार आया ! (आरसी)

रवींद्र ने कहा था—'मरण रे तुहु मम श्याम समान' : उसी स्वर में रागिनी छेड़ते हुए कवि ने गाया है : 'श्याम सम सुकुमार तुम प्रियतम मरण हे मरण मेरे' और भी—

मेरे मुख पर रख अवगुण्ठन : उसने किया गरल का चुम्बन;
खींच मुझे अपने प्राणों में उसने दो का भेद मिटाया !
आज मरण प्रियतम बन आया !

आत्मा के अनन्त पथ का भावन करता हुआ 'अमृतलेखा' का कवि कह उठा है—

कुञ्ज छायामय बने हैं जब कि पग-पग पर मनोरम,
लग नहीं सकता निमिष भर यह विषम पथ दीर्घ-दुर्गम,
पथ चिरन्तन को मिटा देंगे नहीं लघु-लघु चरण ये !
अमर जीवन को मिटा देंगे नहीं शतशत मरण ये !

जीवन उसी महान् अभिनेता का 'रास' है, उसी की श्वास जीवन

माया और मोक्ष के तत्त्वचिन्तक अधिक हैं, 'रहस्य' दर्शी कम। नाद-वेद ओंकार सार ब्रह्म और जीव के अनेक सबंधों को उन्होंने 'तुम और मैं' में गाया है। जीव ब्रह्म का अंश है' व्यक्त रूप है : जैसे भाव का भाषा, पेड़ का शाखा और ब्रह्म जीव का उद्गम भी है : जैसे सरिता का गिरि' कविता का उच्छ्वास :

(१) तुम तुंग हिमाचल-शृंग और मैं चंचल-गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मै कात कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शाति,
तुम सुरापान-घन-अन्धकार मैं हूँ मतवाली भ्राति।
(२) तुम मृदु मानस के भाव और, मैं मनोरंजिनी भाषा।
तुम नन्दन-वन-घन-विटप और मैं सुख-शीतल तल शाखा।
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदान्दन ब्रह्म मैं मनोमोहिनी माया! (परिमल)

ज्ञानियों का ब्रह्म ज्ञान द्वारा—'अहं ब्रह्मास्मि' के द्वारा ही प्राप्य है :

केवल मैं, केवल मैं, केवल मैं, केवल ज्ञान

जीव माया-विद्ध होकर ही भ्रान्त है :

फँसा माया में हूँ निरुपाय,
कहो फिर कैसे गति रुक जाय?

वही माया का बन्धन जीव का संसरण है :

बँधे जीवों की बन माया, फेरती फिरती हो दिन-रात,
दुःख-सुख के स्वर की काया, सुनाती है पूर्वश्रुत बात,
जीर्ण जीवन का दृढ़ संस्कार, चलाता फिर नूतन संसार!
(परिमल)

ब्रह्म के अमरत्व का यश होकर ही जीव अमर-सन्तान है : सच्चिदानन्दरूप है।

मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप

× ×

तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीनभाव,
कायरता—कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भी है नहीं पूरा यह विश्व भार—
जागो फिर एक बार! (परिमल)

ऊर्मि-घूर्णित तमरूप विश्वकूप में 'सत्य' के साधक को साधना पन्थ का निर्देश करते हुए 'निराला' (मत्स्य-बध के रूपक में) कहते हैं:

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार, बेधना तुझे मौन शर मार
चित्त के जल में चित्र निहार, कर्म का कार्मुक कर में धार,
मिलेगी कृष्णा-सिद्धि महान: खोजता उसे कहाँ नादान?
(गीतिका)

दार्शनिक तथ्यों की अवतारणा में अभिव्यञ्जना गूढ़ गहन हो जाती है प्रज्ञा तत्त्व के प्रभाव से 'निराला' की कविता कहीं-कहीं विरस हो गई है, परन्तु हृदयंगम करने पर वह हृदय को चमत्कृत कर देती है। तम (अज्ञान) के पार कौन है? के उत्तर में दार्शनिक 'निराला' ने कवि 'निराला' से कहा—सर्वव्यापी काल के चरणों के स्रोत ही जड़ जंगम के रूप में, सूक्ष्म से स्थूल रूप हो जाते हैं: आकाश ही स्थूलतर होता-होता अन्य चार तत्वों (जल,

वायु,, पृथ्वी, अग्नि) में परिणत हो गया है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और ध्वनि पाँच गुणों के कथन से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश–पञ्चभूतों की व्यञ्जना दार्शनिक 'निराला' की ही क्षमता है :

कौन तम के पार ? (रे, कह)

अखिल पल के स्रोत, जल-जग, गगन घन–घन धार—(रे कह)

गन्ध व्याकुल-कूल उर-सर,

लहर कच कर कमल-मुख पर,

हर्ष अलि हर स्पर्श-शर, सर गूँज बारम्बार! (गीतिका)

'तुलसीदास' कथाकाव्य की दार्शनिक भूमिका ही उसका गौरव है।

—जयशंकर 'प्रसाद'—

'प्रसाद' भारतीय दर्शन के भावक थे। अपनी काव्य भावना को दार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का सुफल है 'कामायनी' जग-जीवन में जो आज कोलाहल, द्वन्द्व और संघर्ष है वह मानव की व्यवसायात्मिका बुद्धि का प्रसाद है। उसने मनुष्य की मनुष्यता को प्रसार दिया है, परन्तु स्वर्णलता के जाल की भाँति उस प्रसार ने स्रष्टा को लपेट लिया है। संसार की प्रगति का बीज संघर्ष है परन्तु अन्तस् को शान्ति वहाँ उपलब्ध नहीं होती। उस शान्ति का एक ही मार्ग है 'श्रद्धा'। मनुष्य मानस की श्रद्धा द्वारा ही जागतिक द्वन्द्वों से अतीत उस चरम-परम 'आनन्द' की उपलब्धि कर सकेगा।

मानव ने इस द्विमुखी 'अहं' का जो विकास किया है वह आज विश्व के विकास में सुरक्षित है : इसी का आकलन 'प्रसाद' ने अपने महाकाव्य का लक्ष्य बनाया। आदि मानव 'मनु मानव-

मन के प्रतीकात्मक अर्थ में हमारी श्रुतियों में प्रतिष्ठित हैं : श्रद्धा और इड़ा का आकर्षण-विकर्षण इन्हें जीवन की उन सब भावनाओं-वृत्तिओं अनुभूतियाँ और परिस्थितियों में से ले जाता है जो आज के संसार में साकार हुई हैं। इसी रागात्मिका वृत्ति (श्रद्धा) और प्रज्ञात्मिका वृत्ति (इड़ा) के द्वन्द्व को आलेखित करने के उपलक्ष्य और विश्व-सभ्यता के विकास की अंतर्शक्ति का आभास देने के लिए 'कामायनी' का अवतरण हुआ। यही जीवन का दर्शनिक तत्त्व 'कामायनी' में अनुभूत है। मन का शाश्वत कल्याण ('मुक्ति') इसके श्रद्धा और बुद्धि के समन्वय-समरसता में है। नितान्त श्रद्धा-प्रेरित होकर वह विवेक-शून्य हो जाता है, बुद्धि संचालित होकर यंत्रवत् जड़; अतः दोनों का समन्वय ही श्रेय-मार्ग है। 'कामायनी' का यही प्रसाद—यही सन्देश है। मानव-सृष्टि की भूमिका की कथा मिल्टन ने 'पैरेडाइज् लॉस्ट' में कही : उससे आगे की कड़ी है 'कामायनी'। इतने चिरन्तन विषय का महान् चित्रण 'कामायनी' विश्व का एक महान् काव्य है। 'कामायनी' का हृदय है :—

> शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है।
> जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।

—सुमित्रानन्दन पन्त—

कोमल-कांत कवि पन्त पर भी भारतीय दर्शन की चिन्ता ने अपनी मुद्रा छोड़ी है। विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन का प्रसाद 'परिवर्तन' में है। भारतीय जीवन-दर्शन, पन्त की संमति मे किसी अज्ञात शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण मनुष्य को नियतिवादी बनाता है और 'नियतिवाद' उसे 'कर्मयोग' की दीक्षा

नहीं देता, अतः 'वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है।' जीवन को असार ही मानकर :—

एक सौ वर्ष नगर उपवन,-एक सौ वर्ष विजन वन।
यही तो है असार संसार, सृजन, सिंचन, संहार।—'पल्लव'

चलना जीवन के प्रति एक पराजित व्यक्ति का अभावात्मक (Negative) दृष्टिकोण है। इसी बीज का वटवृक्ष आज देशके महान् पराजय—'परतन्त्रता' में पा रहे हैं। पन्त पर इस चिन्ता-धारा की स्वस्थ प्रतिक्रिया हुई है और वे मार्क्स के भौतिक दर्शन से अमृतकण संचय करने की ओर बढ़े हैं। वैयक्तिक संघर्ष को छोड़ कर वे मनुष्य के सामूहिक संघर्ष से आकृष्ट हुए। 'पल्लव' 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' में पन्त की प्रतीति थी—'यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण, जीवन्मृत।' वह 'युगवाणी' में अजेय जीवन-विश्वास में परिणत होगई है और मानव के सांस्कृतिक मूल्यों की जोख-परख उन्होंने की है। 'युगवाणी' में वे मानव के समष्टिरूप समाज के भावी रूप का पूजन करते हैं :

(१) पशु जीवन के तम में : जीवन रूप मरण में
जागृत मानव!
सत्य बनाओ स्वप्नों को रच मानवता नव,
—हो नवयुग का भोर! —'मानव'

(२) युग-युग के छाया-भावों से त्रासित
मानव-प्रति मानव-मन हो न सशंकित।
मुक्त जहाँ मन की गति जीवन में रति।
भव-मानवता में जन-जीवन - परिणति। —'नव संस्कृति'

चिन्ताधारा में दबकर पन्त का कोमल काव्य गद्यवत् रूप होगया है :

आत्मा औ भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
वहिरन्तर, आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्त्व।
भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल,

—महादेवी वर्मा—

वैसे रहस्यवादी के लिए दार्शनिक और विचारक होने की अपेक्षा नहीं; 'रहस्यवाद में ज्ञान और विवेक के लिए कोई स्थान नहीं है। अनुभूति के लिए पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है।' परन्तु चिन्तन से कविता में अर्थगौरव का समावेश होता है, जो हमारी प्रज्ञा-वृत्ति को तृप्त करता है, कविता को ऐकांतिक मानसिक विलास नहीं रहने देता। महादेवी ने वेदान्त के ज्ञान से अपनी रचनाओं को आलोकित किया है। 'रश्मि' में उनके मन्थन का नवनीत हमें मिलता है। सृष्टि और स्रष्टा, जीव और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों और सम्बन्धित पारमार्थिक ज्ञान उसमें स्वादु रूप में प्रतिष्ठित है :

(१) स्वर्णलूता सी कब सुकुमार हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरंगे तार, बुन लिया अपना ही संसार ! *

(२) हुआ त्यों सूने पन का भान, प्रथम किसके उर में अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण ? ||

---

* यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्। मु० उ०

|| 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। ×× स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति।' स इमाल्लोकानसृजत। ऐतरेय उप०

और 'अमृतलेखा' में ऐंद्रिय प्रेम के प्रति वह सप्रश्न हो उठा है—

(१) क्यों प्रेय-श्रेय बनता वह आप जीवनों को?
क्यों चूमता अमर है इन मृत्तिका-कणों को? (अ० १२)

(२) प्रेम, तेरी आग में यह वासना का धूम क्यों है? (अ० ३४)

हिन्दी की कविता शनैः शनैः चिन्तन और विचार की ओर प्रगति कर रही है। जीवन के अधिक यथार्थ और ज्वलन्त प्रश्नों का यह आग्रह है। कविता का जन्म भावना में है, कल्पना उसकी 'गति' है, अनुभूति उसकी 'रति' है, किन्तु चिन्तन उसकी 'मति' है, और आज के 'बुद्धि युग' में वह 'मति' की उपेक्षा नहीं कर सकती।

प्रगतिशीलता और 'प्रगतिवाद'

छायावाद-रहस्यवाद की अन्तर्मुखी साधना के पश्चात् हिन्दी का कवि युग-धर्म और प्रतिक्रिया के नियम के आग्रह से बहिर्मुख हुआ। 'शून्य में निरुद्देश्य पंख फड़फड़ाने वाले देवदूत' को अंत में 'मृतिका की धरणी' पर उतरना पड़ता है। 'छायावाद के दिशाहीन शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरनेवाली तथा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करनेवाली तथा कल्पना को एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती मिल जाती है।' छायावादी कवि व्यक्ति (स्व) की अनिर्वचनीय वेदना और अनुभूति में 'विश्व' को रँगकर डुबा रहा था। उसके लिए आत्मवेदना ही सर्वोपरि, ऐकान्तिक वेदना थी। वह उसको विश्वव्यापी वेदना मानता था। विश्व-पीड़ा को वह अपनी न बना सका था। छायावादी कविको अपनी धड़कन के अतिरिक्त और कोई ध्वनि सुनने और देखने का अवकाश न था। उसे अपने ही हृदय में समस्त प्रकृति स्पन्दित दिखाई देती थी। उसने अपनी दिव्य दृष्टि से रवि-शशि-नक्षत्रों का नर्तन देखा, उसने उषा और संध्या की आभा और अरुणिमा देखी, उनके अंगों की सिहरन देखी, मेघों की आँखमिचौनी-कमल और कुमुद, शेफाली (हरसिंगार) और मौलश्री, जवाकुसुम और पाटल के प्रसून और जुही की कलियों की केलि-क्रीड़ा और लास-लीला देखी। उसने छाया और ज्योत्स्ना, इन्द्रधनुष और विद्युत् की रँगरेलियाँ देखीं, रजनी को तारों की जाली और फूलों को गजरे पहनाये, सरिताओं, तारिकाओं जुगनुओं, किरणों, लहरियों, भ्रमरों और मधुबयार के झोंकों में

और तितलियों, कोकिलों, भौरों, पपीहों, निर्झरों, झींगुरों, मेघों के स्पन्दन, गुंजन, कूजन, क्रन्दन, नर्तन, निस्वन और गर्जन में प्रेम और प्रणय के शत-शत सन्देश सुने। उसने अपनी सीमित पुतलियों पर त्रिलोकी के चित्र अंकित किये, पर इस पृथ्वी पर हो रहे एक विराट जीवन-स्पन्दन, विश्वव्यापी धड़कन, विराट हलचल और कोलाहल को न उसकी आँख देख पायी और न उनके कान सुन पाये।

रहस्यवादी कवि स्वप्नजीवी मानव अथवा आकाशचारी विहंगम की भाँति क्षितिज के पार 'अनन्त' की झाँकी देख आये, जहाँ सागर-लहरी और अम्बर प्रेमालाप करते हैं, जहाँ वसुधा विराट् पुरुष का चरण-चिह्न सी दिखाई देती है, जहाँ से जीवन काल के कपोलों पर ढुलका अश्रुकण-सा रह जाता है, जहाँ पहुँचने पर मनुष्य का प्राण बाँसुरी की एक फूँक और वीणा की एक झंकार की भाँति, उठ-उठकर विलीन होता दिखाई देता है भारतीय दार्शनिक की दृष्टि ने इस सापेक्ष जगत् को असत्य, मृषा और इससे परे किसी निरपेक्ष सत्य को देखा जो 'अवाक् मनस गोचर'—मन वाणी (और बुद्धि) से अगम्य —था। उसने दृश्य जगत् और ऐहिक जीवन को 'माया'-'छाया' मानकर उसके प्रति विराग का अंकुर उपजाया, जो अनेक दिशाओं में पलायनों में पल्लवित हुआ। शताब्दियों की भारतीय दासता का बीज भी इसी में छिपा हुआ है। जीवन-संघर्ष का हमारे लिए कोई मूल्य न रह गया था। जीवन की नश्वरता ही उसने देखी अमृतत्व नहीं (अमरता है जीवन का ह्रास, मृत्यु जीवन का चरम विकास !—महादेवी) रहस्यवादी कवि ने महा- शून्य में परिभ्रमित ज्योतिष्क पिण्डों को पुतलियों में बाँधा, शून्य को हृदय में समेटा, प्रलय का पालना

बनाया, मृत्यु-जीवन को जागृति का पुलिन बनाया। अपने इस विराट् रूप के भावन में वह धरती पर रेंगनेवाले कीटों को भूल गया।

'सियाराम मय सब जग जानी' के विश्वासी तुलसी संन्यासी होकर भी भव की पीड़ा से पीड़ित थे : 'एक तो कराल कलिकाल, सूलमूलत तामें कोढ़ में की खाज-सी सनीचरी है मीन की!' परन्तु अपने निभृत अन्तर्लोक में अपने प्रियतम से प्रेमालाप करनेवाले रहस्यवादी ने पृथ्वी के क्रोड़ में सिसक रहे नंगों-भूखों का रुदन-क्रंदन न सुना; समाधि तोड़कर जग-जीवन के 'सृजन-सिञ्चन-संहार' का उसने भावना न किया था। अभी तक हिंदी कविता ने अन्तर्जीवन की भावना का अनुसंधान किया था, वहिर्जीवन की समस्याओं का विश्लेषण नहीं। आत्मा के रहस्य खोजनेमें शरीरकी भूख-प्यास, व्यथा-वेदना की आह-कराह विश्व-वातावरण में भरती रही, परन्तु हमारा कवि हिमालय की भाँति जड़ीभूत, निश्चल निस्पन्द ध्यान-मग्न ही रहा। परन्तु अन्त में उसे अपनी आँख खोलनी पड़ी और उसे आसपास, पैरों के तले देखना पड़ा क्योंकि उसे जग-ज्वाला का आह्वान था—

'चलो मृत्तिका की धरणी पर स्वप्नमयी! ओ स्वर्विहारिणी।'

जीवन की ओर

स्वप्नजीवी कविता को युग-जीवन की ओर से आह्वान आता था

'व्योमकुञ्जों की परी अयि कल्पने, आ उतर हँसले जरा वनफूल में।'

युग-धर्म का आग्रह था कि हमारा कवि अपने चारों ओर के समाज-जीवन, राष्ट्र-जीवन और विश्व-जीवन को देखता, उसके हास-अश्रु, आशा-आकांक्षा, व्यथा-वेदना-प्यास को कविता में सजी-

वता देता और 'काव्य जीवन का मर्म है'—इसको चरितार्थ करता।

राष्ट्र-जीवन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दासता से हमारे जीवन में एक जघन्य जड़ता आगई थी। अंगों पर मूर्च्छा का अभिशाप था, मरण के धक्के से जीवन हतप्रभ और म्लान था, आत्म विमूढ़ और स्तंभित हो गई थी, चेतना निष्प्राण; कानों में रोदन-क्रंदन गूँज रहे थे, पीड़ितों का चीत्कार हमारे रक्त की रही-सही चेतना को कुंठित कर रहा था, सर्वनाश की गाज लकवे की भाँति शरीर पर गिर गई थी। कण-कण में संघर्षण की शक्तियाँ सजग हो रही थीं, विप्लव भूडोल बनता हुआ आगमन की सूचना दे रहा था और हमारी कविता जीवन से विच्छिन्न थी! हमारा कवि तंद्रिल-स्विप्नल मादकता की मधु छाया में सो रहा था!!

जीवन की पुकार निरन्तर कवि के कानों को नहीं, ही प्राणों को छू रही थी। 'वस्तु-जीवन की ओर' उन्मुख होकर वह अपने लीला-विलास से कुछ क्षण चुराकर मुहूर्त भर दृष्टि डाल लेता था और 'भिक्षुक' और 'विधवा' की मूर्तियाँ अपने काव्य-मंदिर में प्रतिष्ठित कर देता था। अपने 'जीवन-जागृति बल-बलिदान' के पथ पर जानेवाली राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की साधना आशा-निराशा, जय-पराजय के उत्थान-पतन के साथ चल ही रही थी।

अर्थनीति में शोषण-पीड़न और राजनीति में दमन और दलन किसी भी कवि का ध्यान खींचने के लिए पर्याप्त थे। यह नहीं कि हिन्दी के कवि जीवन के हाहाकार के प्रति उदासीन थे; अन्तर इतना ही रहा कि उसके प्रति एक जीवित समवेदना और उसे मिटाने का उत्कट आवेग अभी मुखरित नहीं हुआ था। परन्तु अब कवि की अन्तर्मुखता बाहर फैले हुए जन-जीवन में

डूबने के लिए छटपटाने लगी। स्वप्नलोक को छोड़कर कवि वस्तु-जगत में ही अब साहित्य का सत्य साकार देखने लगा।

दूर, क्षितिज के पार राष्ट्र राष्ट्र के रक्त से स्नान कर रहे थे। राजसूय यज्ञों में वहाँ नर-बलि का विधान हो रहा था। १६१६ में एक महायुद्ध की विभीषिका शांति में डूब गई थी। परन्तु १६३६ में नया विस्फोट करने के लिए। बीच की अवधि साम्राज्यवादी अभियानों-आक्रमणों का इतिहास है। अबीसीनिया-पोलैंड-काण्ड साम्राज्यवाद के हिन्स्र रूप 'फासिस्टवाद' (पाशववाद) की पैशाचिक लीला ही थे। रंग-भेद, रक्त-भेद, जाति-भेद, धर्म-भेद उसके काल-मुख थे। हिन्दी के कवि ने इसी सांस्कृतिक पतन पर व्यंग्य किया था :

विश्व-जीवन

> राइन-तट पर खिली सभ्यता हिटलर खड़ा कौन बोले ?
> सस्ता खून यहूदी का है नाज़ी निज स्वस्तिक धोले ?
>
> —'दिनकर'

राष्ट्र राष्ट्र के उत्पीड़न, मानव जाति के शोषण, हाहाकार और चीत्कार को उसने अपनी आग और अश्रु-भरी आँखों से देखा—

> दिक् दिक् में शस्त्रों की झनझन धन-पिशाच का भैरव नर्तन !
> दिशा-दिशा में कलुष-नीति हत्या-तृष्णा-पातक-आवर्तन !
> दलित हुए निर्बल सबलों से मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन !
> आह, सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित-शोषण !

'रेणुका' के कवि का 'हुंकार' दिगन्त में घुमड़ ही रहा था कि संसार पर दूसरे महायुद्ध के बादल उमड़ने-घुमड़ने लगे।

भारत की समस्या वस्तुतः विश्व-समस्या का ही एक अभिन्न अंग है। रुग्ण भारतीय समाज की चिकित्सा यदि भारत-राष्ट्र की स्वतन्त्रता में निहित है, तो भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता किसी

नवीन विश्व-रचना में। नई संस्कृति का अभ्युदय हुए बिना विश्वकल्याण स्वप्न था। अतः आज की समस्या निरी सामाजिक और राजनीतिक न होकर सांस्कृतिक है :

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत के सम्मुख।
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित।

—'युगवाणी'

और युगकी ज्वलन्त समस्याओं का आग्रह था कि साहित्य, कविता, कला नव-संस्कृति की प्राण-प्रतिष्ठा में अपना जीवन्त सहयोग दें। पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा में संसार की सम्पत्ति एक छोटे से वर्ग के अधिकार में है और पूँजीवादी शोषण धनी और निर्धन के बीच में खाई बना रहा है। समाज में सर्वहारी और सर्वहारा में भीषण संघर्ष है। क्षुधा-ग्रस्त, व्याधिग्रस्त, संघर्ष-त्रस्त खंडित-पीड़ित मानवता की ओर अब कवि ने दृष्टि-निक्षेप किया। चिरकाल से कविता का प्रेय-श्रेय वर्ग-विशेष और व्यक्ति-विशेष रहा अब उसने सामान्य मानवता को वरण किया। कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ के 'सबार पिछे, सबार निचे 'सबहारादेर माझे' की भाँति अब कविता ने अपना आराध्य सर्वहारा को बनाया।

कला और साहित्य का धर्म

आलोचक ने कहा — साहित्य जीवन की आलोचना ही नहीं है वह उसका निदर्शन भी है। मानव की सांस्कृतिक उन्नति का साधन भी है। साहित्य का पहला धर्म है जीवन को प्रगति देना : उसमें मंगल का विधान करना। साहित्य आज के मानव प्राणी की छठी इन्द्रिय-चेतना (Sense) हो गया है। साहित्य जीवन का दर्पण-मात्र ही नहीं है, वह उसका विधायक, नियामक और शास्ता भी है। उसका युग धर्म है समाज के वर्तमान वर्गभेद का

प्रत्याख्यान करते हुए उसके मूलोच्छेद की प्रेरणा और ज्वाला जगाना। इस अर्थ में साहित्य 'उपयोगितावाद' का एक अस्त्र होगया। साहित्य और कला न केवल मानवीय संघर्षों के इतिहास हैं परन्तु वे मानवीय भाग्य पर अधिकार करने के—व्यक्ति के सामाजिक जीवन को अधिक सुखमय, सन्तोषप्रद और स्वस्थ बनाने के—सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावोत्पादक साधन भी हैं। उपयोगितावादी के हाथ में आकर कला सामाजिक सन्तोष की उन्नततम स्थितियों को जन्म देने और विकसित करने का माध्यम ही नहीं, वरन् एक क्रान्तिकारी अस्त्र बन जाती है। 'उपयोगितावाद' की स्थापना ने पश्चिम की उक्ति 'समस्त महान कला और साहित्य प्रचार है' (All great art and literature is propaganda) से बल संचय किया है।

साहित्य जब जन-जीवन से विच्छिन्न हो जाता है तो वातावरण में यह स्वर उठने लगता है कि वह अपना धर्म भूल रहा है।

'जनतावाद'

हिन्दी कविता में भी हलचल हुई कि साहित्य का आराध्य क्या हो ? कस्मै देवाय ? का उत्तर अब युग ने दिया-'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'। साहित्य का आराध्य हो—जनता-जनार्दन। वह उसके मंगल का साधक हो, वह पीड़ित-शोषितकी शक्ति बने, पीड़क-शोषक की भक्ति नहीं। जब तक हमारे आसपास कोटि-कोटि मानव-प्राणी शारीरिक नग्नता और क्षुधा-तृषा से पीड़ित हैं तब तक साहित्यकार और कवि को कल्पना-विलास का परित्याग करना होगा, अपने तन-मन को जग-जीवन की ज्वाला में गलना होगा। संसार का यह चित्र चिरन्तन नहीं हो सकता कि कुछ लोग 'अति सुख' से पीड़ित हों, और कुछ 'अतिदुख' से। उसे तो साम्य और सर्वोदय से ही

जीवन की अनिष्ट विषमता को मिटाना होगा और वहाँ उस 'नव-संस्कृति' का स्वर्ग प्रतिष्ठित करना होगा, जिसकी रूपरेखा होगी—

> रूढ़ि रीतियाँ जहाँ न हों आराधित,
> श्रेणि-वर्ग में मानव नहीं विभाजित।
> धन-बल से हो जहाँ न जन-श्रम शोषण
> पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन।—'युगवाणी : पन्त

कविता को सब अर्थ में 'युगवाणी' बनना होगा।

—प्रगतिशील कविता-परम्परा—

इस मानसिक भाव-भूमिका में हिन्दी कविता में 'प्रगतिवाद' की धारा आई। जीवन को सर्वांगीण उन्नति की ओर गति देनेवाली कविता 'प्रगतिशील' की संज्ञा पाती है। इस प्रगतिशील कविता-परम्परा का आरम्भ हिन्दी में कबीर से गिना गया क्योंकि जनता की हार्दिकता उनकी वाणी में मुखर हुई थी। तुलसीदास दूसरी प्रगतिशील शक्ति थे, जिन्होंने निराशाग्रस्त, पीड़ित जन-जीवन को आशा का सन्देश दिया। रीतियुगीन कविता को लाँघकर यह सूत्र क्रांति-युग में भारतेन्दु की कविता में प्रकट हुआ। देश की पराधीनता और शोषण के विरोध में उन्होंने स्वर उठाया और हिंदी कविता में व्यापक समाज-भावना और राष्ट्र-भावना आई। द्विवेदी-काल में यही भावना विकसित हुई : मैथिलीशरण, 'हरिऔध' रामनरेश त्रिपाठी, 'एक भारतीय आत्मा' 'दीन', 'सनेही', अपने समय में प्रगतिशील कवि थे। 'नवीन', दिनकर', सुभद्राकुमारी, सोहनलाल राष्ट्रीय भावना के जागरूक कवि होने के नाते प्रगतिशीलता के प्रतिनिधि ही कहे

आयेंगे। 'निराला', पन्त और 'प्रसाद' की कविता में भी प्रगतिशीलता के कीटाणु हैं। जन-जीवन का स्पर्श कविता में 'प्रगति' की कसौटी है।

इस प्रकार छायावादी कविता के उपरान्त जो नवीन विचार-धारा आई उसका सूत्र पिछले युगों की प्रगति से जोड़कर आज के कवि की प्रगतिशीलता का भी विधि-विधान किया गया। परन्तु यहीं 'प्रगति' की एक निर्दिष्ट परिभाषा बनी। जिन लोगों ने 'प्रगतिवाद' को जन्म दिया उनकी अपनी विशिष्ट रीति-नीति और विचार-धारा है। १६३५ के नवम्बर की एक सन्ध्या में लंदन में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का जन्म हुआ। पेरिसमें उसी वर्ष प्रथम 'प्रगतिशीलता लेखक सम्मेलन' हुआ और भारत में पहला 'प्रगतिशील लेखक सम्मेलन' १६३६ में लखनऊ में प्रेमचंद के और दूसरा कलकत्ता में रवींद्रनाथ ठाकुर के सभापतित्व में हुआ। तब से संघ, उसका शिविर और उसकी सेना हिन्दी कविता में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने में प्रयत्नशील हैं।

प्रगतिशीलता और 'प्रगतिवाद

प्रगतिवाद : एक जीवन-दर्शन

'आधुनिक प्रगतिवाद ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन समाज की सामूहिक प्रगति के सिद्धांतों का पक्षपाती है। वह एक रूढ़ राजनैतिक शब्द है।

इस युग में शिक्षित वर्ग को नया जीवन-दर्शन दिया है कार्ल मार्क्स ने। भारतीय श्रुतियों के मनीषियों ने सृष्टि को किसी अलौकिक शाश्वत सत्ता के लीलाक्षेत्र, छाया (असार माया) आदि के रूप में देखा और तदनुरूप नैतिक, धार्मिक

और सामाजिक आदर्शों को रूप दिया। परन्तु मार्क्स ने विश्व को एक स्वयंगतिशील द्वन्द्वमूलक भूतपुंज के रूप में देखा।

— सृष्टि और विश्व-दर्शन —

हीगल ने द्वन्द्व से 'चैतन्य'-रूप सृष्टि का उद्भव माना था। वह त्रिगुणातीत ब्रह्म को ही 'परम कारण', 'विचार' (Idea) या 'ईश्वर' के रूप में अन्तिम सत्य मानता था पर मार्क्स ने इस भूत-जगत को निरपेक्ष वस्तु माना। संसार के घटना-दृश्य गतिशील पदार्थ के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। ऐंगिल्स ने इसी की व्याख्या में कहा— न्यूनतम वस्तु से लेकर दीर्घतम

परिवर्तन और प्रगति

वस्तु तक, बालू के कण से लेकर ब्रह्मांड तक सम्पूर्ण जगत में कुछ नवीन रूप हो रहा है और कुछ पुराना नष्ट हो रहा है। सारी प्रकृति गतिशील और परिवर्तनशील है, ‡ सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में विरोधी तत्त्व निहित हैं, जिनके निरन्तर द्वन्द्व (संघर्ष) से गति, प्रगति, उन्नति और अवनति का क्रम घटित होता है।

संघर्ष और विकास

परस्पर-विरोधी तत्त्वों अथवा शक्तियों का संघर्ष ही वस्तु (पदार्थ) के विकास का कारण है। यही 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' है। इसी चिन्ताधारा से समाज के अध्ययन ने बतलाया कि समाज में अर्थ-सम्बन्धों ने वर्ग-वर्ग में

---

‡ डायलेक्टिक ऑव नेचर; ऐंगिल्स; दार्शनिक हेरक्टलिस के अनुसार 'संसार किसी ईश्वर या मनुष्य की कृति नहीं है। वह स गतिशील पदार्थ की ऐसी जीवित लौ है और रहेगी जो अंशतः उत्थान और अंशतः पतन के पथ पर है।'

द्वन्द्व घटित किया है : इतिहास के अनेक युग इसी अर्थ-सम्बन्ध मूलक सामाजिक प्रक्रिया और प्रतिक्रिया के परिणाम हैं। 'अर्थ' (जीवनोपाय का साधन) ही समाज के रूप और विधान का नियामक है। उत्पादन विधी के रूप और प्रकार में परिवर्तन आने से ही विश्व-सभ्यता के भिन्न भिन्न युग आये। समाज की रीति-नीति धर्म और दर्शन, कला और साहित्य को युग-विशेष की उत्पादन-विधि ने ही रूप दिया। 'आदिम समाजवाद' से दास-प्रथा समाज-विकास का चरण थी, उसमें उन्नत अवस्था के बीज थे। दास-प्रथा धीरे-धीरे सामंतवाद के रूप में पर्यवसित हुई और सामन्तवाद ने पूँजीवाद में अपने को मिटाया। आज पूँजीवाद साम्राज्यवाद-फ़ासिस्टवाद के साथ मरणासन्न है। इस प्रकार विश्व-इतिहास की प्रगति की अगली कड़ी होगी सर्वहारावर्ग का अधिनायपकत्व और अन्त में वर्गहीन समाज की स्थापना। उस स्थित को लाने के लियेसाहित्य और कला को अपना सक्रिय योग देना है। इसी स्वधर्म का पालन करने में वह 'प्रगतिशील' है।

'प्रगतिवाद' के परमाणु

'प्रगतिवाद' साहित्य में निम्नलिखित नैतिक-सामाजिक-राजनीतिक मान्यताएँ लेकर आया है —

(१) साहित्य और कला सर्वहारा (शोषित) वर्ग का पक्ष ग्रहण करें वे उनके जीवनोत्थान के साधन-शस्त्र बनें।

(२) पतनोन्मुख पूँजीवाद संस्कृति का शत्रु है इसलिए उसे उसके समस्त परिवार—साम्राज्यवाद और पाशववाद (Fascism)—के साथ निःशेष किया जाय।

(३) व्यक्ति द्वारा व्यक्ति, और वर्ग-द्वारा वर्ग के अमानवीय

शोषण को मिटाने के लिए उनके वर्ग-संघर्ष को, वर्ग-विद्रोह को चित्रित, उत्तेजित और प्रवर्तित किया जाय।

(४) जन-साहित्य और जन-कला द्वारा जन-सम्पर्क और जनसंस्कृति का निर्माण करके सामाजिक क्रान्ति की भूमिका प्रस्तुत हो।

इस प्रकार 'प्रगतिवाद' साहित्य में मार्क्सवाद की संतति है। मार्क्सवादी 'क्रांति' और मार्क्सवादी आदर्श समाज उसके धर्म और ध्येय हैं।

जन-शोषण का विरोध

आज का मरणोन्मुख पूँजीवाद जन-शोषण पर जीवित है। उसी ने अपने पोषण के लिए साम्राज्यवाद और पाशववाद (Fascism) को जन्म दिया है। प्रगतिवादी कविता में समाज के शोषित वर्ग—नारी, कृषक और श्रमिक (मजदूर)—का चित्रण ही नहीं है, उनके शोषण का लोमहर्षक रूप वैषम्य के रंगों में दिखाया गया है। अभी तक जिस हिंदी कविता में राजा-रानी भूमिपति, धनपति, नगर-प्रासाद आदि शोषक पक्ष की प्रशस्ति थी, उस में अब किसान और मजदूर, हल और कुदाली, हँसिया और हथौड़ा दिखाई देने लगे हैं। समाज के इन शोषित वर्गों की ओर ध्यान तो पहले भी था। गुप्त-बंधुओं ने किसानों के जीवन में कविता को पहुँचाया था। 'निराला' ने पेट-पीठ दोनों को मिलाये मुट्ठी भर दाने के लिए अपनी फटी-पुरानी झोली का मुँह फैलाये आते हुए 'भिक्षुक' और इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई श्रमिका की ओर इंगित किया था। 'हुंकार' के कवि ने सामाजिक शोषण का विद्रोही बनकर ही 'विपथगा' क्रान्ति की आगमनी बजाई

कृषकों के चीत्कार से उसके कलेजे ने खून के आँसू टपकाये, श्रमिकों के रक्त-मांस पर उठे हुए वैभव के प्रासादों पर आक्रमण किया और बच्चों की 'दूध' 'दूध' की पुकार सुनकर दूध खोजने के लिए स्वर्ग पर अभियान किया था, क्योंकि वैभव [illegible] मूल में कृषक-मजदूर वर्ग का शोषण देखकर वह क्षुब्ध हुआ था—

> आहें उठी दीन कृषकों की मजदूरों की तड़प पुकारें,
> भगी गरीबी के लोहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें †

'नवीन' ने जूठे पत्ते चाटनेवाले नर को देखकर जगपति का टटुआ घोंटने का संकल्प किया और उस मानव को आत्मबोध की प्रेरणा दी—

> ओ भिखमंगे, अरे पतित तू, ओ मज़लूम अरे चिरदो-हित,
> तू अखण्ड भाण्डार शक्ति का जाग अरे निद्रा-सम्मोहित;
> प्राणों को तड़पानेवाली हुंकारों से जल-थल भर दे,
> अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित फलीता धर दे ! *

भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' कविता में शोषक वर्ग पर तीव्र रोष-आक्रोश ध्वनित हुआ है और शोषित पर दया। समाज और विश्व के जीवन की ऊपर से मधुर दिखाई देनेवाली तह के नीचे जो कटुता, बाहर से स्वर्गिक दिखाई देनेवाले रूप-विलास के भीतर जो नारकीय कुरूपता और नगर के वैभव के अट्टहास के पीछे गाँवों का जो आर्त्त रुदन-क्रन्दन छिपा है उसे कवि देखता है : उस वैषम्य को सीधी-टेढ़ी रेखाओं में चित्रित करता है, उसपर कभी आँसू टपकाता है और कभी

† 'रेणुका' (दिनकर) * 'जूठे पत्ते' ('नवीन')।

उसमें चिनगारी लगाता है, कभी उनसे व्यंग्यभरे प्रश्न करता है और कभी उनपर तीव्र-तीक्ष्ण प्रहार करता है :

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे कुछ पाँच-कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों से हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर,
तुम सुख सुषमा के लाल तुम्हारा है विशाल वैभव, विवेक,
तुमने देखी हैं मानभरी उच्छृंखल सुन्दरियाँ अनेक

× × ×

तुमने देखा है क्या बोलो, हिलता- डुलता कंकाल एक !*

पृथ्वी पर एक ओर जल पर जहाज, अम्बर पर विमान और स्थल पर मोटरें, बसें, ट्राम हैं, उसी धरती के एक शून्य निर्जन अंचल में गति में सदियों की जड़ता और स्थिरता की ममता लिये हँसती-कँपती हिलती-डुलती रुक-रुककर सिहरती हुई चरमर चरमर चूँ चरर-मरर करती हुई जो 'भैंसा-गाड़ी' चल रही है वह समाज के भीषण वैषम्य की प्रतीक है। युग-युग के दमन, पीड़न और शोषण की प्रतीक 'भैंसा गाड़ी' के उपलक्ष से कवि ने न केवल

वे क्षुधाग्रस्त बिलबिला रहे मानों वे मोरी के कीड़े,
वे निपट घिनौने महा पतित बौने, कुरूप, टेढ़े-मेढ़े ! *

जैसे मानव प्राणियों की दयनीयता को ही नहीं वरन् उनके स्रष्टा शोषक धनपतियों और भूमि-पतियों की दुर्दम दानवता को, पशुता को नग्न निरावरण कर दिया है—

है बीस कोस पर एक नगर उस एक नगर में एक हाट
जिसमें मानव की दानवता फैलाये है निज राज पाट *

---

* 'मानव' (भैंसागाड़ी)

साहूकारों के प में हैं जहाँ चोर औ' गिरह काट
है अभिशापों से भरा जहाँ पशुता का व्यापक ठाट-बाट

सारा राजकाज इन्हीं कंकालों पर टिका है, साम्राज्यों की नींव में इन्हीं की हड्डियाँ गडी हैं, ये व्यापारी, ये जमींदार, ये साहूकार आदमी का गर्म लहू पीते हैं, वे स्वर्ग का सुख-भोग करते हैं और उनका राग-रंग इनके नारकीय जीवन पर पागलपन का अट्टहास करता है, वे सब लक्ष्मी के परम भक्त (उल्लू) हैं :

वह राजकाज जो सधा हुआ है इन भूखे ककालों पर,
इन साम्राज्यों की नीव पड़ी है तिल-तिल मिटनेवालों पर,
ये व्यापारी, ये ज़मींदार जो हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष, सूदखोर, पीते मनुष्य का उष्ण रक्त। *

सोहनलाल द्विवेदी ने 'किसान' के विश्वंभर-रूप को पहचाना : इस राग-रंग, हास-विलास, वैभव ऐश्वर्य, राज्य-साम्राज्य की नीवों में किसान की दौलत, किसान की हिम्मत, किसान की क़ुवत, किसान की ग़फ़लत देखी और उससे पूछा—

तुम्हे नही क्या ज्ञात तुम्हारे बल पर चलते हैं शासन ?
तुम्हे नहीं क्या ज्ञात तुम्हारे धन पर निर्भर सिंहासन ?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात तुम्हारे श्रम पर सब वैभव साधन ?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात तुम्हारी बलि पर है सब विजय वरण ! ||

और इसीलिए उसका जागरण ही क्रांति बन सकता है—

यदि हिल उठ तू ओ शेषनाग ! हों ध्वस्त पलक में राज भाग,
सम्राट निहारें नींद त्याग हैं मुकुट कहीं तो कहीं फाग ! $

'प्रलयवीणा' के कवि ने भी समाज के सुख-वैभव के स्रष्टा

---

* 'मानव' (भैंसागाड़ी) || 'पूजा गीत' $ भैरवी (किसान)

किसान और मजदूर के दुरन्त दुख-दारिद्र्य को मुखरित किया है—

(१) इसमें इतना कपड़ा बुनता यह दुनिया सारी ढकजाये,
फिर भी इसे बनानेवाले अपनी देह नहीं ढक पाये ! *

महल बनाने वाले रानी, जीवन भर धरती पर लेटें !
उनकी अर्द्धांगिनियाँ अपने तन में अपनी लाज समेटें ! *

वैषम्य की व्यञ्जना कहीं कहीं बड़ी प्रखर होगई है :

एक ओर समृद्धि थिरकती पास सिसकती है कंगाली,
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनोंवाली,
उधर खड़े हैं रम्य महल वे आसमान को छूनेवाले
और बगल में बनी झोंपड़ी जिसके छप्पर चूनेवाले ! *

और अन्त में समाज के कालकूट को पीने के लिए अपनी कल्पना प्रेयसी को 'क्रांति का आमंत्रण' दिया था—

चलो क्रान्ति का जीवन भर दें इन युग-जर्जर कंकालों में
चलो, सुखों की साध जगा दें फिर इन नंगों-कंगालों में *

× × ×

धनी जनों का खोटा सोना चलो गलाकर साथ बहा लें
फैला है जो कालकूट यह अमरण बनें उसे पी डालें *

'किरण-वेला' का कवि 'अंचल' भी 'हवेली' को देखकर दाँत पीस उठा है—

उन्हीं मिलों की सगी बहिन सी खड़ी राक्षसी यह पाषाणी !
व्यभिचारों की कुत्सा सी यह शोषण की अविराम कहानी !

---

* 'प्रलय-वीणा' (क्रांति का आमन्त्रण)

विश्व-नियन्ता की जैसे हो शैतानी मदअंध रखेली।
उधर राजपथ से कुछ हटकर शोणित से तर खड़ी हवेली। *

और नंगों भूखों की चीत्कारों में विप्लव की अगवानी देखता हुआ महाक्रांति की ज्वाला भड़का रहा है।—

भूखे शिशुओं की चीत्कारें सोख रहीं नयनों का पानी,
सूखी निचुड़ी चुवी हड्डियाँ करतीं विप्लव की अगवानी।
मुट्ठी भर दानों की तृष्णा महाक्रान्ति की आग लगाती,
आज क्षुधा इन कंकालों की सोये ज्वालामुखी जगाती।

'सुमन' ने भी 'बेघरबार' में समाज के वैषम्य के प्रतीक इन अनिकेतनों की ओर ही इंगित किया है—

बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ चाँदी के थोथे टुकड़ों में,
कर्त्तव्य पालता धनिक वर्ग मदिरा के जूठे चुकड़ों में,
इस ओर पड़ीं खाना-बदोश मेहनतकश मानव की पाँते
फुट पाथों की चट्टानों पर जो काट रहीं अपनी रातें।

निरङ्कार देव 'सेवक' ने भी मजदूरों के प्राणों में प्रवेश करके

'देह दुर्बल प्राण जर्जर खिन्नमन मजदूर हैं हम'

की घोषणा करते हुए जीवन और समाज की इस विशृंखलता में 'चिनगारी' जगाने का संकल्प किया। आज के कवि ने चिर उपेक्षित निम्नवर्ग को काव्य का आलम्बन बनाया। पीड़ित प्रजा, उपेक्षित नारी, शोषित किसान और दलित मजदूर के चित्र कविता के कक्ष में सम्मानित हुए और शोषक-पीड़क वर्गों के चित्रों पर प्रहार किया गया।

* ('किरण वेला')

जन-शोषण के विरोध में इतनी तीव्रता हिन्दी कविता ने नहीं देखी थी ;

पाशववाद—विरोध

स्वतन्त्रता और विश्व मानवता का पोषक 'प्रगतिवाद' 'पाशववाद' (Fascism) का शत्रु है क्योंकि पाशववाद संस्कृति का सबसे बड़ा शत्रु है। पाशववाद के विरोध में ही पूँजीवाद साम्राज्यवाद और सैनिकवाद का विरोध भी निहित है क्योंकि ये तीनों इसीके काल-मुख हैं। पृथ्वी को रौंदनेवाले प्रथम और द्वितीय महायुद्ध वस्तुतः संसार की फासिस्ट शक्तियों का ही ताण्डव थे।

गत विश्व-इतिहास के पन्ने साम्राज्यवादी युद्धों से भरे पड़े हैं। अबीसीनिया, पोलैंड और चीन पर इटली, जर्मनी और जापान के आक्रमण हुए और उसके विरोध में उठनेवाले युद्ध को 'जन-युद्ध' कहा गया क्योंकि वह युद्ध 'सब युद्धों का अन्त करने के लिए' और 'पददलित जनतंत्रों की रक्षा के लिए' लड़ा गया था!

'दिनकर' ने 'नाशीवाद' और 'पाशववाद' पर 'हुंकार' द्वारा वेगवान प्रहार किया था। यद्यपि साम्यवादी रूस ने भी साम्राज्यवाद नाट्य किया था, पर, 'प्रगतिवाद' की दृष्टि में, सोवियत् रूस पददलितों की आशा, मानवता का त्राता और नव-संस्कृति का अग्रदूत ही रहा। गत महायुद्ध में फासिस्ट शक्ति ने उसपर आक्रमण किया। शिवमंगलसिंह 'सुमन', नरेन्द्र और 'अञ्चल' ने उसे प्रशस्तियाँ दीं। 'सुमन' ने 'सोवियत्-जर्मन-युद्ध की प्रथम वर्षगाँठ (२२ जून, ४२) पर' गर्वोल्लास व्यक्त किया :

जगे वीर, जागी वसुंधरा, जागी युग की ज्वाला,
यहाँ लुटेरे फासिस्तों को पड़ा मौत से पाला;
जन-जन जागे, कण-कण जागा, जागा लाल सितारा
चली लाल सेना लहराती लाल रक्त की धारा
कौन लड़ेगा, कौन बढेगा. कौन साहसी शूर है ?
दस हफ्ते दस साल बन गये, मास्को अब भी दूर है ?

नरेन्द्र ने 'लाल रूस' को दुनियाँ भर के 'सब मजदूर किसानों की' ढाल बताकर उसके दुश्मनों की हार मनाई—

हिटलर तोजो जीत गये तो जीत हुई हैवानों की !
लाल रूस का दुश्मन, साथी, दुश्मन हुआ किसानों का,
दुश्मन है वह मज़दूरों का, दुश्मन सब इन्सानों का,
लाल फौज के लिए कमर कस फौज चली इन्सानों की !

फ़ासिज्म से मानवता का त्राण तभी होगा जब कवि का यह विश्वास-स्वप्न पूर्ण होगा—

लाल फौज जो जीत गई दुनियाँ को लाल बनावेगी,
पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन झंडा लाल झुलावेगी।
यह दुनियाँ तस्वीर बनेगी दुनियाँ के अरमानों की ?

यही पाशववादी आग जब पड़ोसी देश चीन में जलती हुई दिखाई दी तो 'प्रगतिवादी' कवि चौंक पड़ा :

लगी है चीन देश में आग, लगी जो चीन देश में आग,
बढ़ी आरही हिन्द की ओर; जाग रे, हिन्दोस्तानी, जाग–
कर रही दुनियाँ हाहाकार !– नरेन्द्र

'प्रगतिवादी' कवि का मस्तक भारत की शताब्दियों की पराधीनता और पराजय को देखकर नीचा नहीं होता, क्योंकि

चीन देश की विजय हमारा मस्तक ऊँचा कर देती
चीन देश की बरबादी हममें प्रतिहिंसा भर देती—'लालचीन : अंचल'

उसने दूर के ढोल तो सुने—

आज वहाँ बच्चे-बच्चे में आज़ादी की नई लहर
आज वहाँ औरत-औरत में कुरबानी की जोत प्रखर
युवा-युवा में छाया है घनघोर युद्ध का एक नशा
कण्ठ-कण्ठ में गूँज रहे हैं बलिदानों के जलते स्वर (")

परन्तु 'अगस्त क्रान्ति' के समय होनेवाली फासिस्टी पैशाचिकता और बलिदान की कहानी कहाने के लिए उसकी वाणी मूक है। उसने दूसरे के हुँकार पर ताली पीटी है, परन्तु घर में अपनी माँ-बहनों के शरीर और प्राणों का नारकीय अपमान देखकर उसने 'यकुम मई' और 'योम सोवियत्' का ही जप-मात्र कर लिया है।

रूस की जन-क्रान्ति पीड़ित शोषित जनता के लिए नवप्रभात है क्योंकि—

कोना कोना दलित विश्व का आज तुम्हारे साथ
विजय-पताका लिये बढ़ेगा, दिये हाथ में हाथ !

पर इसका यह तो अर्थ नहीं कि 'योम सोवियत्' और 'यकुम मई' ही भारत-राष्ट्र के लिए भी सबसे बड़े त्यौहार हों ! क्या 'शहीद दिवस' (९ अगस्त) और 'स्वतन्त्रता दिवस' (२६ जनवरी) को भूलकर वह जी सकता है ? परंतु 'प्रगतिवादी' कवि के लिए रूस ही मानव जाति का त्राता है। उसकी मातृभूमि भारत नहीं उसकी पितृभूमि रूस है, वही मानवता की आशा है—

लाल रूस को जिसने समझा हो धरती का चप्पा भर,
वह इस दुनिया की हलचल को समझ सका क्या हब्बा भर ?
देश नहीं वह, राष्ट्र नहीं वह, वह मानवता की आशा !
लाल रूस के इन्किलाब की गाथा, दुनियाँ की गाथा !
(योम सोवियत् : नरेन्द्र)

और इसी मृगतृष्णा में उसका मनोमृग भटक गया है—

लाल फौज का वीर सिपाही ही नवयुग का हलकारा,
क्यों न उसी की ओर बहे यह दिशा भूल कविता-धारा ! (,,)

नाजी-सोवियत् संघर्ष इस 'प्रगतिवाद' के लिए महाकाव्य है ! आज 'प्रगतिवाद' के कवि विचार-धारा के आग्रह से दो शिविरों में विभाजित हैं : एक हैं जो भारतीय संस्कृति से जीवन-रस लेते हुए प्रगतिशील रहना चाहते हैं, दूसरे हैं जो अभारतीय संस्कृति और मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के सम्मोहन से 'प्रगतिवादी' बनना चाहते हैं। एक ओर हैं 'निराला', 'पन्त', 'नवीन', 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, सोहनलाल द्विवेदी, 'प्रेमी', गुप्त-बन्धु, 'मिलिन्द', सुधींद्र, सेवक, आरसी, रांगेय राघव; दूसरी ओर हैं 'अञ्चल', नरेन्द्र, 'सुमन'...

'प्रगतिवाद' : कसौटी पर

'प्रगतिवाद' के प्रवक्ताओं ने जो स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं उनकी पर्याप्त आलोचना-प्रत्यालोचना हुई। पश्चिम के विचारक एंगिल्स द्वारा प्रवर्तित और मार्क्स द्वारा संशोधित द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन ही वर्तमान समाज-जीवन को प्रगति की ओर ले जा सकता है इस स्थापना के आधार पर प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप स्वीकार किया गया है। आज 'प्रगतिवाद' मार्क्स

के 'वैज्ञानिक (द्वन्द्वात्मक : स्वयंगति) भौतिकवाद' की सन्तति होने के कारण उसका कविता (और साहित्य) में अक्षरशः अनुवाद माँगता है, अतः साहित्य-कला की श्रेष्ठता से एक मतवाद को अधिक महत्त्व मिल गया है। इससे अनेक शंकाएँ उत्पन्न हुई हैं :

(१) क्या साहित्य-कला किसी मतवाद के प्रचार का उपकरण-मात्र हैं?
(२) क्या समाजवादी यथार्थवाद ही जीवन का स्वस्थ दृष्टिकोण है ?
(३) क्या मार्क्स-दर्शन ही प्रगति का एक मात्र प्रकाश-स्तम्भ है ?

इन्हीं तीन प्रश्नों को लेकर आजतक 'प्रगतिवाद' को आघात-प्रत्याघात सहने पड़े हैं और वह अपनी निर्दिष्ट रूपरेखा को छिपाता रहा है।

साहित्य-कला को राजनीति का रण-वाद्य मात्र मान लेना ही एक अतिवाद है। हाँ, जिस सीमा तक राजनीति, अर्थनीति, समाज रीति जीवन के अंग हैं उसीतक वह उनसे संपृक्त है। 'वे महानुभाव जीवन को सर्वांग रूप में समझने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं जब कला में घोर पदार्थ मूलक उपयोगीतावाद (Materialistic utilitaranism) का ही वर्चस्व चाहने लगते हैं।* दिन भर सूर्य के ताप में जलनेवाले पहाड़ के हृदय में भी, चाँदनी की शीतलता को पाकर, कभी कभी बाँसुरी का सा कोई अस्पष्ट स्वर गूँजने लगता है, जो पत्थर को फोड़कर किसी जल धारा के बह जाने की आकुलता का नाद है। युग-धर्म की छाप कला पर अवश्य होगी यदि वह मानव अनुभूति से अभिन्न है। केवल समय की माँग पर बेची हुई कला कभी उत्कृष्ट और चिर-

---

* 'नवीन' ('कुसुम' की भूमिका में)

न्तन नहीं होती। प्रगतिशील होने के पहले साहित्य कला को पहले कला—शिवमूलक सत्य को सुंदर अभिव्यक्ति—होना होगा।

यथार्थवाद द्वारा 'प्रगतिवाद' जीवन के कुरूप चित्रों और उपेक्षित शक्तियों की ओर संकेत करता है। रूढ़ियों का तोड़ना एक बात है और कुरुचिपूर्ण यथार्थ का चित्रण दूसरी बात। प्रगतिवाद में जो यथार्थ चित्रित हुआ है वह अत्यन्त गर्हित है। उन चित्रों से क्षणिक उत्तेजन तो होता है, किसी शक्ति का सञ्चार नहीं होता। वस्तुतः जबतक कविता के विषय जीवन में घुलते मिलते नहीं तबतक उनके लिए कविता कला की सृष्टि केवल एक विडम्बना है, आत्मवञ्चना है, माया-मरीचिका है। अभी 'प्रगतिवाद' शोषित-पीड़ित का कण्ठ-स्वर हीं बना है, अभी तो हमने उन विरूप-विकलांग मूर्त्तियों और चित्रों को अपने कला कक्ष में सजाकर आत्मरंजन किया है। समाज की रुग्णताओं को उपभोग्य बनानेवाली कला की भर्त्सना ही की जानी चाहिए :

> यदि चित्र रचे मेरी तूली इन क्षयजर्जर कंकालों का,
> तो यह विलास क्या नहीं स्वयं मुझ जैसे वैभव वालों का।
> क्या अमर कला के रङ्गों पर मैं अमर करूँ ये क्षीणकाय ?

हम इन शोषित-पीड़ित वर्गों को श्री-सम्पन्न बनायें यह तो श्रेय है, किंतु उन्हें अपने विलास का आलम्बन न बनावें। शोषित का चित्र बनाकर अपने प्रकोष्ठ में लटकाने की अपेक्षा उनका पेट भरना, उनकी कला को अपनाना कहीं श्रेयस्कर है।

'प्रगतिवाद' पर यह लाञ्छन भी निराधार नहीं है कि 'प्रगतिवाद के माध्यम से राजनीति साहित्य पर चढ़ी आरही है, और जिस कला-कक्ष में फूल और पत्तों की सजावट होनी चाहिए थी,

उसमें मजदूरों के गन्दे चिथड़े, चिमनियों का धुआँ और खेतों की धूल भरी जा रही है। शुद्ध कला के उपासकों को यह जानकर चिन्ता हो रही है कि साहित्य राजनीति के हाथ का रण-वाद्य बनता जारहा है और उसके प्राणों की कला, नयी दीप्ति दिनोंदिन क्षीण होती जारही है'। ‡

प्रगतिवादी कविता में कला की उपेक्षा हो रही है, इसे अस्वीकार करना मिथ्याग्रह होगा। प्रगतिशील अथवा प्रगतिवादी कविता को सबसे पहले 'कविता' होना चाहिए।

'प्रगतिवाद' युग और परिस्थिति के आग्रह से आज अभिनन्दनीय भी हो परन्तु कल क्या? साहित्य राजनीति को विचार देता है और भाव लेता है, वह उससे जीवन-रसग्रहण करता है। साहित्य स्वयं जागरूक चेतन और प्राणवान् है, जब वह अपनी राजनीति का ही मुखापेक्षी और अनुचर हो जाता है तो प्रचार की धूल से उसकी आत्मा नष्ट होजाती है। साहित्य को राजनीति से संबद्ध रहकर भी उससे ऊपर उठना है क्योंकि वह समस्त जीवन की वस्तु है। फिर कविता की अपनी मर्यादा है, यदि मतवाद का प्रचार ही करना है तो उसके लिए। साहित्य के दूसरे अंग वाहन हो सकते हैं।

नारी के प्रति 'प्रगतिवाद' का नहा तो कम से कम इन प्रगतिवादियों की दृष्टि देखकर तो हमारा शील सिहर उठता है। निस्सन्देह, नारी एक शोषित प्राणी (या वर्ग) है और उसकी मुक्ति भी हमारे जीवन (और काव्य) का ध्येय होना चाहिए। युग-युग से नारी 'नर की छाया' बनी हुई है। क्षुधा-कामवश होकर नर ने

---

‡ 'दिनकर' (उदयपुर कवि-सम्मेलन के सभापति-पद से)

नारी को पूर्ण अधिकृत कर लिया, उसे 'काम-कारा की वंदिनी' बना लिया और अन्तत-:

'योनि मात्र रह गई मानवी निजि आत्मा कर अर्पण'

पन्त ने कहा—इस वंदिनी को मुक्त करो :

मुक्त करो नारी को मानव ! चिर वेदिनि नारी को,
युग-युग की बर्बर कारा से जननि, सखी, प्यारी को !

परन्तु इस मुक्ति का अर्थ 'यौन मुक्ति' नहीं हो सकता। आज के 'प्रगतिवाद' ने नारी को 'यौन स्वतन्त्रता' दे दी है। वहाँ यथार्थ के नाम पर नारी का क्रूर चीर-हरण हो रहा है। छायावाद की छाया में जिन कवियों ने 'आज सोहाग करूँ किसका, लूटूँ किसका यौवन', 'तुम मुग्धा थीं अति भावप्रवण उकसे थे अंबियो से उरोज', 'करें अभी मधुराधर चुम्बन। गात गात गूँथें आलिंगन' के आवरण में अपनी यौन वासना उन्मुक्त थी, उन्होंने 'प्रगतिवाद' के शिविर में रहकर युग-युग से शोषिता नारी के अंग-प्रत्यंग को वासना का आलंबन बनाया उसमें उन्होंने उसमें रीतियुगीन नारी की ही छाया देखी—

(१) खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिचँते सँग युग रस भरे कलश (ग्राम-युवती : पन्त)

(२) ...नन्हा सा लिंग आगे कर...
...छातियाँ मसल दीं ! (भगवतीचरण)

(३) अस्मत खोती कुछ चाँदी के टुकड़े, पा पाकर जब नारी।
पास खड़े लोलुप-कुत्तों से देखा करते अपनी बारी। ('अञ्चल')

इसीलिए इन चित्रणों में एक चिकित्सक की, वैज्ञानिक-की तटस्थ कल्याण-भावना नहीं है, और राहुल सांकृत्यायन, सम्पूर्णानन्द,

अमृतराय आदि प्रगतिवाद के प्रवक्ताओं ने इन्हें 'प्रगतिवाद की विनाशक प्रवृत्तियाँ माना है।

'प्रगतिवाद' और भारतीय राष्ट्रवाद में अभी मौलिक संघर्ष है—समन्वय नहीं; इसीलिए भारतीय राष्ट्रवादी कवि अभी उस 'प्रगतिवाद' के शिविर में नहीं जाना चाहते जिसकीदृष्टि लाल रूस की ओर ही रही है। अभी अभी बीता हुआ महायुद्ध यूरोप की भूमि पर दो साम्राज्यवादी शक्तियों का संघर्ष था। रूस के सम्मिलित होने पर वही युद्ध 'लोक युद्ध' होगया! क्योंकि सोवियत् रूस से गठबन्धन किये हुए मित्रराष्ट्र नामधारी एक पक्ष ने 'पद-दलित देशों की रक्षा' की घोषणा का सहारा लिया और उसे 'लोक-युद्ध' कहा!! परन्तु, हमारा इतिहास जानता है कि भारत की राष्ट्रीय चेतना ने देश को साम्राज्यवादी युद्ध में घसीटे जाने का 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के रूप में सक्रिय विरोध (अथवा 'निष्क्रिय प्रतिरोध') किया था। राष्ट्र ने कभी उसे 'लोक युद्ध' नहीं माना और सन् ४२ में आते-आते तो 'अगस्त-क्रान्ति' भड़क उठी, —'भारत छोड़ो' हमारा राष्ट्रीय रण-घोष (Slogan) हुआ और अंग्रेजी-साम्राज्यवाद से राष्ट्रीय शक्तियों ने सक्रिय सङ्घर्ष किया: विरोधी पक्ष उसे 'उपद्रव' कहेगा, परन्तु राष्ट्र उसमें अपनी 'स्वतन्त्रता की अन्तिम लड़ाई' लड़ने की स्फूर्ति (Spirit) से जूझा! लोमहर्षक नारकीय हत्या और रक्तपात का ताण्डव भारत भूमि पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने किया जो फासिस्टी पैशाचिकता से भी जघन्य था, किंतु 'प्रगतिवाद' के कवियों ने घर में जलती हुई ज्वाला से भागकर सातसमुद्र की नील लहरों के पार छिड़े हुए किसी संघर्ष को देखा। एक शताब्दी से विदेशी-शासन में पिस रहे राष्ट्र की मुक्ति की साधना में छिड़नेवाले उसके जन-संघर्षों में जो

अपना स्वर न मिला सके वे कवि आज पद-दलित राष्ट्रों की तथा-कथित-मुक्ति के लिए लडे गये युद्ध के लिए युद्ध-गीतों की रचना करके संसार को प्रगतिशील शक्तियों के साथ चलता हुआ मानना चाहते हैं। यदि स्वदेश के स्वाधीनता संग्रामों को वे प्रतिगामिता मानते हैं, तो ६ अगस्त से आरंभ होनेवाले जन-विद्रोह के समय 'नील लहरों के पार' चीन के संकट पर आँसू बहाना और मास्को के घेरे पर 'खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद' का डंका पीटना भी प्रगतिशीलता नहीं हो सकती—'प्रगतिवाद' चाहे इसे कह लिया जाय। 'प्रगतिवाद' शिविर से राष्ट्रीयता-विरोधी जैसी पंक्तियाँ उठ रही हैं, उनका एक उदाहरण है:—

बोस-विभीषण ने भी देखो कैसा जाल बिछाया है।
कल था जो कि देवता वह अब दानव-दल ले आया है।
कह कहकर वह गला कटावेगा अपने ही भाई का।
वह न स्वर्ग का देवदूत है, घृणित दलाल कसाई का।

—मलखान सिंह सिसौदिया

'आजाद-हिन्द-सेना' के उदय और उत्थान को जो राष्ट्र-विरोधी मानता है, वह 'प्रगतिवाद' अराष्ट्रीय शक्तियों के हाथ में खेल रहा है।

"मास्को का हम आदर करते हैं, किन्तु हमारे रक्त का एक-एक बिन्दु दिल्ली के लिए अर्पित है। जबतक दिल्ली दूर है, मास्को के निकट या दूर होने से हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पराधीन देश का मनुष्य, सबसे पहले, अपने देश का मनुष्य होता है। विश्व-मानव वह किस बल पर बने? × × हमारे समस्त अभियानों का एक मात्र स्पष्ट लक्ष्य मास्को नहीं, दिल्ली है। मास्को के उत्थान और पतन के साथ हँसने और रोनेवाले

अपने सहकर्मियों से मेरा निवेदन है कि हम नेवोलगा नहीं, गंगा का दूध पिया है। हमपर पहला ऋण भी वोलगा नहीं, गंगा का ही है। जबतक गंगा की जंजीरें नहीं टूटतीं, हमारे अन्तर्राष्ट्रीयता के सारे निष्फल निस्सार हैं। मास्को के उत्थान या पतन से भारत के गौरव या ग्लानि की वृद्धि नहीं होती।" प्रगतिशील कवि 'दिनकर' की इस चुनौती का 'प्रगतिवाद' के पास कोई उत्तर नहीं है। "एक औपनिवेशिक पराधीन देश में प्रगति के मान निश्चय ही उन देशों के मानों से भिन्न होंगे जहाँ गणतंत्र स्थापित है। X X स्वस्थ राष्ट्रीयता तो किसी भी देश में प्रगति की ही शक्ति मानी जायगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारा स्वाधीनता-संग्राम ही तो हमारी जन-क्रान्ति है। ऐसे प्रगतिवादियोंको श्रीअमृतराय की यह चेतावनी 'प्रगतिवाद' के साथ जुड़ी हुई कई अनिष्ट प्रवृत्तियों को चुनौती है। प्रगतिवाद' निःसंदेह पश्चिम से आयी हुई आँधी में उड़कर आया हुआ पत्ता है, और उसे हम अपनी भूमि पर रोपना चाहते हैं!

'प्रगतिवाद' के पीछे लोक-मंगल की भावना है, एक नव समाज और नवसंस्कृति की प्रतिष्ठा की प्रेरणा है परन्तु उसे जो दृष्टि मिली है वह उधार ली हुई है। जीवन की सच्ची प्रगति देश की मौलिक संस्कृति से विच्छिन्न होकर नहीं हो सकती। प्रगति जीवन की चिरन्तन धारा है जो अपनी धरती की मिट्टी पर बहती है, अपने किनारे के खेतों को सींचती है, आसपास के गड्ढों को भर देती है; परन्तु उन्हींमें न बँध कर जिसका प्रवाह, अनेक भंगिमाओं और वक्रताओं के अनन्तर भी किसी अंतिम, चरम लक्ष्य की ओर है। हम इसी प्रगति के पोषक हों!

'प्रगतिवाद' से हमें यही अपेक्षा है कि वह प्रगति का पोषक

बने, किन्तु उसके पाँव अपने देश की भूमि पर हों, वह क्रांति का संदेशवाहक और स्रष्टा बने, किन्तु अपनी राष्ट्रीयता, अपनी संस्कृति का गला घोटकर नहीं। वह जीवन में साम्य और सर्वोदय का साधक बने, सत्य और शिव का आराधक बने, जीवन के स्वास्थ्य और कल्याण का बाधक नहीं। और सबसे अन्तिम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु है 'प्रगतिवाद' में कविता के प्राणों की रक्षा। 'प्रगतिवाद' के नाम पर आज जो कुछ लिखा जारहा है, उसमें कविता निष्प्राण हो गई है। यह प्रश्न भविष्य के गर्भ में है कि 'प्रगतिवाद' में कविता अपने प्राणों की रक्षा कर सकेगी अथवा इसकेलिए उसे किसी दूसरी धारा या सम्पूर्ण जीवन की ओर ही मुड़ना होगा।

प्रसुमन–काल–चक्र

वि० संवत्	मुख्य घटनाएँ		ई० सन्
१६७८	असहयोग		१६२१
१६७६	चौरीचौरा काण्ड	'बुद्धिचरित'* (रा. च. शुक्ल)	१६२२
१६८०	'स्वराज्य दल' स्थापित	'अनामिका' (निराला)'पत्रावली', 'शकुंतला'* (गुप्तजी), (रत्नाकर)	१६२३
१६८१	साम्प्रदायिक उपद्रव	'गंगावतरण'	१६२४
१६८२	चित्तरंजनदास की मृत्यु	'अनघ', 'पंचवटी', 'स्वदेश-संगीत' (गुप्तजी)	१६२५
१६८३	हिंदू मुस्लिम दंगे	'आँसू' (प्रसाद), 'निर्माल्य' (वियोगी), 'विपंची' (सुमन)	१६२६
१६८४	काकोरी केस	'पल्लव' (पन्त), 'एकतारा' (वियोगी), 'मानसी' (त्रिपाठी), 'झरना' (द्वि० : 'प्रसाद') 'हिंदू' (गुप्तजी), 'वीणा'* (पंत) 'वीर सतसई'* (वियोगी हरि)	१६२७

१९८५	साइमन कमीशन का बहिष्कार लाला लाजपतराय की मृत्यु, सर्वदल सम्मेलन, बारडोली सत्याग्रह	'आर्द्रा' (सियारामशरण), 'बोलचाल' ('हरिऔध')	१९२८
१९८६	लाहौर कांग्रेस : 'पूर्ण स्वतंत्रता' ध्येय	'झंकार'* (गुप्तजी), 'स्वप्न' (त्रिपाठी), 'चित्तौर की चिता' ('कुमार'), 'दूर्वादल' (सि० श०) 'विकट भट', 'गुरुकुल' (गुप्तजी), 'माधवी' (गोपाल शरण सिंह), 'अंजलि' (कुमार) 'स्वप्न' (त्रिपाठी), 'लतिका' (गुलाब)	१९२९
१९८७	'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन, दाण्डी प्रयाण पहली गोलमेज परिषद्	'परिमल' (निराला), 'नीहार' (महादेवी), 'अभिशाप' (कुमार), 'स्वर्णविहान', 'आँखों में' (प्रेमी), 'मालिका' (द्विज), 'ग्रन्थि'* (पन्त)	१९३०
१९८८	गांधी इरविन समझौता, मोतीलाल नेहरू की मृत्यु, दूसरी गोलमेज परिषद्	'मुकुल' (सुभद्राकुमारी), 'तक्षशिला' (भट्ट), 'रूपराशि' (कुमार), 'उद्धवशतक' (रत्नाकर)	१९३१
१९८९	पूना—समझौता	'गुञ्जन' (पन्त), 'साकेत'† (गुप्तजी), 'रश्मि' (महादेवी), 'मधुकण'	१९३२

	गांधीजी का उपवास एकता—सम्मेलन	(भगवतीचरण); 'जादूगरनी', 'अनंत के पथ पर' (प्रेमी), 'प्याला' (पद्मकान्त), 'मृदुदल' (द्विज), वन श्री (गुरुभक्त)	
१६६०	तीसरी गोलमेज परिषद् ज० सेन गुप्त, विट्ठलभाई पटेल की मृत्यु, सत्याग्रह	'यशोधरा' (गुप्तजी), 'निशीथ' (कुमार), 'अनुभूति' (द्विज) 'चित्रपट' (शंभुदयाल) नलनरेश' (प्रतापनारायण), 'किंजल्क'* (चकोरी)	१६३३
१६६१	बिहार-भूकम्प 'कांग्रेस सभाजनादी दल' स्थापित, धारासभाओं मे प्रवेश का निर्णय	'ज्योत्स्ना' (पन्त), 'पाथेय' (सि० श०), 'मधुशाला' (बच्चन), 'पंछी', 'उमंग' (नेपाली), 'शूल-फूल' (नरेन्द्र), 'सीकर' (तारा), 'अंकुर' (रत्नकुमारी), 'भिखारिन' (शंभुदयाल), 'हिमानी' (शान्तिप्रिय), 'मगल घट'* (गुप्तजी), 'दुलारे-दोहावली' (दुलारेलाल)	१६४३
१६६२	शासन विधान स्वीकृति कमला नेहरू की मृत्यु	'लहर' * (प्रसाद), 'रेणुका' (दिनकर), 'चित्ररेखा' (कुमार), 'नीरजा' (महादेवी), राका (भट्ट), 'कल्पना' (वियोगी), 'नूरजहाँ' (गुरुभक्त)	१६३५
१६६३	एडवर्ड ८ का सिंहासन त्याग	'सान्ध्यगीत' (महादेवी), गीतिका (निराला), 'मृण्मयी' (सि०श०),	१६३६

	इटली का अबीसीनिया-आक्रमण	'द्वापर' 'सिद्धराज' (गुप्तजी), 'मधुबाला' (बच्चन), 'शंखनाद' (सुधीन्द्र); 'कणफूल' (नरेन्द्र), 'रागिनी' (नेपाली), ब्रजभारती (उमेश),	
१९३४	'प्रांतीय स्वशासन' का श्रीगणेश, स्पेन विद्रोह, चीन-जापान-युद्ध	'युगान्त' (पन्त), 'रोटी का राग' (श्रीमन्नारायण), 'कामायनी' (प्रसाद), 'कल्पलता' (हरिऔध), 'चद्रकिरण' (कुमार), 'प्रेम संगीत' (भगवतीचरण) 'विजनवती' (इलाचन्द्र), 'मधुकलश' (बच्चन), कादंबिनी (गो॰शरण) 'शुक-पिक' (तारा), 'सिद्धार्थ' (अनूप), 'कल्लोलिनी' (हितैषी)	१९३७
१९३५	यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीयसंघर्ष 'म्यूनिक-पैक्ट'	'निशा-निमन्त्रण' (बच्चन), 'कलापी' (आरसी), 'बापू' (सि श॰), 'वनबाला' (नगेंद्र), 'ज्योतिष्मती' 'मानवी' (गो श॰), 'मधूलिका' (अँचल)	१९३८
१९३६	महायुद्ध का आरम्भ कांग्रेस का सरकारों से पद-त्याग	'एकान्त संगीत' (बच्चन), 'तुलसीदास' (निराला) 'अपराजिता' (अचल) कुंकुम (नवीन), 'युगवाणी' (पन्त), 'अग्निगान' (प्रेमी), झंकार' (सुदर्शन) 'मानसी'-'विसर्जन' (भट्ट), 'वैदेही वनवास'* (हरिऔध') 'प्रभातफेरी' (नरेन्द्र) हल्दी घाटी' (पाण्डेय), उद्गार (होमवती) 'शेफाली' (राजेश्वर), जागृति (लली), संचिता (गो·श॰ सि॰) 'सुमनाजलि' (अनूप), 'हिल्लोल' (सुमन)	१९३९

१९१७	व्यक्तिगत सत्याग्रह-फ्रांस का पतन	'रसवन्ती' (दिनकर), ग्राम्या (पन्त), 'मानव' (भगवतीचरण), 'रिमझिम' १९४० (हंसकुमार), 'प्रलयवीणा' (सुधींद्र), 'प्रवासी के गीत' (नरेन्द्र), 'नहुष' (गुप्तजी), द्वन्द्वगीत (दिनकर), 'मानव' (श्रीमन्नारायण), 'पलाशवन' (नरेन्द्र)। 'जीवन-संगीत' (मिलिंद), 'नीलिमा' (नेपाली) 'दैत्यवंश' (हरदयाल)
१९९८	रवींद्रनाथ की मृत्यु	मे 'रवी'* (सो-ला०द्वि०), 'विहाग' (सुमित्रा०) 'उन्मुक्त' (सि-श०), १९४१ 'किरणबेला', (अंचल) 'कूजन' (पद्मकान्त), ऊर्मियाँ (अश्क), हिमकिरीटिनी* (एक भारतीय आत्मा) 'चिन्ता'* (अज्ञेय) 'अर्चना' (भगवन्तशरण) 'निर्वासित के गीत' (सर्वदानंद), 'ओस के बूँद' (वाजपेयी), 'सुमना' (गो०शरण) 'प्रतिमा' (प्रेमी), मंजीर (माथुर), 'जीवन के गान' (सुमन)
१९९९	'अगस्त-आन्दोलन' और दमन कांड	'दीपशिखा' (महादेवी), 'कुणालगीत' (गुप्तजी)' वासवदत्ता' (सो०ला द्वि०) १९४२ 'सुषमा' (हृदयेश), रेखा (देवदत्त) 'आशापर्व' (सुमित्रा सिन्हा) आरसी' (आरसी), 'पंचमी' (नेपाली), 'नवयुग के गान' (मिलिन्द), 'चिनगारी' (करुण) 'ताण्डव' (हसरत), 'माँ' (कोकिल), 'जागते रहो' (भारत-भूषण),

		'विश्व वेदना'—'काबा कर्बला' (गुप्तजी), 'कामिनी' (नरेन्द्र,)	
२०००	बंगाल-दुर्भिक्ष, गांधीजी का उपवास	'चित्रा' (सो० ला०), 'जौहर' * (सुधींद्र), 'आर्यावर्त' (वियोगी)	१९४३
२००१	गांधीजी की आगाखां महल से मुक्ति	'युगाधार'-'पूजागीत' (सो० ला०), 'करील' (अञ्चल) 'अमृतलेखा' (सुधींद्र) 'लाल चूनर' (अञ्चल), 'जीवन और यौवन', 'आरसी', 'प्रलय-सृजन' (सुमन), 'नवीन' (नेपाली), 'मन्वन्तर' (शम्भुदयाल), 'गाथा' (जानकीवल्लभ)	१९४४
२००२	नेताओं की रिहाई, आजाद हिन्द फौज के मुकदमे	'प्रभाती' (सो०ला०), 'पाञ्चजन्य'-'नयी दिशा' (आरसी), 'सतरंगिनी' (बच्चन), जौहर (श्यामनारायण पाण्डेय)	१९४५
२००३	आजाद हिन्द फौज के मुकदमे की विजय, अन्तर्कालीन राष्ट्रीय सरकार, विधान-परिषद् प्रारंभ, महामना मालवीयजी की मृत्यु	'बेला'-'नये पत्ते' (निराला), 'कुरुक्षेत्र' (दिनकर), 'कृष्णायन' (द्वारकाप्रसाद)	१९४६

विशेष : * चिह्नित कविता-संग्रहों या रचनाओं के लेखन काल और प्रकाशन काल में प्रायः बड़ा व्यवधान है। जिन कवियों की प्रकाशन तिथि न ज्ञात हो सकी, वे इस चक्र में नहीं आ सकीं। ब्रजभाषा की रचनाएँ रेखांकित करदी गई हैं।-ले०।

परिशिष्ट (१) : अनुक्रमणिका

[रेखांकित अंक उन पृष्ठों का निर्देश करते हैं जहाँ कवि अथवा कृति की विशेष समीक्षा की गई]

अ, आ

इ, ई

उ, ऊ

ऋ ॠ

ए, ऐ

अं, अः

क

घ

च

फ

ब

२. पारिभाषिक शब्द-कोश

शब्द	अंग्रेजी पर्याय	पृष्ठ संख्या
अन्तर्भावव्यञ्जक	Subjective	११०, २०६
आत्मगत	"	११०
आभ्यन्तरिक	"	११०
आन्तरिक	"	२३२
इतिवृत्तात्मक	Matter-of fact	१००-५, १६६
इतिहास-विपर्यय	Anachronism	१८४
उपयोगितावाद	Utilitarianism	४४१
गद्यवत्	Prosaic	२६६
गद्यात्मक	"	२४६
गांधीवाद	Gandhism	३१६
गीति रूपक	Opera	२४०
चित्रभाषावाद	Symbolism	३४४
छायामास	Phantasmata	३२०
छायावाद	Mysticism	२०२, ०३, ३२१, ४४
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद	Dialectic Materialism	४४१
ध्वन्यर्थव्यञ्जना	Onomatopoeia	३४२-४३
पाशववाद	Fascism	४३६, ४५, ४६
पुनर्जागरण	Renaissance	३२४
पूँजीवाद	Capitalism	३०५, ४४५, ४६
प्रतीकवाद	Symbolism	२०७-१० ३१०, ४४
प्रगतिवाद	Progressivism	३०७, ४३५-अन्त
प्रगीत मुक्तक	Lyrics	२०६, १८

शुद्धि-पत्र

पुस्तक में मुद्रण की भयंकर भूलें हो गई हैं। टाइप टूटने, खिसकने या ठीक न उठने की भूलों के अतिरिक्त अधिक चिन्तनीय भूलों का संशोधन कृपया इस प्रकार करलें।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	१	समत्वित	समन्वित
२८	२०	के सरे	के दूसरे
३०	५	दैवस	दैवत
३१	१६	प्रकार	पुकार,
७६	१६	आयोध्याधिस	अयोध्याधिह
८०	६	अपरस्थ	अपात
६८	३	नी	की
१२६	१	प्रकृति	प्रभृति
१५१	१३	हीर एक	हीरक
१६६	१६	–काव्यों	–काण्डों
१७१	१५	'भारत भारतीय'	'भारत भारती'
	१६	'भारत वान्य'	'भरत वाक्य'
१८६	१८	भूलि	भूली
१६२	२३	काव्य	काल
२००	५	प्रकृति	प्रवृत्ति
२०१	१०	था।' ‡	था।'
	२३	गया।'	गया।' ‡
२०७	१६	राम कृष्णदास	राय कृष्णदास

२०६	१४	कुम्भदास	कृष्णदास
२२२	१७	विशेष कार	विशेष का
२३४	२	वेदान्द	वेदान्त
	१६	रामन्द	रामचन्द्र
२५६	१५	राष्ट्र क पूर रल्ट्र	राष्ट्र की परराष्ट्र
	१६	अनुकमण	आक्रमण
	१६	उबर	उत्तर
२४१	७	'प्रन्थि'	'ग्रन्थि'
२४४	२२	ध्वन्यार्थ व्यञ्जना	ध्वन्यर्थ व्यञ्जना
२५३	६	कालिमा	लालिमा
२७३	२	सोहार्द्र	सौहार्द
२८६	१५	मापक	मापक
	२३	प्राचीनता	स्वाधीनता
२६३	७	बबुदा	बबुदा
२६४	११	अप्रितम	अप्रतिम
३०२	अन्तिम पंक्ति को निकाल दीजिये।		
३१४	२	सौरन्दर्भ	सौन्दर्य
३२१	२	सौदर्य	सौन्दर्य
३२५	७	आजफल,	आजकल,
३३१	१	प्रकृति	प्रतिकृति
	११, १३	नगरी	नागरी
३५०	४	भ-प्रसूता	भद्रा-प्रसूता
४००	१४	बलरही	बढ़ारही
	२१	प्रकृति पूरक	प्रकृति-परक
४०७	२१	सरसता	समरसता

४१४	१	औलकिक	आलौकिक
४१६	७	उत्साह	उत्सव
४१८	१४	एकिकरंध	एकीकरण
४१६	१८	धार्मिक	मार्मिक
४२१	७	'एकबाब'	'एकतारा'
४२६	२४	यश	अश
४२८	११	स्विप्नल	स्वप्निल
४४०	१२	सुधा	क्षुधा
४५६	१६	उपयोगीतावाद	उपयोगितावाद
४५६	१३	उन्मुत्त	उन्मुक्त
४६०	१७	सांम्राज्यवाद	साम्राज्यवाद
४६२	३	अन्तर्राष्ट्रीयता	अन्तर्राष्ट्रियता